46

3, I

नववर्षाङ्क—

श्रीः

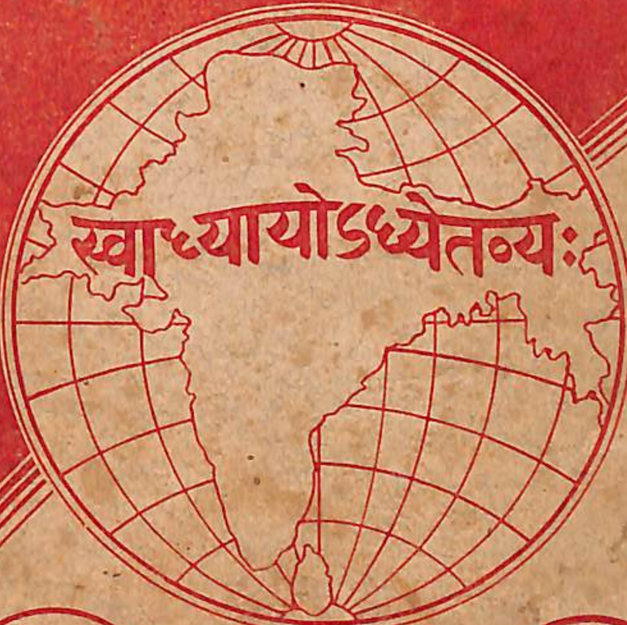
त्रैमासिक

श्रीस्वाध्याय

[शरदङ्क]

वर्ष
३
सं० २०००

संख्या
१
आश्विन



वार्षिक
मूल्य
३)

इस अङ्क
का मूल्य
१)

संस्थापक—
श्रीमान् अमृतवाग्भव आचार्य

सम्पादक—
श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी

श्रीस्वाध्यायके नियम तथा उद्देश्य—

उद्देश्य—

समस्त संसारको हितकी ओर ले जाना तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक मोक्ष (स्वातन्त्र्य) प्राप्त कराना "श्रीस्वाध्याय" का मुख्य उद्देश्य है।

सञ्चालक गणोंके नियम—

संरक्षक—

(१) जो महानुभाव ३००) तीन सौ रुपयेसे अधिक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक माने जाएँगे।

सहायक—

(२) जो सज्जन ५०) से ३००) रु० तक प्रति वर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के सहायक माने जाएँगे।

सम्मान्य ग्राहक—

(३) जो सज्जन ५) रु० से अधिक ५०) रु० तक प्रति वर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के सम्मान्य ग्राहक माने जाएँगे।

श्रीस्वाध्यायके नियम—

(१) 'श्रीस्वाध्याय' (जब तक त्रैमासिक रहेगा तब तक) आश्विन शुक्ल १०, पौष शुक्ल १०, चैत्र शुक्ल १० और आषाढ़ शुक्ल १० को प्रकाशित हुआ करेगा। इस त्रैमासिक संस्करणका वार्षिक मूल्य ३) और एक प्रतिका १) रु० है। स्थायी ग्राहक आश्विन से ही बनाये जाते हैं। श्रीस्वाध्यायके स्थायी ग्राहकों को हमारी "श्रीग्रन्थमाला" की सभी अद्भुत अमूल्य पुस्तकें बिना मूल्य (मुफ्त) दी जावेंगी। ऐसी सर्वोपयोगी अमूल्य पुस्तकें कोई भी मासिक पत्र प्रति वर्ष अपने ग्राहकोंको बिना मूल्य नहीं देता। यह 'श्रीस्वाध्याय' के ग्राहकोंको विशेष लाभ है। पर्याप्त संरक्षक सहायक और ग्राहक होने पर बहुत शीघ्र ही 'श्रीस्वाध्याय' मासिक कर दिया जायगा।

(२ जिन सज्जनोंके लेख श्रीस्वाध्याय-सदनकी ओरसे प्रार्थना पूर्वक मँगवाये जाएँगे वे अवश्य प्रकाशित होंगे। अन्य लेख यदि गवेषणापूर्ण मौलिक और उपयोगी समझे जायेंगे तो यथा समय प्रकाशित हो जावेंगे, अन्यथा नहीं।

(३) लेख, कविता, चित्र, समालोचानार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ और विनिमय (परिवर्तन) के पत्र पत्रिकायें सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (पंजाब) के पतेसे भेजने चाहिएँ।

(४) लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री स्पष्ट अक्षरोंमें कागजके एक ओर ही लिखी होनी चाहिए।

(५) किसी लेखके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने बढ़ाने तथा उसे लौटाने या न लौटानेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। जिस अस्वीकृत लेखको सम्पादक लौटाना स्वीकार करें, उसका डाक और रजिस्ट्रीका व्यय लेखकको भेजना होगा। अधूरे लेख नहीं लिये जाते।

विज्ञापन छपाईके नियम—

१ पृष्ठ या दो कालमकी छपाई	२०)	प्रति अङ्क
आधा पृष्ठ या एक कालमकी छपाई	११)	,,
चौथाई पृष्ठ या आधा ,, ,,	६)	,,

पूरे वर्ष या चार अङ्कोंमें एक पृष्ठकी छपाई ६५) रु० होगी।

त्रैमासिक 'श्रीस्वाध्याय' के पृष्ठका आकार २०×३० अठपेजी। कालम स्थान ८×३ इञ्च है।

आधे पृष्ठसे अधिक विज्ञापन देनेवालोंको 'श्रीस्वाध्याय' बिना मूल्य भेजा जावेगा। छपाईका शुल्क (मूल्य) पहले प्राप्त होने पर ही विज्ञापन पत्रमें छापा जावेगा।

विशेष जाननेके लिए—

व्यवस्थापक श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (पञ्जाब) से पत्र व्यवहार करें।

श्रीस्वाध्यायके संरक्षक—

क्षत्रियकुल-कमल-दिवाकर बघाटमहीमहेन्द्र धर्ममार्त्तण्ड
राजा साहब श्री १०५ मान् दुर्गासिंहजी बहादुर C. I. E., सोलन ।



प्रतिदिनमुदीयमानो रंजितदशदिग्वधूवदनचन्द्रः ।
दुर्गासिंहविवस्वान् जयतुतरां श्रीकरोल्लासी ॥

आपका ४३वाँ शुभजन्म-महोत्सव अभी गत ३० आश्विन सौर, ता० १५ सितम्बरको
समारोहपूर्वक सुसम्पन्न हुआ ।

❀ श्रीः ❀

श्रीस्वाध्याय

[त्रैमासिक-पत्र]

संस्थापक तथा प्रधानाध्यक्ष—

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहिम आचार्य

श्री १०८ मान् अमृतवाग्भवजी महाराज

संरक्षक—

बघाटमहीमहेन्द्र धर्ममार्तण्ड

राजा साहब श्री १०५ मान् दुर्गासिंहजी बहादुर C. I. E. सोलन।

रावराजा कैप्टेन श्री १०५ मान् गिरिधारीशरणसिंहजी भरतपुर।

सहायक—

श्री १०५ मती माजी महाराणी साहिबा (सिरमौरीजी) बघाट राज्य।

श्री १०५ मती सौ० राणी साहिबा वृन्दावनवालीजी (भरतपुर)

श्रीमान् सरदार कुँवर रणदीपसिंहजी नाहन (सिरमौर)

श्रीमान् कुँवर शिवसिंहजी B. A., L-L. B. सेशन जज सोलन।

श्रीमान् कुँवर ईश्वरीसिंहजी सुपरिण्टेण्डेण्ट कोर्ट आफ वार्डस् उदयपुर (मेवाड़)

श्रीमान् सरदार जगजीतसिंहजी ढिल्लों B. A., L-L. B. नाभा।

सम्पादक—

ज्योतिषमार्तण्ड ज्योतिर्विद्यारत्न दैवज्ञमणि गणकरत्न

श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिश्शास्त्री

प्रकाशक—

श्रीस्वाध्यायसदन सोलन (पञ्जाब).

❀ विषय-सूची ❀

श्रीस्वाध्यायको —

भारतीय विचक्षण वर्ग किस दृष्टिसे देखता है--

'श्रीस्वाध्याय' पर प्राप्त हुई सम्मतियोंमेंसे भारतके सम्मानित धुरन्धर विद्वानों एवं राष्ट्रिय प्रसिद्ध पत्रोंकी सम्मतियाँ वा समालोचनाएं प्रथम और द्वितीय वर्षके गताङ्कोंमें क्रमशः प्रकाशित की गई थीं। गत ग्रीष्माङ्क प्रकाशित होनेके अनन्तर प्राप्त हुई अनेकों सुविख्यात साहित्यिक विद्वानोंकी सम्मतियोमेंसे कुछ एकका संक्षिप्त भाग यहाँ और देखिये—

जोधपुर-राज्य-पुरातत्वान्वेषण-विभागके अध्यक्ष इतिहासके सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय श्री पं० विश्वेश्वरनाथजी रेऊ लिखते हैं—

"श्रीस्वाध्याय" अपने ढंगका सुन्दर और श्रेष्ठ त्रैमासिक पत्र है। इसमें अधिकतर ज्ञातव्य और मननयोग्य विषयोंको स्थान दिया जाता है। हम इसके संस्थापक श्रीमान् अमृतवाग्भवजी आचार्य और सम्पादक श्री पं० हरदेवशर्माजी त्रिवेदीको ऐसे सर्वाङ्गसुन्दर पत्रको प्रकाशित करनेके लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं। आशा है भारतवासी विद्वान् और श्रीमान् लोग इसे अपना कर इसकी उन्नतिमें सहायक होंगे।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके भू०पू० अध्यक्ष, काश्मीर राज्यकी व्यवस्थापक सभाके सदस्य श्री पं० अमरनाथजी काक लिखते हैं—

मुझे "श्रीस्वाध्याय" पढ़ कर बहुत हर्ष हुआ। इन अङ्कोंमें जो लेख प्रकाशित हुए हैं वे भाषा तथा भावोंकी दृष्टिमें उच्चकोटिके हैं। वे लेख सारगर्भित होनेके अतिरिक्त बड़ी सुन्दर और सरल भाषामें लिखे हुए हैं।..................ऐसे पत्रोंकी आधुनिक समयमें बहुत आवश्यकता है। हमारी प्राचीन संस्कृति सभ्यता विद्या तथा विज्ञान लुप्त हो रहे हैं। आधुनिक समयके भारत निवासियोंमें अधिकांश लोगोंको विदित ही नहीं कि उनका भूतकाल कैसा उज्ज्वल था। उनकी सभ्यता और संस्कृति क्या थी और उनके पूर्वज विज्ञान और विद्यामें क्या उन्नति प्राप्त कर चुके थे ? ये सब बातें वे शास्त्रोंके स्वाध्यायसे जान सकते हैं; परन्तु अधिकांश लोग संस्कृत नहीं जानते। अतः उस सभ्यता, संस्कृति, विद्या और विज्ञानकी रक्षा और प्रचारका एक मात्र साधन यह है कि शास्त्रोंमें बताई हुई बातोंको वास्तविक रूपमें हिन्दी भाषा द्वारा लोगोंमें पहुंचाया जाय। यही लक्ष्य "श्रीस्वाध्याय" का है। इस प्रकारके पत्रोंसे मृतप्राय भारतीय-संस्कृतिका पुनरुत्थान सम्भव है। इसलिए भारतीय-संस्कृतिके प्रेमियोंको "श्रीस्वाध्याय" पत्रकी सहायता अवश्य करनी चाहिए। यह पत्र अध्यापकों, प्रचारकों तथा विद्यार्थियोंके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। इस पत्रके संचालकोंका यह प्रयत्न बहुत प्रशंसनीय है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

संस्कृत साहित्य वैदिक वाङ्मय और इतिहासके प्रकाण्ड-पण्डित, आर्यजगत्के ख्याति-प्राप्त विद्वान् पुरातत्त्वान्वेषक श्री भगवद्दत्तजी बी० ए० लिखते हैं—

"……… …… आपके "श्रीस्वाध्याय" का पाठ उसके आरम्भ दिनसे ही कर रहा हूँ। मुझे आशा नहीं थी कि इस अत्यन्त उपयोगी त्रैमासिकके प्रकाशनमें आप इतने सफल होंगे। इसकी भाषाका सौष्ठव, इसके विचारोंका उत्कर्ष, इसके विषयोंका वैलक्षण्य और इसका आर्य-संस्कृतिका संरक्षण मुझे अधिकाधिक आकर्षित करते आ रहे हैं। आपके पत्रके लेखोंमें भारतीयता मिलती है और योरूपीय छापका अभाव है। आपके पत्रके साथ विद्वद्वर श्री आचार्य अमृतवाग्भव जी महाराजका सम्बन्ध अत्यन्त श्रेयस्कर है। उनके नेतृत्वमें आपका पत्र निश्चय ही सदा उन्नतिकी ओर अग्रसर रहेगा। नए वर्षमें पदार्पणके लिए आपको हार्दिक बधाई हो।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

विद्याविभाग (कांकरोली) के संचालक संस्कृत-साहित्यके सुकवि और प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० कण्ठमणिजी शास्त्री लिखते हैं—

"…………वास्तवमें आपका प्रयत्न श्लाघ्य है। हिन्दी क्षेत्रमें प्रस्तुत विषयका पत्र प्रकाशित कर उसके एक आवश्यक अङ्गकी पूर्तिका प्रशंसनीय उद्योग किया है। जिसके लिए आप तथा उसके संचालक धन्यवादार्ह हैं। प्रत्येक अङ्कके लेख कविता आदि मननीय पठनीय हैं, जिनमें प्रत्येक विषय अपने मौलिक ढंगसे अतिशय उपादेयताको प्राप्त करता है। ऐसे कठिन समयमें भी पत्रका संचालन करते रहना एक बड़े साहसका कार्य है, जिसमें आपकी हार्दिक साहित्यिक लगनका दर्शन होता है…………।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अर्थशास्त्र समाजशास्त्र और राजनीतिके सुप्रसिद्ध विद्वान्, कई ग्रन्थोंके यशस्वी लेखक, भारतीयग्रन्थमाला प्रयागके अध्यक्ष, श्री भगवानदासजी केला लिखते हैं—

"…………आपके 'श्रीस्वाध्याय' के अङ्क मैंने अवलोकन किये।……लेख मुझे काफी पसन्द आये, विशेषतया शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति सम्बन्धी। "कालाय तस्मै नमः" (दैवज्ञकी दृष्टिमें संसार-चक्र) भी ज्ञान पूर्ण है। आप पंजाबमें राष्ट्र-भाषाके प्रचारके लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसकी हृदयसे सराहना करता हूँ। आशा है कि आपको अन्य सज्जनोंका यथेष्ट सहयोग प्राप्त होगा…………।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

हिन्दी और संस्कृत-साहित्यके सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० हनुमान् शर्मा जी लिखते हैं—

"…………'श्रीस्वाध्याय' अवश्य ही स्वाध्याय करने योग्य है। इसके सभी विषय सर्वसाधारणसे ले कर विद्वान् पर्यन्तके ज्ञान और विज्ञानको बढ़ाने वाले, पठनीय, मननीय और संग्रहणीय हैं। कागज, छपाई, संपादन और शुद्धता आदि सराहनीय हैं। इतने पर भी मूल्य स्वल्प और काम तृप्ति कारक। यह सोनेमें सुगन्ध अथवा आपकी उदारता है।"

श्रीस्वाध्यायमें क्या क्या होगा ?

विज्ञ पाठकोंको 'श्रीस्वाध्याय' के उद्देश्य तथा नीतिका ज्ञान तो भली-भांति हो ही गया है। इसमें जो मोक्षादि पांच प्रधान स्तम्भ रक्खे गये हैं—उनके अन्तर्गत किन २ विषयों पर लेख लिखे जा सकते हैं ? इसकी एक संक्षिप्त सूची हम नीचे दे रहे हैं। इस तालिका द्वारा हमारे विद्वान् लेखकोंको विषय चुननेमें सुविधा होगी।

मोक्षस्तम्भमें—

भारतीय दर्शनोंका संक्षिप्त परिचय। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त (शाङ्कर रामानुज निम्बार्क, माध्व श्रीकण्ठ भास्कर आदि मतोंका संक्षिप्त सार) शैव (त्रिक प्रत्यभिज्ञा पाशुपत आदि मतोंका संक्षिप्त परिचय) शाक्त (दक्षिण वाम कौल तन्त्र सिद्धान्त त्रैपुर आदि मतोंके संक्षिप्त परिचय) पारमार्थिक मोक्ष, व्यावहारिक मोक्ष आदि आदि।

धर्मस्तम्भमें—

वेदोंका स्वाध्याय। राष्ट्रिय शिक्षा। घरेलू शिक्षा। स्त्री शिक्षा। धर्म रहस्य। धर्ममें स्मृतियोंका स्थान। कल्प सूत्र। स्त्रीधन। दत्तक-दाय। दाय-भाग। प्रायश्चित्त विधान। पर्व व्रतोत्सवादि निर्णय। मुहूर्त्तादि निर्णय। पर्व किस प्रकार मनाये जायें। पर्व और त्यौहारोंका राष्ट्रिय महत्त्व। पर्व मनानेमें धार्मिक दृष्टिसे हानि लाभका विचार। ज्योतिश्शास्त्रानुसार तात्कालिक शुभाशुभ योग और भविष्यवाणियां। राशिफल। खगोलके ग्रह नक्षत्रादिकोंका परिचय।

अर्थस्तम्भमें—

अर्थ शास्त्र। चाणक्यके विचार। घरकी व्यवस्था। पारिवारिक आय व्यय। राष्ट्रको समृद्ध करनेके उपाय। यातायातमें अर्थ प्राप्ति। व्यापार। ज्योतिश्शास्त्रानुसार महर्घ समर्घ (तेजी मंदी) विचार। खानोंसे अर्थ प्राप्ति। आर्थिक दृष्टिसे कलाओंका विचार। पर्व और आर्थिक दृष्टि। युद्धसे आर्थिक हानि लाभ। कृषि (धान्य, फल, शाक-भाजी, ईख, कपास आदिके उत्पादन) से अर्थ प्राप्ति आदि आदि।

कामस्तम्भमें—

आयुर्वेद। शरीरके सभी अवयवोंको सुन्दर सुदृढ़ स्वस्थ ओजस्वी बनानेके उपाय। दीर्घजीवी बननेके उपाय। रसोईघर। कलाकौशल। घरकी स्वच्छता और पवित्रता। बच्चोंका पालन पोषण। भृत्योंके साथ व्यवहार। पशुपालन आदि आदि।

इतिहासस्तम्भमें—

इतिहास जाननेके साधन (ताम्रपत्र दानपत्र मुद्रा शिलालेखादि) संस्कृत-साहित्यका इतिहास। भारतीय ग्रन्थ और ग्रन्थाकारोंके परिचय। भौगोलिक परिचय (देशकी सीमायें नदियां पर्वत तीर्थ नगर ग्राम आदि) प्राचीनकालमें भूमण्डलके समस्त देश प्रान्त नगरादिकोंके जो नाम और सीमा थी उनके वर्तमान नाम और सीमाका विवेचन। महापुरुषों (दानवीर युद्धवीर धर्मवीर मृत्युवीर शास्त्रार्थवीर विशिष्टविद्वान् भगवद्भक्त राष्ट्रभक्त सिद्ध सती ज्ञानी आदि) के जीवन चरित्र। प्रत्येक वस्तु पर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार।

विशेष—

इसके अतिरिक्त 'श्रीस्वाध्याय' में कुछ सामयिक लेख भी रहेंगे। प्रत्येक अङ्ककी त्रैमासिक अवधिमें जो जो विशेष पर्व त्यौहार या जिन २ अवतारों एवं महापुरुषोंकी जयन्तियां आवेंगी उन उन पर विशेष रूपसे प्रकाश डाला जावेगा। आगामी अङ्क (हेमन्ताङ्क) के लिए विद्वान् महानुभाव सर्व प्रथम निम्न विषयों पर सुविचारपूर्ण लेख भेजनेकी अवश्य कृपा करें।

सङ्कष्ट-चतुर्थी, षट्तिला एकादशी, श्रीसीता जयन्ती, श्री महाशिवरात्रि, राष्ट्रियपर्व होली, बसन्त, भक्तवर प्रह्लादका संक्षिप्त जीवन-चरित्र, श्रीरामकृष्ण परमहंस तथा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके महान् आदर्श जीवन पर स्वतन्त्र विचार, आदि आदि—

सब लेख कार्तिक शु० १५ ता० ११ नवम्बर १९४३ पर्यन्त "सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (पञ्जाब)" इस पते पर पहुंचना आवश्यक है।

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः । ❀ श्रीः ❀ स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम् ।

श्रीस्वाध्याय

{ शरदंक }

स्वराष्ट्रशिक्षां गृह्णीयाच्चिकीर्षुः स्वां समुन्नतिम् ।
दूरदृष्टिर्यया भूत्वा न कदाऽपि विषीदति ॥ [राष्ट्रालोक]

वर्ष	सोलन, आश्विन शु० १० शुक्रवार	संख्या
३	सं० २००० वि०	१

तत्तद्राष्ट्रे मानवानां व्यवस्थां शोभासम्पच्छालिनीमार्यरीत्या ।
प्रेम्णा लोके स्थापयँस्तत्त्वदर्शी श्रीस्वाध्यायः कल्पतां विश्वभूत्यै ॥
—अ० वा० आचार्य

श्रीस्वाध्यायकी महिमा

[महामहोपाध्याय श्री० पं० परमेश्वरानन्दजी विद्याभास्कर]

धर्मब्रह्मरहस्यमस्ति मनुजाश्चेद् वो विजिज्ञासितं
वेदैतिह्यमनिन्द्यमार्यजनुषां भूम्नाऽनुसंधित्सितम् ।
सत्साहित्यसमुद्रवीचिनिचये चेत् साधु सिस्नासितं
श्रीस्वाध्यायमहर्निशं हरकृपोद्भासं तदाभ्यस्यत ॥

[प्रिय (श्रीस्वाध्यायके प्रेमी) सज्जनों ! धर्म तथा ब्रह्मके रहस्यको जाननेकी और अनुभूत करनेकी यदि आप लोगोंको इच्छा है, आर्यकुलोत्पन्न पुरुषोंके संसारश्रेष्ठ वेद तथा इतिहासका भलीभांति अनुसन्धान करनेकी यदि आप लोगों को इच्छा है, सुन्दर तथा हितकारक साहित्य-समुद्रके तरङ्ग-समुदायोंमें सम्यक् प्रकारसे अवगाहन कर पूर्ण पवित्र होनेकी यदि आप लोगोंकी इच्छा है तो हर कृपासे प्रकाशित होने वाले इस 'श्रीस्वाध्याय' का प्रतिदिन अभ्यास करिये ।]

तृतीय वर्षमें पदार्पण

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वाः ॥ (अथर्व०)

काल रूपी अश्वकी सरपट चालके बीच दो वर्ष जलके बुलबुलेके समान भी नहीं है, और उस समय जब कि भगवान्‌की "कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः" यह प्रलयङ्करी वाणी समस्त संसारमें श्रावणके काले बादलोंकी भीम गर्जनाके समान सुनाई दे रही है। हमारे अपने राष्ट्रमें ही जब अकाल (दुर्भिक्ष) और रोग मुँह बाये खड़े हैं, बंगालसे 'हा अन्न, हा अन्न' की करुण-ध्वनि आ रही है, उस समय 'श्रीस्वाध्याय' के सफलता पूर्वक बीते दो वर्षोंकी विपद्-कथा सुनाना कहाँ तक संगत होगा ?

हमने गत दो वर्षोंमें 'श्रीस्वाध्याय' द्वारा जो सेवा की है, उसका मूल्याङ्कन करनेका हमें कोई अधिकार नहीं। परन्तु हम यह अवश्य कहेंगे कि हिन्दी-साहित्य के इतिहासमें हमने एक नया मार्ग चुना है। यह ऐसा पथ है जिस पर चलनेका इससे पूर्व और किसी ने इस रूपमें साहस नहीं किया। यदि हमारे महामान्य संरक्षकोंकी सक्रिय उदार सहायता, आचार्य चरणोंका वरदहस्त शुभाशीर्वाद एवं विद्वान् लेखकों और प्रेमी पाठकोंका प्रेमपूर्ण सहयोग भविष्यमें भी इसी प्रकार बना रहा तो विश्वास दिलाते हैं कि सेवाके इस स्वीकृत पथसे हम कदापि विचलित न होंगे।

दूसरे वर्षके प्रथमाङ्कमें हमने अपना ध्येय बताते हुए लिखा था कि—"जनताकी रुचिकी अपेक्षा उसके हितका ध्यान रखना ही राष्ट्रकल्याणका जीवित मार्ग है।" हमने यह भी निवेदन किया था कि—'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' तथा 'अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः' इसी कण्टकाकीर्ण मार्गको अपनानेके कारण असिधारा पर चलते हुए हमें अनेक विघ्नबाधाएँ झेलनी पड़ीं और उस समय यह प्रतीत होने लगा कि अब हम अपना कर्तव्य वास्तविक रूपमें पालन न कर सकेंगे। परन्तु ऐसे कठिन समयमें भी महामाया जगदम्बाने हमारी रक्षा की; उसीका यह सुफल है कि 'श्रीस्वाध्याय' आज इस अङ्कसे अपने तीसरे वर्षमें पदार्पण कर रहा है।

इन दो वर्षोंके स्वल्प-से समयमें ही 'श्रीस्वाध्याय' इतना लोकप्रिय और विद्वानोंकी दृष्टिमें आदरका पात्र बन गया है कि कई सहृदय महानुभाव इसे शीघ्र ही मासिक रूपमें देखना चाहते हैं। हमारा भी आरम्भसे यही (मासिक करनेका) सङ्कल्प रहा है, किन्तु अपना प्रेस हुए बिना और कागजकी वर्तमान दुष्प्राप्यता और अत्यधिक महर्घतामें अभी यह सम्भव नहीं दीखता। हम अपने उन प्रेमी पाठकोंसे इस अवसर पर यही निवेदन करना चाहते हैं कि वे भी हमारी भांति अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षा करें और उस अवसरको लानेमें यथाशक्ति सहयोग दें।

इस तीसरे वर्षमें 'श्रीस्वाध्याय' को हम यथाशक्ति और अधिक लोकोपयोगी और राष्ट्रकल्याणकारी बनानेका प्रयत्न अवश्य करेंगे। गताङ्ककी सूचनाके अनुसार वर्तमान विषम-परिस्थितिमें भी यह 'नव-वर्षाङ्क' विशेषाङ्कके रूपमें पाठकोंको समर्पित है। इसके सम्पादनमें हम कहाँ तक सफल हो सके हैं इसका निर्णय महाकवि कालिदासके—

'आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥'

इन शब्दोंको दुहराते हुए सहृदय पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

—हरदेव शर्मा त्रिवेदी
(सम्पादक)

श्रीस्वाध्यायके संरक्षक—

रावराजा कैप्टन श्री १०५ मान् गिरिधारीशरणसिंहजी, भरतपुर।



मङ्गलरूपो भास्वान् गुरुकविबुधसेवकः पुरुषसोमः।
गिरिधारीशरणसिंहो जयतुतरां रावराजोऽसौ॥

आपका ३१वाँ शुभ जन्मोत्सव अभी गत भाद्रपद शुक्ला १४ सोमवार ता० १३ सितम्बरको सुसम्पन्न हुआ।

शक्तिपूजा

स्वातन्त्र्याऽऽप्तिः साधनामन्तरा नो स्वातन्त्र्याऽऽप्तौ साधना शक्तिपूजा ।
कल्याणानि प्राणिनां सैव सूते तस्मात् कार्या सा सदा साऽनुभावैः ॥

[साधनाके बिना स्वातन्त्र्यकी प्राप्ति नहीं होती, स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिमें शक्तिपूजा ही साधना है । प्राणियोंके प्रत्येक प्रकारके कल्याणको उत्पन्न करना यह शक्तिपूजाके ही अधिकारमें है, इसलिए सत्पुरुषोंके निश्चित किये हुए इस सिद्धान्तको समझनेवाले महापुरुषोंको चाहिए कि वे सर्वदा शक्तिकी पूजा करें, तभी वे समस्त संसारका कल्याण कर सकेंगे ।]

शक्तिपूजा स्वाभाविक है। इतनी स्वाभाविक कि जितनी वस्तुमें वस्तुत्वकी स्थिति। घट शब्द वैखरी वाणीसे उच्चारित होनेसे पहले ही घट-वस्तुका प्रतिभास होने लग जाता है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी चारों प्रकारकी वाणी वस्तुकी अभिव्यञ्जनामें निरन्तर लगी रहती है। शक्ति सर्वात्मरूप है। इसका सम्बोध वाणीको भी है, इसीलिए उसकी अभिव्यञ्जना निरन्तर करती हुई वाणी कभी थकती नहीं, उसे शक्तिपूजा अत्यन्त प्रिय है। जो जितना ही सन्निकट हो कर शक्तिकी पूजा करेगा शक्ति भी उसका उतना ही अधिक अभ्युदय करती है । आत्मभावके साक्षात्कारमें इसी कारण तारतम्य हो जाता है।

मूल वस्तु एक होने पर भी अनाद्यनन्त महिमा होनेके कारण वह अपने आपका अनन्त प्रकारसे साक्षात्कार करती रहती है। उसे पूर्णरूपसे विज्ञात है कि मैं सर्वशक्तिस्वरूप हूं। तिरस्कार तथा पुरस्कार दोनों ही भावोंसे वह अपने आपका पूजन करती रहती है। जीवानन्दनाथ तथा शिवानन्दनाथ नामसे अभिहित अपने स्वरूपोंको वह समान रूपसे प्यार करती है। उन्हें परखती है तथा आत्मसात् करती है। उसे आत्मपूजासे अत्यन्त प्रेम है। उसका सारा ही जीवन आत्मपूजामय है। वह प्रत्येक प्रकारके अनन्तानन्तस्वरूपोंमें विराजती है । परन्तु उसे आत्मविस्मृति स्पर्श भी नहीं करती। कदाचित् वह यदि स्पर्श कर ही ले तो वह भी आत्मस्वरूप हो कर पूर्ण आत्मविज्ञ हो रहती है। वैखरीका आधिपत्य जाग्रज्जगत्में, मध्यमाका स्वाप्नजगत्में, पश्यन्तीका सौषुप्तजगत्में तथा पराका तुर्यामें सीमित है। यों तो आत्मस्वरूपातिरिक्तकी शंका ही नहीं होती, इसलिये सब कुछ आत्मस्वरूप ही है। पुनरपि आत्म-क्रीड़ामें कुछ रूप शरीर तथा कुछ शरीरी स्थापित किये गये हैं। उनमें शरीर बाह्य तथा शरीरी आन्तर सम्बोधित होते रहते हैं; इसी कारण शरीरी आत्माके सन्निकट हैं, तथा शरीर आत्मासे उनकी अपेक्षया कहीं दूर। शरीरकी आराधना करनेवाले बहिर्मुख होनेके कारण शक्तिके बाहरी रूपोंको ही सर्वस्व समझते हैं। वे शक्तिरूप अधिक स्थिर न होनेसे अपने उपासकोंको स्थिर शान्ति भी नहीं दे सकते। शक्तिके शरीरीरूप पूर्वापेक्षया कुछ स्थिर होनेसे कुछ स्थिर शान्ति अपने उपासकोंको दे सकते हैं। शरीरी-रूपोंके आराधकगण पहलेसे कुछ अन्तर्मुख अधिक होते हैं, इसीलिए उन्हें अधिक शान्ति प्राप्त हो सकती है। दैवी सम्पत्तिशाली शान्तिप्रिय होते हैं, एवं आसुरी सम्पत्तिवाले अशान्तिकारक होते हैं। करते तो दोनों ही शक्तिपूजा ही हैं, केवल पूजाकी विधिमें एक दूसरेसे भेदभाव रखते हैं । इसी भेदने किसीको साधु तो किसीको खल बनाया है। शक्तिपूजासे शक्तिका अनुग्रह होता है। यदि शक्ति-पूजक साधु आर्य होगा तो सबको सुखी करेगा,

एवं स्वयं भी सुखी हो रहेगा। खल अथवा अनार्य शक्तिपूजक सबको दुःखी करता रहता है, अतएव अन्तमें स्वयं भी दुःखी होगा। खलोंकी शक्तिपूजा लोककल्याणके स्थानमें लोकपीड़न ही करती है। नीतिकारोंने कितना सुन्दर कहा है :—

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीड़नाय।
खलस्य, साधोर्विपरीतमेतत्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

[खलकी विद्या विवाद के लिए, धन अभिमानके लिए तथा शक्ति दूसरों को पीड़ित करनेके लिए ही उपयुक्त होती है। इसके सर्वथा विपरीत साधुकी विद्या ज्ञानके लिए, धन दानके लिए और शक्ति दूसरोंका संरक्षण करनेके लिए ही उपयुक्त होती है।]

शक्तिपूजक शक्तिस्वरूप हो रहते हैं। सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिता शक्तिपूजकका अपना स्वभाव है। विनयशील शक्तिपूजक विजयी तथा समस्त कल्याणकारक हो कर सबको स्वतन्त्र करता है, तथा अविनयशील शक्तिपूजक समस्त-नाशकारक हो कर सबको परतन्त्र करके अपनेको भी परतन्त्र करता हुआ अन्तमें अपनेको भी नष्ट कर बैठता है। विनयशीलको ही आर्य कहना चाहिए। उससे अन्य सभी अनार्य हैं। श्रीराष्ट्रालोकमें आर्योंका लक्षण यों किया है :—

निग्रहानुग्रहाभ्यां ये निर्लोभाः समदर्शिनः।
समुन्नयन्ति संसारं त एवाऽऽर्याः स्मृता बुधैः॥

[ज्ञानवान् पुरुषोंकी स्मृतिमें वे ही आर्य कहे जा सकते हैं जो संसारकी सम्यक् उन्नति करते हैं। जिनका लोभ पूर्णरूपसे विनष्ट हो चुका है, जो समस्त संसारके स्वभावसे पूर्ण परिचित होते हैं अत एव समस्त संसारका यथोचित परिचय करानेमें जिन्हें पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्त है, इसीलिए वे निग्रह (दण्ड) तथा अनुग्रह (दया) दोनोंसे पूर्ण होते हैं और दोनों प्रकारकी शक्तियोंका सदुपयोग संसारकी समुन्नतिके लिए ही करते हैं।]

आर्योंकी शक्तिपूजा ही सबको सुख दे सकती है, अत एव आर्योंको चाहिए कि वे निरन्तर आत्मशक्तिकी पूजा करें और उससे सबको सुखी करें। उससे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। इन्द्रादि देवगण शक्तिपूजा करते हुए उससे क्या क्या प्राप्त होता है, इस विषय में उन्हींका कहना देखिये क्या है :—

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाऽभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥

[हे जगदम्ब! आप जिन पर प्रसन्न होती हैं उन्हें किस बातकी अपूर्णता रह सकती है? आपकी प्रसन्नता उनका प्रत्येक प्रकारका अभ्युदय करती है, जनपदोंमें वे सम्मानित होते हैं, नाना प्रकारके धन उन्हें प्राप्त होते हैं, सुन्दर अनेक प्रकारका यशोलाभ उन्हें छोड़कर किसे हो सकता है? धर्म अर्थ तथा काम इस त्रिवर्गके साधन और फलोंके उपभोगमें कभी उन्हें बाधाका साम्मुख्य नहीं करना पड़ता। उनके निर्मित शासनके नियमोंको तोड़ना यह साधारण पुरुषोंके हाथकी बात नहीं। वे ही सब प्रकारसे संसारमें धन्य कहे जा सकते हैं, उनके घरमें पुत्र भृत्य तथा दाराकी समृद्धि निरन्तर बनी रहती है।]

'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी पाठकों! वर्तमान संसारकी परिस्थिति देखकर किस आर्य पुरुषका हृदय प्रखिन्न न होगा? स्वातन्त्र्यके बिना संसार सुखी नहीं हो सकता, तथा स्वातन्त्र्य बिना विधियुक्त आत्मशक्तिके पूजनके प्राप्त नहीं हो सकता। प्रत्येक राष्ट्रमें यावत्पर्यन्त स्वातन्त्र्य न प्रतिष्ठित होगा तावत्पर्यन्त संसारमें शान्ति प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। स्वातन्त्र्य-प्रतिष्ठाके लिए प्रत्येक राष्ट्रको आर्यविधया शक्तिपूजा अवश्य करनी होगी, अनार्य

विधया शक्तिपूजा करनेवाले संसारमें अशान्तिको ही उत्पन्न करते रहते हैं इस बातको कहनेकी अधिक आवश्यकता ही नहीं। उनकी शक्तिपूजा उनके बहिर्मुख होनेके कारण राज्यवाद संघवाद तथा व्यक्तिवाद जैसे उत्तरोत्तर अधिकाधिक घोरसे घोर अशान्तिजनक वातावरण उत्पन्न करती रहती है, जिनसे समस्त संसारको विनाशका ग्रास होना ही पड़ता है। वर्तमान-कालिक महायुद्धने अनार्यविधिसे शक्तिपूजाके रहस्य तथा फलको प्रकट कर ही दिया है। अतः प्रत्येक राष्ट्रियको चाहिए कि वह प्रत्येक राष्ट्रस्वातन्त्र्यके योगक्षेमके लिए विधियुक्त शक्ति-पूजा करे तथा उसका सदुपयोग ही करे। अपने राष्ट्र-स्वातन्त्र्यकी योगक्षेम-चिन्ता पहले किये बिना दूसरोंकी चिन्ता अथवा दूसरोंकी सहायता आत्म-विवञ्चनामात्र होगा। परवञ्चककी अपेक्षया आत्म-वञ्चक महान् अपराधी होता है, ऐसा त्रिकालदर्शी महर्षियोंका सिद्धान्त है। उनका कथन है कि आत्म-हत्या ब्रह्महत्यासे भी भयानक पाप है। पापीको सुख नहीं प्राप्त हो सकता, परतन्त्रको पुण्यकी प्राप्ति कहां ? पुण्यवान् ही सुखी होनेका अधिकारी है। स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके लिए जो शक्तिपूजा की जाती है सर्वाधिकपुण्यजनकता उसी शक्तिपूजाके अधि-कारकी बात है। सुखकी प्राप्ति स्वातन्त्र्यके बिना कभी नहीं हो सकती, इस विषयमें आत्मविलासमें कितना सुन्दर लिखा है देखिये :—

सुखाप्तिवाञ्छा हृदये वर्तते यदि यत्यताम्।
पूर्णस्वतन्त्रताप्राप्त्यै सैव पूर्णसुखप्रदा॥

[सुख प्राप्त करनेकी इच्छा यदि हृदयमें है तो पूर्ण स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए यत्न करिये, पूर्ण स्वतन्त्रता ही पूर्ण सुख दे सकती है।]

स्वातन्त्र्य प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय, श्रीराष्ट्रालोकमें यों वर्णित हुआ है—

स्वातन्त्र्यं भिक्षया नैव कदाचिदपि लभ्यते।
योगक्षेमसमर्थैका राष्ट्रशक्तिः प्रभाविनी॥

[भीख मांककर किसी कालमें भी स्वातन्त्र्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रभाविनी राष्ट्रशक्ति ही योग (अप्राप्त वस्तुका प्राप्त करना) तथा क्षेम (प्राप्त वस्तुका संरक्षण) में सर्वोपरि सामर्थ्य रखती है।]

प्रिय पाठकवृन्द! भारतकी स्वतन्त्रताके लिए विधियुक्त आत्मशक्तिकी पूजासे उत्तम और क्या उपाय हो सकता है ? अतः प्रत्येक भारतीय शक्ति-पूजामें संलग्न हो यही आत्मशक्तिके आगे नम्र निवेदन है। शिवमस्तु।

—अ० वा० आचार्य

प्रभुसे !

(कवयिता— श्री पं० चम्पालालजी विशारद कविशेखर 'मञ्जुल')

हम आएँगे भारतमें फिरसे बढ़ जाएँगे पापके पुञ्ज जभी।
इसी बातकी आशसे शान्त बने सहते ही रहे दुख द्वन्द्व सभी॥
जब 'मञ्जुल' विश्वमें पूर्णतया सुखके सब साधन प्राप्त अभी।
फिर जायगी क्या इस देश पै भी करुणानिधि कोर कृपाकी कभी॥१॥
पय पीकर पामर पन्नगोंके विषदन्त कभी किल जाएँगे क्या ?
सभी देके निरन्तर यातनाएँ हिय पापियोंके हिल जाएँगे क्या ?
कवि 'मञ्जुल' वारिके शोषणसे कुल पङ्कजके खिल जाएँगे क्या ?
बिन आयुध जेलके सींखचोंसे अधिकार हमें मिल जाएँगे क्या ?॥२॥

* मोक्ष *

[लेखक—श्री पं० बलजिन्नाथजी शास्त्री बी० ए०]

मानव जीवनके चार ही मुख्य प्रयोजन माने जाते हैं। १ धर्म, २ अर्थ, ३ काम, ४ मोक्ष। इनमेंसे धर्म अर्थ और काम नश्वर हैं, दुःख सहित हैं और इनसे चिरस्थायी सुखकी प्राप्ति नहीं होती है। एक स्थावर पौदेसे लेकर ब्रह्मादि देव पर्यन्त सभी अनन्त सुखको चाहते हैं और इसके लिए प्रयत्न भी करते हैं। इस कारण अनन्त सुखकी प्राप्तिके निमित्त प्रत्येक जीवधारीको मोक्षके लिए ही प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि मोक्षसे ही अनन्त सुख मिलता है। अतः मोक्ष ही सर्वोत्कृष्ट है। यह भारतीय दार्शनिकोंका सिद्धान्त है। इस मोक्षके विषयमें भिन्न-भिन्न शास्त्रकारोंके भिन्न-भिन्न मत हैं। उन मतोंको संक्षेपसे समझा कर मोक्षके पारमार्थिक स्वरूपका वर्णन इस लेखमें किया जाएगा।

मीमांसक तो चोदना (प्रेरणा) स्वरूप धर्मका ही व्याख्यान करते हैं। उन्होंने केवल कर्मका ही उपदेश किया है, मोक्षका नहीं। कर्मसे स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है। परन्तु वह स्वर्ग भी नश्वर है। कर्म-फलके क्षीण होने पर जीवको पुनः जन्म-मरणके संसृति-समुद्रमें गोते खाने पड़ते हैं। इस कारण विद्वानोंने कर्मसे बढ़ कर उपासनाको और उससे भी बढ़ कर उपासनाके फल ज्ञानको माना है। ज्ञानसे ही जीव मुक्त हो जाता है। यह सभी भारतीय दार्शनिक मानते हैं। इनमेंसे एक सम्प्रदाय है जिस को तौष्टिक कहते हैं। इसके दो मुख्य भेद हैं—१ विदेह और २ प्रकृतिलय। विदेह नामक साधु तो भूत तथा इन्द्रियोंको ही आत्मा मानते हैं। इस कारण वे इनकी ही उपासना करते करते इनमें ही लीन हो जाते हैं। लीन होने पर ये लोग देहसे और जन्ममरणादि दुःखोंसे छूट जाते हैं, परन्तु वासना सहित अन्तःकरणसे नहीं छूट सकते। क्योंकि वासना सहित अन्तःकरण आत्मतत्त्वके ज्ञानके बिना छोड़ता नहीं। प्रकृतिलय उनको कहते हैं जो कि पञ्चतन्मात्रोंको, अहङ्कारको, बुद्धिको अथवा मूल प्रकृतिको आत्मा मानते हैं। अतः इन तत्त्वों की उपासना करते करते ये इन प्रकृति-तत्त्वोंमें ही लीन हो जाते हैं। ये लोग भी आत्मतत्त्वके यथार्थ-ज्ञानके अभावके कारण सर्वथा मुक्त नहीं होते। अन्तःकरण इनको भी नहीं छोड़ता। अन्तःकरण बासनाओंसे वासित होता है, इस कारण कुछ समय के अनन्तर ऐसे जीवोंको संस्कारकी प्रबलताके कारण पुनः संसृति-सागरमें डाल देता है, क्योंकि अन्तःकरणका यह स्वभाव ही होता है। अतः इनका मोक्ष अनन्त नहीं होता है। उसकी नियमित अवधि है। इस लिए यह मोक्ष पारमार्थिक तथा पूर्ण मोक्ष नहीं कहा जा सकता।

इसी कारण सांख्य-शास्त्र-कार कहते हैं कि प्रकृति और पुरुष (आत्मा) के विवेकसे ही मोक्ष होता है। जब तक यह विवेक प्राप्त न हो तब तक पुरुष सर्वथा और सर्वदाके लिए मुक्त नहीं होगा। तब तक यतः कुतश्चित् अर्थात् किसी किसी पदार्थसे ही मोक्ष होगा, सर्वतः अर्थात् सब क्लेशोंसे मोक्ष होना असम्भव है। प्रकृति पुरुषके विवेक द्वारा यह पूर्णतया विज्ञात होता है कि मैं (अर्थात् पुरुष) सर्वथा मुक्त तथा पुष्करपलाशकी भांति निर्लेप हूँ। धर्म अधर्म, सुख दुःख आदि सभी प्रकृतिके स्वभाव हैं, मेरे नहीं। इस कारण मैं सर्वथा असङ्ग तथा मुक्त हूँ। इसी अवस्थाको योगदर्शनकारने समाधिकी अवस्था कहा है। उन्होंने इस विषयमें सूक्ष्मतर विचार करके यह बताया है कि ऐसी समाधिके अनन्तर निर्बीज समाधि अर्थात् निर्विकल्प समाधि होती है जिसमें यह ख्याति भी नहीं रहती। केवल

पुरुषका चैतन्यस्वरूप ही अवशिष्ट रहता है। इसी अपने स्वरूपमें विश्रान्तिको ही उन्होंने मोक्ष कहा है। इस मोक्षके उन्होंने कई उपाय बताए हैं जिनको अष्टाङ्ग-योग कहते हैं। इस अष्टाङ्गयोगमें ध्यान, धारणा द्वारा ईश्वरकी उपासना की जाती है और उसीसे फिर क्रमशः सविकल्पक तथा निर्विकल्पक समाधि सिद्ध होती है। इस प्रकारसे सर्वदा तथा सर्वथा क्लेशोंकी निवृत्तिको ही मोक्ष कहा गया है।

इसी प्रकारका मोक्ष नैयायिक भी मानते हैं। उनका भी यही मत है कि आत्माको समस्त दुःखोंसे छुटकारा प्रमेय प्रमाणरूप पदार्थोंके यथार्थज्ञान द्वारा ही मिलता है। दुःखाभावको ही आनन्द श्रुतियोंमें कहा गया है। जैसे कोई बड़े भारी बोझ से पीड़ित हो तो बोझको फेंक देनेके अनन्तर वह अपने आपको सुखी समझता है। पर वस्तुतः उस को दुःखाभावके अतिरिक्त कोई और सुख प्राप्त नहीं होता। दुःखाभावको ही वह सुख समझता है।

बौद्धोंका भी यही सिद्धान्त है। वे भी दुःखाभावको ही मोक्ष मानते हैं। वे तो अभावसे भावकी उत्पत्ति मानते हैं। उनका यह सिद्धान्त है कि ज्ञान द्वारा जीव अभावमें ही लीन हो जाता है। इस कारण उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। वे तो 'आत्मा है' ऐसा भी नहीं मानते। क्षणिक विज्ञानको ही वे आत्मा मानते हैं। वह क्षणिक विज्ञान नए नए क्षणिक विज्ञानको उत्पन्न करता रहता है जब तक कि उसे उपासनादिके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। फिर उस क्षणिक विज्ञानकी धारा समाप्त हो कर अभावमें ही लीन हो जाती है, अतः जन्मादि किसका हो? इनको तो सांख्यादि शास्त्रोंमें प्रकृतिलयोंमें ही गिना गया है। क्योंकि ये लोग भी क्षणिक विज्ञान अर्थात् बुद्धिको ही आत्मा मानते हैं और उसीकी उपासना द्वारा उसीमें वस्तुतः कुछ समयके लिए लीन हो जाते हैं। इस कारण इनका मोक्ष भी अनन्त मोक्ष नहीं कहा जा सकता। इस प्रकारके मोक्ष वादियोंके ही विषयमें वायुपुराणमें कहा हुआ है :—

दशमन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः।
भौतिकास्तु शतं पूर्णं सहस्रं त्वाभिमानिकाः॥
बौद्धा दश सहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः।
पूर्णं शतसहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः॥
पुरुषं निर्गुणं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते॥

अर्थात् प्रकृतिलय विदेह और बौद्धोंकी मुक्ति कई मन्वन्तरों तक ही रहती है। सदाके लिए वे मुक्त नहीं होते। सांख्य मतानुयायी ही प्रकृति-पुरुष-विवेकद्वारा काल-संख्या-रहित मोक्षको पाते हैं। वस्तुतः विचारें भी तो उपर्युक्त सब मतोंसे सांख्यमत ही सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है।

यहाँ तकके सभी मतोंका मोक्ष दुःखाभावस्वरूप ही है। चाहे उस दुःखाभावमें भी परिमाणकृत अथवा कालकृत तारतम्य हो, तथापि दुःखाभाव ही सब मतोंमें मोक्षका स्वरूप माना गया है। इस कारण इन मतोंमेंसे कोई भी श्रुतिमें उपदिष्ट "आनन्द" की यथार्थ उपपत्ति नहीं करता। वस्तुतः दुःखका अभाव भिन्न है और सुख अथवा आनन्द भिन्न वस्तु है। इस कारण श्रौत स्मार्त जिज्ञासुको मोक्ष विषयमें इन उपदेशों द्वारा जिज्ञासा विश्रान्त नहीं हो सकती। इस कारण उसको इन मतोंसे उत्कृष्ट विवर्तवाद अर्थात् वेदान्तकी शरण लेनी पड़ती है।

दूसरी बात यह है कि इन समस्त मतोंमें द्वैत माना गया है। जहाँ द्वैत है वहाँ अपूर्णता है और जहाँ अपूर्णता है वहाँ पूर्ण आनन्द नहीं। जहाँ पूर्ण आनन्द नहीं वहाँ सर्वतः और सर्वथा मोक्ष नहीं। इस कारण अद्वैतवादी वेदान्तीकी ही शरण लेनी पड़ती है। वेदान्ती फिर जिज्ञासुको समझाता है कि सब कुछ ब्रह्म है। जीवात्मा और परमात्मा अर्थात् ब्रह्म एक है। केवल अविद्याके कारण ही इस जीवात्माको अपना आप परमात्मासे भिन्न प्रतीत होता है। और इस भेद प्रतीतिसे ही समस्त क्लेश सहने पड़ते हैं। परमात्मा स्वभावसे

ही आनन्दस्वरूप है, पूर्ण है, सदा मुक्त है। इस कारण जीवात्मा भी स्वभावतः सदा मुक्त और आनन्दस्वरूप है। अतः अविद्याको योग आदि उपायों द्वारा दूर करके अपने मुक्त स्वभावको समझना ही वस्तुतः मोक्ष है। यह मोक्ष प्राप्त नहीं करना होता है, यह तो सदा प्राप्त ही है। केवल इसके आवरण-रूप अविद्याको हटानेकी आवश्यकता है। वह अविद्या अनादि है। और उस अविद्या ही के कारण सारा असत् संसार दिखाई देता है, वस्तुतः आत्मस्वरूपके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। जो अतिरिक्त प्रतीत होता है वह सब भ्रम है। आत्मस्वरूप सुख दुःखसे कर्तृत्वसे रागद्वेषसे सदा मुक्त है। यह अकर्ता और अभोक्ता है, पुष्करपलाश की तरह निर्लिप है। इसके ऐसे स्वरूपको समझ कर जीव पूर्णशान्तिको पाता है, इन सब गुणोंको भी प्राप्त करता है और तब वह पूर्ण शान्तिमें लीन हो कर आनन्दको प्राप्त करता है।

इस उपदेशसे जिज्ञासुके मनको शान्ति तो मिलती है परन्तु थोड़ी बहुत शङ्का फिर भी रह ही जाती है। वह प्रश्न करता है कि यह अविद्या तथा भ्रम अद्वैत परमात्मस्वरूपको हुए क्यों ? यदि अविद्या अनादि हो तो सम्भव है अनन्त भी हो, क्योंकि अनादि भाव प्रायः अनन्त भी हुआ करते हैं और अनादित्वके कारण यह भी प्रतीत होता है कि आत्मस्वरूपका इस पर कोई प्रभुत्व नहीं। यह एक प्रकारसे आत्मस्वरूपकी शत्रु है। और जिसके शत्रु हों उसको पूर्ण शान्ति कहां और पूर्ण आनन्द कहाँ ? अकर्तृत्व अभोक्तृत्व आदिमें भी आनन्द प्रायः नहीं । यहाँ तो पूर्वमतवादियोंका दुःखाभाव ही सिद्ध होता है। इस प्रकारसे मोक्ष पूर्ण आनन्दस्वरूप कैसे है ?

इन समस्त शङ्काओंको शान्त करनेके लिए भारतीय दार्शनिकोंका मौलिभूत स्वातन्त्र्यवादी वेदान्ती (जिसको हम शैव कहते हैं) पूर्णतया समर्थ है। इस कारण उसकी शरणमें जा कर हमें विदित होता है कि मोक्षका स्वरूप पूर्ण स्वातन्त्र्य है। स्वातन्त्र्य ही वस्तुतः आनन्द है और पारतन्त्र्य ही दुःख है। अतः पूर्णस्वातन्त्र्य ही पूर्ण आनन्द है। इस लिए पूर्ण स्वातन्त्र्यको ही सर्वथा सर्वतः और सर्वदा मोक्ष कहा जा सकता है। मोक्षके और सभी लक्षण अधूरे हैं। पूर्ण स्वातन्त्र्य ही वस्तुतः पूर्ण अद्वैत है। यह पूर्णस्वातन्त्र्य हमें प्राप्त नहीं करना होता है। यह तो हमें स्वभावतः प्राप्त ही होता है। केवल अपने इस स्वभावको पहिचानना ही होता है। इसी कारण इस शास्त्रको "प्रत्यभिज्ञा" नामसे भी कहते हैं। यह प्रत्यभिज्ञा अर्थात् अपने स्वभावका पहिचानना ही वस्तुतः मोक्ष है। इसी कारण स्वामी रामतीर्थ भी अनेकों स्थानों पर कहते हैं कि— "Realize your own-self and you are the lord of the lords" (अर्थात् अपने आपको केवल पहिचानो तो तुम ईश्वरोंके भी परमेश्वर हो।) तो इस अपने परमेश्वर-भावको, परम प्रभुत्वको, परम स्वातन्त्र्यको, तथा परम-आनन्दको समझना ही मोक्ष का वास्तविक स्वरूप है। जितने भी बन्धन हैं उनका मूल अस्वातन्त्र्य है। इस कारण अपने स्वातन्त्र्यके समझ लेने पर आत्मा सर्वथा मुक्त हो जाता है अथवा अपने मुक्तभावको समझता है। ऐसा समझनेसे ही उसको आनन्द प्राप्त होता है। समस्त आनन्दका मूल स्वातन्त्र्य ही होता है। 'जो जितना स्वतन्त्र है उसे उतना आनन्द होता है', यह बात तो प्रत्यक्ष-सिद्ध है ? अतः जो पूर्ण स्वतन्त्र है वही पूर्ण आनन्दी भी है। इस प्रकार से पूर्ण मोक्ष तथा पूर्ण आनन्द की उपपत्ति होती है। अब रही बात अविद्याकी, तो यह प्रश्न तभी हो सकता है जब आत्मस्वरूपको अकर्ता अभोक्ता आदि जड़-तुल्य माना जाए। जब आत्मस्वरूपको पूर्ण स्वातन्त्र्य माना गया तो यह प्रश्न ही नहीं हो सकता है कि स्वतन्त्र आत्मा क्यों परतन्त्र प्रतीत होता है, क्योंकि "क्यों" का स्थान पारतन्त्र्यमें ही होता है। स्वातन्त्र्यके शब्दकोषमें "क्यों" शब्द आ ही नहीं सकता। स्वातन्त्र्य-स्वभाव होनेके कारण आत्म-स्वरूप स्वयमेव अपने आपको अविद्यामें डालकर

पुनः स्वयमेव उसे पुनः प्रकाश देता है, क्योंकि आत्मस्वरूपका स्वभाव ही पूर्ण स्वातन्त्र्य है। स्वातन्त्र्य ही के कारण वह ऐसा करता है। ऐसा करने से उसे आनन्द ही होता है। यह सारी सृष्टि उसकी क्रीड़ा है, उसके आनन्दका अतिरेक है। वह अनन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण है (जड़तुल्य नहीं है)। वह शक्तियाँ भी उससे भिन्न नहीं, क्योंकि उन अनन्त शक्तियोंके पूर्ण एक भावको ही पूर्ण स्वातन्त्र्य शक्ति कहते हैं। और स्वातन्त्र्य शक्ति ही आत्मा है। शेष सभी शक्तियाँ इस पूर्ण स्वातन्त्र्यशक्ति रूप आत्माके केवल रूप-भेद हैं। इन शक्तियोंमेंसे अपने आनन्दके कारण यह कभी किसी, तो कभी किसी शक्तिको उल्लासित करता है। इन शक्तियोंके उल्लास मात्रसे ही विश्वकी सृष्टि, स्थिति, संहार आदि हुआ करते हैं। अपोहन शक्ति द्वारा यह अपने तात्त्विक स्वरूपको छिपाता है और जीव भावको प्रकट करता है। अनन्तर पुनः अनुग्रहशक्ति द्वारा अपने ही जीव स्वरूपको ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त कराके विमर्शनशक्ति द्वारा उस जीव रूपमें स्वयमेव छिपाए हुए अपने ही स्वातन्त्र्य स्वरूपको समझाता है। इसीको मोक्षप्राप्ति कहते हैं। इसी कारण आचार्य अभिनवगुप्तपाद परमार्थसारमें कहते हैं—

मोक्षस्य नैव किञ्चिद् धामास्ति
न चापि गमनमन्यत्र।
अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्य-
भिव्यक्तता मोक्षः॥

भाव यह है कि अपनी स्वातन्त्र्य-शक्ति का प्रकट होना अर्थात् उसको पहिचानना ही वस्तुतः मोक्ष है, और कुछ नहीं। शिव सूत्रोंमें भी आत्माका लक्षण 'चैतन्यमात्मा' ऐसा कहा है। "चैतन्य" का अर्थ श्रीक्षेमराजजी "पूर्ण स्वातन्त्र्य" ही विमर्शिनी टीकामें करते हैं।

भगवान्‌के इस पूर्ण स्वातन्त्र्यके ही अभिप्रायसे श्रीमान् उत्पलदेवाचार्य शिवस्तोत्रावलीमें इस प्रकार से स्तुति करते हैं:—

नमः सततबद्धाय नित्यनिर्मुक्तिभागिने।
बन्धमोक्षविहीनाय कस्मैचिदपि शम्भवे॥
मायाविने विशुद्धाय गुह्याय प्रकटात्मने।
सूक्ष्माय विश्वरूपाय नमश्चित्राय शम्भवे॥
संसारैकनिमित्ताय संसारैकविरोधिने।
नमः संसाररूपाय निःसंसाराय शम्भवे॥

जो केवल बद्ध ही या केवल मुक्त ही या केवल उभय स्वरूप ही या केवल अनुभय स्वरूप ही हो, वह कभी पूर्ण नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें अन्य रूपोंकी कमी सिद्ध होती है और कमी पूर्णताकी बाधक होती है। अपूर्णतामें आनन्द नहीं। आनन्द तो पूर्णतामें ही होता है। इसी कारण भक्तश्रेष्ठ भगवान् उत्पलदेव अपने उपास्य परमेश्वरको समस्तरूप मानकर ही स्तुति करते हैं। यही तो भगवान्‌का पूर्ण स्वातन्त्र्य है कि स्वयमेव बद्ध है, स्वयमेव मुक्त है और स्वयमेव न बद्ध है और न मुक्त है। समस्त-विश्वस्वरूप है और समस्त विश्वसे उत्तीर्ण है। यह उसके स्वातन्त्र्यका केवल उल्लास ही है, और कुछ नहीं। इस उल्लासको ही श्रुतिने आनन्द कहा है। इसी आनन्दकी प्राप्तिके लिए ऋषियोंने मोक्षके उपदेश किए हैं। इस मोक्ष प्राप्ति का उपाय समस्त शास्त्रोंमें गुरुकी सेवा ही बताया गया है। शिवसूत्रोंमें भी "गुरुरुपायः" ऐसा कहा हुआ है। इस प्रकारसे यहाँ संक्षेपसे यह दिखाया गया कि मोक्षका वास्तविक स्वरूप 'पूर्ण स्वातन्त्र्यकी प्रत्यभिज्ञा' ही है। अन्य सभी मोक्षके लक्षण अधूरे हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि जिन्होंने वे अधूरे लक्षण बताए हैं वे भी तो बड़े तपस्वी और विद्वान् थे, उन्होंने ऐसा क्यों कहा? इस प्रकारसे भारतीय दार्शनिक मुनियोंमें मतभेद क्यों है? किसके मतको हम प्रमाण मानें और किसके मतको अप्रमाण? और क्यों? इसका उत्तर स्पष्ट है। भारतीय ऋषियों और मुनियोंमें वस्तुतः मतभेद नहीं। अब रह गई बात उनके ग्रन्थोंकी। ग्रन्थ तो उन्होंने

लोकोपकारके लिए बनाए। लोगोंकी बुद्धि अनेक प्रकारकी होती है। यदि हमारे ऋषि लोग एक ही निश्चित बातको एक स्वरसे कहते और सबके लिए एक ही मार्गको नियत कर रखते तो लोग कभी उन्नति नहीं कर सकते। क्योंकि भिन्न भिन्न बुद्धि वालोंको कभी एक ही बातपर मन स्थिर नहीं रह सकता। किसीकी रुचि कैसी तो किसीकी कैसी हुआ करती है। यह लोगोंकी अवस्था और मानसिक तथा शारीरिक शक्तिकी बात है। इसी कारण ऋषियोंने अनेक सिद्धान्तों तथा मार्गोंका उपदेश किया, जिसकी जैसी बुद्धि, जैसी रुचि, जैसा मन, जैसी शक्ति हो उसके लिए वैसा मार्ग और वैसे सिद्धान्तोंका उपदेश किया जाता है। इस कारण प्रत्येक शास्त्रीय सिद्धान्तोंके पारस्परिक विरोध की उपपत्ति देश, काल, अवस्था और अधिकारी के भेदसे करनी चाहिए। विरोधकी शंका उचित नहीं।

प्रत्यभिज्ञा शास्त्रका आविर्भाव तो केवल आठवीं या नववीं शताब्दीमें वसुगुप्त और श्रीसोमानन्द द्वारा हुआ जब कि अवन्तिवर्मा काश्मीरमें राज्य करते थे। तो क्या इससे पहिले इस शास्त्रको भारतवर्षमें कोई नहीं जानता था? इस प्रश्न का उत्तर यह है — यह शास्त्र तो आदि-कालसे भारतवर्षमें प्रचलित था। श्रीसोमानन्द और श्रीवसुगुप्तके समय तक यह शास्त्र उपदेश द्वारा ही प्रचलित था। इस शास्त्रका कोई ग्रन्थ विशेष नहीं लिखा गया था। जैसे पंचशिख आचार्य के समय तक सांख्यशास्त्र केवल गुरु परम्परा द्वारा ही प्रचलित था। अथवा हो सकता है कि इस शास्त्रके अति प्राचीन ग्रन्थ बौद्धकालमें लुप्त हो गए हों। परन्तु तथापि प्राचीन उच्च दार्शनिक ग्रन्थोंमें इस शास्त्रके सिद्धान्त पाए जाते हैं। ब्रह्मसूत्रों के शाङ्कर भाष्यका सूक्ष्म अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि भगवान् शङ्कराचार्यको भी यही मत अभिप्रेत था। अनेकों स्थानों पर उन्होंने ब्रह्मके विशेषण "सर्वज्ञं, सर्वकर्तृ, सर्वशक्ति" इत्यादि दिए हैं। उपनिषदोंमें भी इन सिद्धान्तोंका स्पष्ट व्याख्यान मिलता है। यजुर्वेदके रुद्राध्यायमें भी रुद्रके सर्वव्यापक भावको इसी सिद्धान्तके अनुसार वर्णन किया है। जैसे श्रीअभिनवगुप्तपाद कहते हैं कि—

"सुरमानुषपशुपादपरूपत्वं तद्वदीशोऽपि।
धत्ते...।।"

इसी प्रकार रुद्राध्यायमें भी रुद्रको ही समस्त रूपोंमें वर्णन किया है। यहाँ तक कि कर्मार, चर्मार, तायु (चौर), मृगायु (शिकारी), श्वा (कुत्ता), और शुनी (कुत्तों वाले शिकारियों) को भी रुद्रभगवान्के रूप कहा गया है। इन समस्त रूपों वाला होते हुए भी भगवान् रुद्र अपने स्वातन्त्र्यके माहात्म्यसे अपने परम आनन्द स्वरूपसे च्युत नहीं होता। यह इस मन्त्रसे कहा गया है —

"नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च"।

यही तो परम स्वातन्त्र्य होता है। संसारके समस्त ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदमें भी पुरुषसूक्तमें इसी प्रकारका विश्वनिर्भर परमात्मस्वरूप व्याख्यात है। वागाम्भृणीय सूक्त तो इससे भी अधिक आत्मस्वरूपकी अद्वैतता और स्वतन्त्रताका वर्णन करता है। इन सूक्तोंसे तो भगवान् ही सब कुछ है केवल यही अर्थ ध्वनित होता है। परन्तु इस वागाम्भृणीय सूक्तमें तो यह बताया है कि 'अहम्' अर्थात् आत्मस्वरूप ही सब कुछ है। वही सबकी उत्पत्ति और पालन आदि करता है, अर्थात् स्व स्वातन्त्र्य महात्म्यसे वही सब कुछ है; इस सूक्तमें सूक्त के ऋषिको ठीक उसी प्रकारसे आत्मस्वरूपकी प्रत्यभिज्ञा हो रही है जिस प्रकारसे शैव आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें उसका वर्णन किया है। उस सूक्तके एक दो मन्त्र उदाहरणार्थ यहाँ दिए जाते हैं —

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्य-
हमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्य-
हमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

और भी अनेकों अद्वैतपरक दार्शनिक सूक्त ऋग्वेदमें हैं जिनमेंसे नीचे वर्णित सूक्त देखने योग्य हैं— मण्डल १ का सूक्त १६४, मण्डल दसके सूक्त ८२, १२१, १२५, १२६, १६० आदि।

परमार्थसारमें भी प्रत्यभिज्ञाकी दशाका वर्णन ठीक इसी प्रकार किया है। उदाहरणार्थ —

अहमेव विश्वरूपः करचरणादिस्वभाव इव देहः।
मत्तः प्रसरति सर्वं स्वप्नविचित्रत्वमिव सुप्तात् ॥

इससे यह बात सिद्ध हो गई कि भारतीय इस सर्वोच्च दार्शनिक सोपान पर ऋग्वेदके समयमें भी पहुँच चुके थे। इस प्रकारसे पूर्ण स्वातन्त्र्य स्वरूप आत्माकी प्रत्यभिज्ञा ही जो हमने मोक्षका वास्तविक स्वरूप बताया उसमें अनुमान, ब्रह्मनिष्ठ योगियोंके अनुभव और श्रुति ये तीन प्रमाण हैं। इस लेखमें तो मोक्षके स्वरूपका व्याख्यान बहुत संक्षेपसे किया गया है। अतः जिस महानुभावने इस विषय पर अधिक कुछ देखना हो उसे चाहिए कि 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' पढ़े। यदि यह पुस्तक कठिन प्रतीत हो तो पहले 'परमार्थसार', 'प्रत्यभिज्ञाहृदय', 'शिवसूत्रविमर्शिनी' आदि ग्रन्थोंको पढ़े । यदि पाठक संस्कृत थोड़ा जानते हों तो उन्हें श्रीमान् आचार्य अमृतवाग्भवजी द्वारा निर्मित 'आत्म-विलास' पढ़ना चाहिए, क्योंकि इस ग्रन्थकी टीका (अथवा भाष्य) हिन्दी भाषामें अतीव सरल और मनोरञ्जक रीतिसे लिखी गई है।

स्वातन्त्र्यवाद अथवा प्रत्यभिज्ञा पर एक कथा

ऊपरके लेखमें मोक्षके वास्तविक स्वरूपका वर्णन करते हुए प्रत्यभिज्ञाके भी स्वरूपका वर्णन थोड़ा बहुत किया गया है। इस विषयमें हमारे काश्मीर देशमें एक पंचतन्त्रकी कथाओं जैसी कथा प्रचलित है—

एक बार एक वनमें एक सिंहिनीका बच्चा उत्पन्न हुआ और उसी समय प्रसवपीड़ासे सिंहिनी मर गई। एक गड़रियेने उस स्तनन्धय सिंहशावकको मृत माता-के पास पड़ा देखकर उठाया और बकरियों का दूध पिलाकर उसे पाला। सिंह-शावकको यह ज्ञान नहीं था कि मैं सिंह हूँ। वह बकरियोंका दूध पीता हुआ और उनके बच्चोंके साथ खेलता हुआ अपने आप को भी बकरा ही समझता था। परन्तु उसके स्वाभाविक बल-विक्रम आदि गुण नष्ट नहीं हो गये थे। वह सारे पशुवृन्दमें फिरता था और अकेला ही पशुओंकी रक्षा भी करता था। अर्थात् सिंह हो कर भी अपने आपको बकरा समझता हुआ वह एक कुत्तेका जैसा काम गड़रियेको देने लगा। एक बार उस वनमें एक बड़ा सिंह आ गया। उसको अपने भाईकी यह दशा देख कर बहुत खेद हो गया । उसने उसको बुलाया और उससे कहा कि "तू सिंह है; तू इस वनमें स्वतन्त्रतासे क्यों विहार नहीं करता ? गड़-रियेकी आधीनतामें क्यों रहता है ?" बच्चा बोला—"मैं सब समझता हूँ। तू मुझे खाना चाहता है। मैं तो बकरा हूँ। इसी कारण मुझे मूर्ख समझ कर तू मुझे धोखेसे अपने पास बुलाता है। परन्तु मैं कभी तेरे पास आनेवाला नहीं। क्योंकि तू स्वभावसे ही बकरों का शत्रु है।" बड़े सिंहने बहुत प्रयत्न किया परन्तु बच्चा उसके पास नहीं गया। अन्तमें सिंहने सोचकर उस बच्चेसे फिर कहा—"अच्छा, एक बात सुनो,

हम दोनों एक नदी पर चलेंगे। तू इस तट पर रह और मैं पारके तट पर खड़ा हो जाऊंगा, इस प्रकार तुझे मेरेसे किसी भयकी आशङ्का नहीं होगी, फिर वहाँ खड़ा हो कर तू जलमें अपने और मेरे प्रतिबिम्ब को देख कर स्वयं ही निश्चय कर लेना कि तू वास्तवमें सिंह है कि बकरा।" बच्चा इस बातको मान गया। फिर ज्योंही उसने प्रतिबिम्बको देख कर अपने सिंहत्व स्वभावको पहचाना त्योंही समस्त सिंह-गुण उसमें प्रकट हो गए। वह शीघ्र ही गरजकर एक छलांग मारकर नदीके पार हो गया और स्वातन्त्र्य पाकर स्वतन्त्र रूपसे सारे जङ्गलमें पशुओंका शिकार खेलता हुआ आनन्दसे विहार करने लगा।

ठीक ऐसी ही दशा हम जीवोंकी है। हम परमेश्वर हो कर भी अपने आपको जीव समझते हैं। इस जीवत्वसे हम तभी छूट सकते हैं जब सद्गुरु के उपदेशसे हम बुद्धिदर्पणमें देख कर यह निश्चय करें कि हम परमेश्वराभिन्न सद्गुरुके समान स्वयं परमेश्वर हैं. हम जीव नहीं हैं, इसीको प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। यही वास्तविक मोक्ष है। जिन बन्धनोंसे बंधे हुए हम अपने आपको समझते हैं वे बन्धन हमें बांध नहीं सकते, क्योंकि हम स्वभावसे ही बन्धन-रहित हैं। बन्धन सभी कल्पित हैं। कल्पित बन्धन वास्तविक स्वातन्त्र्यको हटा नहीं सकते। क्योंकि वे कल्पित होनेके कारण असत्प्राय हैं। उनकी कल्पना हमने (आत्मस्वरूपने) स्वातन्त्र्यको हटाने और बन्धन डालनेके लिए नहीं की। यह कल्पना तो केवल एक क्रीड़ामात्र ही है। इसी कारण हम परमात्मस्वरूपको महादेव कहते हैं, क्योंकि दिवु धातुका सबसे पहला अर्थ क्रीड़ा ही होता है। और आत्मस्वरूप अपने आनन्दके लिए अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी कल्पना करता है। इस कल्पनासे उसको विचित्र आनन्द आता है। दुःखमय सृष्टिमें भी उसे आनन्द ही आता है। क्योंकि दुःखसे दुःखी परतन्त्र ही हुआ करता है। स्वातन्त्र्यमें दुःख कहां ? ऐसा ही भगवान् उत्पलदेव शिवस्तोत्रावलीमें कहते हैं :—

दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते ।
मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः ॥

परमेश्वरकी इस परम क्रीड़ाके विषयमें भी वे परमेश्वरसे इस प्रकार प्रश्न करते हैं :—

त्वद्धाम्नि विश्ववन्द्येऽस्मिन्नियति क्रीड़ने सति ।
तव नाथ ! कियान् भूयानानन्दरससम्भवः ? ॥

इस प्रकारसे 'अखिल प्रपञ्चको परमेश्वरकी क्रीड़ा समझना और अपने आपको ही परमेश्वर समझना' इसीको मुक्ति कहते हैं। यही पूर्ण आनन्द होता है। इसीका नाम पूर्ण स्वातन्त्र्य है। इसीको पूर्ण चैतन्य कहते हैं।

समस्त मुमुक्षु लोगोंने मोक्षकी ऐसी भावना रखकर प्रयत्न करना चाहिए कि यह भावना केवल भावना ही न रहे, अपितु इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव भी हो जाए। अनुभवके बिना तो सब बातें केवल बातें ही हैं। ग्रन्थसे पढ़कर अथवा सत्संगसे सुनकर वस्तुका समझना और होता है और उसका अनुभव करना और होता है। वह अनुभव श्रवण मनन और निदिध्यासनके बिना और सद्गुरुके अनुग्रहके बिना कभी होता नहीं है। अतः सद्गुरुका अन्वेषण अवश्य करना चाहिए। ज्ञानकी और मोक्षकी केवल बातें ही करनेसे मनुष्य उभयभ्रष्ट हो जाता है। इति शम्।

सुख-साधन पद्धति

[लेखक—श्री १०८ मुनि श्री वीरविजयजी महाराज]

अनादि संसारमें परसुखमें बना हुआ आत्मा स्वसुखको भूल जाता है। आत्मिक सुखको प्रकट या प्राप्त करनेके लिए साधनकी भरसक आवश्यकता है।

साधन पद्धतिका अभ्यास करनेका तात्पर्य यह भी है कि तीन शक्तियाँ और मनकी एकाग्रता सिद्ध हो। क्योंकि एकाग्रता सिद्ध होने पर तीन शक्तियाँ अनन्त सुख अर्थात् अनन्त आनन्दका स्रोत बहने लगता है।

दिनमें थोड़ेसे थोड़ा तीन बार—प्रातःकाल चार बजे, मध्याह्न काल बारह बजे, सायंकालमें और रात्रि सोते समय। थोड़े समयके लिए प्रति दिन परपदार्थ अर्थात् ममत्व भावसे पीछे हटकर स्वस्वरूपको जाननेका जो मार्ग है, वह ही आत्मिक सुख को प्रकट करनेका साधन है।

इसलिए अपने स्वस्वरूप (साधन) में साधकको स्थिर होनेका अभ्यास करना चाहिये।

कोई भी मनुष्य साधनके अभ्यासके बिना आत्मिक सुख, शान्ति, बल, शक्ति और साध्य आत्मविकास प्राप्त नहीं कर सकता।

मनुष्य चाहे जिस जातिका हो और किसी भी धर्मका हो, परन्तु आत्मविकास पूर्णतया प्राप्त करने की इच्छा जगत्के सभी मनुष्योंकी एक समान है। चाहे निर्धन हो चाहे सधन, चाहे राजा हो चाहे रङ्क, चाहे साधु हो चाहे गृहस्थ, चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष हो। सभी मनुष्योंके लिए साधनका अभ्यास करना यह भावना सर्वोत्तम हृदय में होनी चाहिए।

राग द्वेष मोह माया ममत्व इत्यादिका त्याग कर स्थूल और सूक्ष्म देहसे यह आत्मा पृथक् होनेके लिए मूल स्वरूप साधनका अभ्यास करता हुआ पूर्णतया विकसितता प्राप्त करता है। जैसे सिद्धस्वरूप, वैसे प्रत्येक जीव मूल सत्तागत सिद्ध स्वरूपवान् है।

प्रवाहसे अनादि कर्म जड़ताकी उपाधिसे भारी हुआ हुआ यह जीवात्मा जन्म मरण दुःख अशान्ति और परस्वरूपमें बना हुआ है। यदि इनसे अतिरिक्त हो कर अपने स्वस्वरूपका विचार किया जाय तो ज्ञात हो जायगा कि इस शरीर या देहसे मैं अलग हूँ। कर्मोंकी उपाधियोंसे भी मैं पृथक् हूं। मैं किसीका नहीं हूँ। मेरा कोई नहीं है। मैं ईर्ष्या कपट ममत्व आदि उपाधियोंसे भी अतिरिक्त हूँ। इस प्रकारकी भावना समय समय पर आनेसे आत्मा परस्वरूप अर्थात् काम क्रोध मान माया लोभ इत्यादि परस्वरूपसे पीछे हटकर शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्र पूर्णतया विकसित करता हुआ मूलस्वरूपको प्राप्त करता है।

कोई भी साधना साध्य ज्ञानके बिना प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए साध्यका निश्चय करे। बिना साधनाके अभ्यास प्राप्त नहीं हो सकता।

क्योंकि साधन एक ऐसी शक्ति है जो बाह्य आत्माओंको अन्तरात्मा तक पहुचानेमें नौकाके समान है। और साधना भी वीतराग देव कथित होनी चाहिये। क्योंकि साधनाका बतानेवाला भी वैसा शुद्ध वीतराग होना चाहिये। वीतराग उन्हें कहना चाहिये जिनमें राग और द्वेष बिलकुल न हो अर्थात् मूलसे राग द्वेष क्षय हो गया हो। उनको वीतराग देव कहते हैं। आप्त भी कहते हैं और केवलज्ञानी भी कहते हैं।

बाह्य साधना और आभ्यन्तर साधनाका क्या तात्पर्य है?

बाह्य साधना शुद्ध होनेसे अज्ञानी आत्मा परपदार्थसे या मोह ममत्वसे पीछे हटता है। प्रत्येक

समय पर आत्मविकासके लिए ध्यान, माला, पूजा, सामायिक, योग इत्यादि क्रियाओं द्वारा शुद्ध ध्येय तक पहुँच सकता है। इसीका नाम साधना है, क्रिया है और पूर्णतया आत्मविकास करनेके लिए यह एक मार्ग भी है। बाह्य साधनामें आभ्यन्तर साधना भी प्राप्त हो जाती है। जैसे द्रव्य-पूजाके अन्तर्गत भावपूजा है। द्रव्यपूजाके बगैर भावपूजा प्राप्त नहीं हो सकती। वैसे बाह्य साधनाके बिना आभ्यन्तर साधनाकी प्राप्ति नहीं की जा सकती। इसी कारणसे बाह्य साधना सामान्य साधना है। और आभ्यन्तर साधना विशेष साघना हैं।

बाह्य साधना द्वारा आभ्यन्तर साधना प्रकट की जाती है। वह भी पहली पावड़ीसे सप्तम पावड़ी तक, अर्थात् सप्तम गुण स्थान पर्यन्त। आभ्यन्तर साधना सिद्ध होने पर बाह्य साधनाकी आवश्यकता नहीं वत् है।

आभ्यन्तर साधन प्रकट होने पर आत्मा प्रमादसे रहित होता है। जैसा भगवान् महावीर देव दीक्षाके अनन्तर ध्यानस्थ निश्चलरूप थे। वैसे प्रत्येक आत्मा अपनी शक्तिको बाह्य साधन द्वारा विकसित करता हुआ आभ्यन्तर साधन पर्यन्त पहुंचकर अपने किये हुए कर्मोंका क्षय कर पूर्णतया आत्म-स्वरूपको प्रकट करके परम ज्ञानवान् हो कर वीतराग भावको भी प्रकट करता है।

ऐसे ही भव्य आत्माओंको वीतराग बननेका प्रयत्न करना चाहिये। शुद्ध विचारों द्वारा अशुद्ध विचारों पर वशीकार करनेका भी प्रयत्न मनकी एकाग्रता और बुद्धिकी तीव्रता पर है। अहंकार काम क्रोध ममत्व इत्यादिका त्याग करना यह है साधन शुद्ध साध्य आत्माका। क्योंकि आत्मा निर्लेप है, निराकार है, अमूर्त्त है, अरूपी है, सत् चित् और आनन्द स्वरूपसे अनन्त है। "अहं वीतरागोऽस्मि" मैं वीतराग हूँ इस वाक्यका उच्चारण करनेवाला आत्म-घाती कर्मोंसे रहित ही होता है, सम्पूर्णतया शुद्ध भी है और "अहं सर्वज्ञोऽस्मि" "अहं अरिहंतोऽस्मि" "अहं ईश्वरोऽस्मि" तथा "अहं शुद्धोऽस्मि" यह भी कह सकता है।

अशुद्ध आत्मा याने संसारी आत्मा इस वर्तमान कालिक क्रियाका उपयोग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि अशुद्ध आत्मा रागद्वेषसे सहित है। और इस क्रियाका अधिकारी होनेसे "अहं अवितरागोऽस्मि" "अहं असर्वज्ञोऽस्मि" यह कह कर अपनी अल्पज्ञता प्रकट कर सकता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्तिको यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रवाहसे अनादि कर्मोंकी उपाधिसे यह आत्मा अशुद्ध और लेपवाला है। मैं वीतरागके मार्ग पर बराबर विधिसे चलूंगा तो एक दिन वीतराग बन सकूंगा याने "अहं वीतरागो भविष्यामि" "अहं सर्वज्ञो भविष्यामि" इस क्रियाका उपयोग वर्तमानिक आत्मा कर सकता है।

मैं रागद्वेष वाला हूँ इस वाक्यसे आत्मविकास दबा हुआ है, जैसे भगवान् महावीर स्वामीका प्रेम गौतम स्वामीको था, तबतक केवल ज्ञान नहीं हुआ था। यदि मैं रागद्वेषको सर्वथा क्षय करूंगा तो मुझे केवल ज्ञान हो सकेगा। और सम्पूर्णतया आत्मविकास करनेकी इच्छा किसी भी मनुष्यकी हो उसे मनकी एकाग्रताका अभ्यास करना चाहिए।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥"

मनुष्यका मन सविकास और विकास रहित होनेमें कारणभूत है। अर्थात् सांसारिक कर्मोंका बन्ध और मोक्ष मनुष्योंके मनके ही आश्रित है। जिसने मनको मारा या जीत लिया उसने जगत्को भी जीत लिया। मन वशमें हो जानेसे साधनका अभ्यास भी शुद्ध होता है। शुद्ध साधन द्वारा आत्मविकास हो सकता है। इसलिए रागद्वेष मोह ममत्व इत्यादिका लय करना यह सद्भावना ही विश्वकल्याणकी होनी चाहिए।

❋ शाक्वरी व्रत ❋

[लेखक—श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल एम० ए०, एल-एल० बी]

गोभिलगृह्यसूत्र ३।२।७६ में एक उल्लेख है कि प्राचीन कालमें माताएँ अपने बच्चोंको दूध पिलाते समय उस अमृत-क्षीरके साथ इस मङ्गलात्मक आशीर्वादका पान कराती थीं कि हे पुत्रों ! तुम इस जीवनमें शाक्वरी व्रतके पारगामी बनो—

अथाहि रौरुकिब्राह्मणं भवति। कुमारानहास्म मातरः पाययमाना आहुः— शाक्वरीणां पुत्रका व्रतं पारयिष्णीवो भवतेति।

यह किसी प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थका वचन है, जो इस समय आप्राप्य है और जिसका नाम रौरुकि ब्राह्मण था। रोरुकनगर प्राचीन सौवीर देशकी जिसे आज कल सिन्ध कहते हैं राजधानी थी। रोरुकका वर्तमान नाम रोड़ी है जो सक्खर के पास सिन्ध के तट पर है। सम्भवतः इसी सीमान्त देशके एक ऋषि प्रवरने इस शाक्वरी व्रतके माहात्म्यको भली भांति समझ कर राष्ट्रिय कुमारोंके जीवनके साथ उसके सम्बन्धका उपदेश दिया था। जिस राष्ट्रमें माताएँ कुमारोंके जीवन-सूत्रका प्रारम्भ शाक्वरी मन्त्रोंसे करें, जहाँ स्तन्य-पानके साथ ही शाक्वरी भावना ओत प्रोत हो, वहाँकी उदयात्मक शक्तिका केवल अनुमान किया जा सकता है। जीवनमूल मङ्गल मंत्रका रहस्य शाक्वरी व्रत है। यदि यह पूछा जाय कि मानवी जीवन क्या है ? तो इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर यह कह कर दिया जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्यका जीवन 'डुकृञ् करणे' धातुके अनन्त रूपों का विकास है। मनुष्य जो कर्म करता है उसीके अनुरूप अपने जीवनको ढालनेमें समर्थ होता है। कर्म करनेकी क्षमता जीवनका अक्षय्य धन है। इस अनन्त भण्डारमेंसे प्रत्येक मनुष्य जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

'डुकृञ् करणे' या 'करना' धातुका मेरुदण्ड 'शक्लृ' या 'सकना' धातु है। मनुष्यकी शक्ति उसके कार्यकी सनातनी मेरु है। शक्तिकी नीव पर जीवन का प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। हम जितना कर 'सकते' हैं वही हमारे जीवनकी कसौटी है। 'शक्लृ' धातुके जिन लकारोंका हमारे जीवनमें पारायण हो पाता है वे ही हमारी गतिके ध्रुवमापदण्ड बनते हैं। जीवनके शान्त मुहूर्तोंमें जब हम सोचते हैं— "क्रतो स्मर, कृतं स्मर" अर्थात् अपने संकल्पका स्मरण करो और अपने कर्मसे उसका मिलान करो, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि 'सकना' ही 'करना' है। हमारे दृढ़ सङ्कल्पकी शक्ति बाहुमें अवतीर्ण हो कर हमें कर्मकी ओर प्रेरित करती है। शक्ति-विहीन सङ्कल्प कोरे कागजकी भांति है।

कर्मशक्ति या शाक्वरीके अङ्कोंसे लिखा हुआ पत्र जीवनमें दर्शनी हुण्डीके समान काम देता है। वह जीवन लक्ष्यको वीरके अमोघ बाणकी भांति वेध देता है।

इस विश्वमें जहाँ भी देखो शाक्वरी व्रतका प्रकाश है। प्रजापति अपने अनन्त ईक्षण, तप और श्रमसे सृष्टि बनानेमें समर्थ हुए— यही उनका शाक्वरी व्रत था :—

"यदिमांल्लोकान्प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद्यदिदं किंच तच्छक्वर्योऽभवंस्तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम्।" (ऐतरेय ब्रा० ५।७)

अर्थात् प्रजापतिने इन लोकोंको बना कर यहाँ जो कुछ भी है उस सबको शक्ति समन्वित किया। यही शक्ति शक्वरी हुई। प्रजापतिके 'सकने' सृजन सामर्थ्यमें ही शाक्वरीका शक्वरीपन है। कौशतिकी

ब्राह्मणमें कहा है कि इन्द्रने जिस शक्तिसे वृत्रासुरका वध किया उसका नाम शक्वरी है।

एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद्धन्तुम् तद्यदाभिर्वृ-त्रमकशद्धन्तुं तस्माच्छक्वर्यः ॥ कौ० २३।२॥

एक ओर आसुरी शक्तिका प्रतीक वृत्र है दूसरी ओर दैवीशक्तिके प्रतिनिधि इन्द्र हैं। देवों और असुरोंके शाश्वत-संग्राममें जो विशाल संचित शक्तिसे देवता असुरों पर विजय पाते रहे हैं उस शक्तिका नाम शाक्वरी है। जब तक विश्व-नियन्ताके सर्वाभिभावी नियमोंके अनुकूल सृष्टिके कार्योंका संचालन होता रहेगा तब तक आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक क्षेत्रोंमें अवश्य ही असुरोंको शाक्वरी शक्तिके अनुशासनमें रहना पड़ेगा। ताण्ड्य ब्राह्मणमें स्पष्ट कहा है कि इन्द्रके द्वारा वृत्रासुरकी पराजय पापकी पराजय है।

जितना शीघ्र हम जीवनके प्रत्येक क्षेत्र में शक्तिके अवलम्बनसे पापको पराजित कर देते हैं उतने ही वेगसे हम जीवनके श्रेष्ठ कल्याणोंको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं।

एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् क्षिप्रं वा एताभिः पाप्मानं हन्ति क्षिप्रं वसीयान् भवति।

(ताण्ड्य १२।१३।२३)

इन्द्रका वज्र शक्वरी शक्तिसे बना हुआ है, इसलिए उसे प्राचीन परिभाषामें शाक्वर कहा गया है। "शाक्वरो वज्रः" (दै० २।१।५।११)। राष्ट्रका रक्षक बल शक्वरी ही का सुन्दर रूप है। ब्राह्मणोंका ब्रह्मवर्चस् तेज भी शाक्वरी शक्ति पर निर्भर है, वैश्योंकी श्री और शूद्रोंकी पशु समृद्धि तभी तक सुरक्षित है जब तक राष्ट्रमें शक्वरी मन्त्रोंका महानाद जीवित रहता है। इस दृष्टिसे ब्राह्मणकारोंने निम्नलिखित परिभाषाओंका उल्लेख किया है।

"ब्रह्म शक्वर्यः" (तां० १६।५।१८) वज्रः शक्वर्यः" (ता० १२।१३।१४) श्रीः शक्वर्यः (ता०१३।२।२)। पशवःशक्वर्यः(ता०१३।१।३)

गोभिल-गृह्यसूत्र में यह भी कहा गया है कि प्राचीन कालमें ब्रह्मचारी वेदाध्ययन समाप्त करने के बाद कुछ काल पर्यन्त विशेष रूपसे शाक्वरी व्रत की आराधनाके लिए आचार्यके पास ठहर जाते थे। विद्याध्ययनके द्वारा जो कुछ उन्हें उपलब्ध हुआ था उसे इस समयमें अपनी संकल्प शक्तिके बलसे जीवनके लिए उपयोगी बनाते थे। स्वामी दयानन्दने भी दण्डी विरजानन्दसे दीक्षा लेनेके पश्चात् और प्रचार-कार्यसे पूर्व, वर्षों तक गंगा-तट पर भ्रमण करते हुए इसी शक्तिको जागरित एवं समृद्ध किया था। ऐतरेय आरण्यकमें भी इन मन्त्रोंका पाठ है।

इस शाक्वरी व्रतकी अवधिमें विशेषरूपसे महानाम्नी ऋचाओंका अध्ययन और पारायण करना पड़ता था। ये दस ऋचाएं सामवेदके अन्तर्गत पूर्वार्चिकके अनन्तर और उत्तरार्चिकके पहले दी गई हैं। इनका गान महानाम्नी साम कहलाता था और शाक्वरी छंदमें होनेके कारण इन्हींको शाक्वरी भी कहते थे। किसी समय इन मन्त्रोंकी महिमा गायत्री-मन्त्रके समान समझी जाती थी। गौतम और बौधायनके धर्मसूत्रोंमें इनको परमपावन कहा गया है। जिस समय राष्ट्रमें वैदिक शिक्षाके आदर्श जीवित थे उस समय माताएँ अपने बच्चोंको स्तन्य-पान कराते समय ये आशीर्वाद देती थीं कि हे पुत्रों! तुम यथाविधि ब्रह्मचर्याश्रमका पालन करके विद्या-ध्ययन करते हुए अन्तमें महानाम्नी साम पर्यन्त उच्च शिक्षामें पारङ्गत बनो। ऐतरेय ब्राह्मणमें स्पष्ट कहा है कि अपनी आत्माको महान् बनानेका प्रयोग महानाम्नी है।

इन्द्रो वा एताभिर्महानात्मानं। निरमिमीत तस्मात् महानाम्न्यः (एत० ५।७)

शतपथब्राह्मणके अनुसार यज्ञके माध्यन्दिन सवनमें महानाम्नी ऋचाओंका गान किया जाना चाहिये। इसका अभिप्राय यही है कि मनुष्यका यौवनकाल जो कि उसकी आयुरूपी यज्ञका माध्यंदिन सवन है, भरपूर शक्तिके सञ्चय और अभिव्यक्तिका सर्वोत्तम समय है।

महानाम्नी ऋचाओंमें जिस शक्तिशाली इन्द्रका आवाहन किया जाता है, उस वज्रशाली देवकी वीर्यवती महिमाका जीवनमें साक्षात्कार करने वाले नवयुवक जिस राष्ट्र व समाजमें जन्म लेते हैं वह समाज कृतकृत्य हो जाता है। जहाँ आलस्य और मूर्च्छा रूपी घोर पापोंको पैरों तले रौंद कर प्रजायें सोतेसे उठ खड़ी होती हैं वह राष्ट्र इन्द्रकी भांति ही महान् बन जाता है। उसके सभेय और रथेष्ठ युवक इन्द्रका आवाहन करते हुए कहते हैं :—

"हे देवोंमें बलिष्ठ और महिष्ठ इन्द्र ! तुम पूर्वजों की शक्तियोंके अधिपति हो। हम अपने नवजागरणमें उन दलोंका पुनर्दर्शन करना चाहते हैं। अतएव हे वज्रिन् ! तुम्हारे अपराजित तेजका श्रद्धाके साथ आवाहन करते हैं। तुम्हारी अबाधित गति हमारे रथ चक्रोंमें निनादित हो। हे शूर ! अपनी समस्त रक्षणशक्तिसे हमारी रक्षा करो। अभ्युदय और रक्षाके लिए तुम्हारा सान्निध्य हमें प्राप्त हो। हे वसुपते ! हमको सब प्रकारसे पूर्ण करो। क्योंकि जो भरे-पूरे हैं उन्हींकी संसारमें प्रशंसा है। हे अद्वितीय सखे ! तुम्हारी विजय चिरजीवी हो।"

जिस समय महानाम्नी ऋचाओंके उत्कर्षशाली स्वर गूंजने लगते हैं, उस समय सब प्रजाएँ उसका अनुमोदन करती हुई पुकार उठती हैं —

"एवा ह्येव । एवा ह्येव । एवा ह्यग्ने: ।
एवाहि इन्द्र । एवाहि पूषन् । एवाहि देवा: ॥

ऐसा ही होगा, अवश्य ऐसा ही होगा ! हे अग्नि, ऐसा ही है। हे इन्द्र, ऐसा ही है। हे पूषा, ऐसा ही है। और हे अन्य सब देव, ऐसा ही है।

अर्थात् — हमारे कर्मकी शक्तिसे राष्ट्रके जीवन की परिधि उत्तरोत्तर विस्तारको प्राप्त होगी और हमारे दृढ़ संकल्पोंसे सिंचित यह महावृक्ष युग युगान्त तक जीवनलाभ करता रहेगा।

माँ लक्ष्मीसे—

(कवयिता—श्री यज्ञदत्तजी 'रसिक' शास्त्री)

तेरा नाम सुना हमने 'माँ'
कृत्य विमातासे लखते।
नीर भरे नैनोंसे तेरे
पुत्र पराए मुख तकते ॥१॥

जग-जननी कहलातीं तुम तो
भेद-भाव फिर यह कैसा ?
सुधाभरा इक ओर चषक है
यहाँ हलाहल यह कैसा ? ॥२॥

लहू पसीना यहाँ एक कर
रूखे टुकड़े पाते हैं।
षड्रस रञ्जित वहाँ निठल्ले
मोहनभोग उड़ाते हैं ॥३॥

यहाँ पयाल बिछा कर सरदी
सी-सी करते कटती है।
वहाँ तुलाई तोषक तकियों
से वर-शय्या सजती है ॥४॥

धूलिधूसरित फटे पुराने
चिथड़े ही जिनका शृंगार।
दीन हीन सब भांति हुए ये
जननी ! तुमको रहें पुकार ॥५॥

कहो यातना क्यों इतनी यह
क्यों यह इतना ताप मिला ?
कौन कुकर्म किए जगदम्बे !
जिनका यह अभिशप मिला? ॥६॥

वन-विहगोंमें मृगयूथोंमें
जन्म कहीं जो हो पाता।
परवशताके दारुण दुःखसे
छुटकारा तो हो जाता ॥७॥

मानवताका सार यही क्या
गौरवका यह शुभ बाना।
अभिचारकके पाशकमें पड़
तड़प तड़प कर मर जाना ॥८॥

हिन्दू पर्व (त्यौहार)

[ले०—श्री पं० हनुमान् शर्मा जी राज ज्यौतिषी]

[इस निबन्धके लेखक भारतके एक सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध विद्वान् हैं, ज्यौतिष संस्कृत एवं हिन्दी साहित्यकी आपने पर्याप्त सेवा की है। 'श्रीस्वाध्याय' अपनी सर्वतोभद्र नीति और लोकसेवा द्वारा इतना लोकप्रिय तथा विद्वानोंकी दृष्टिमें आदरका पात्र बन गया है कि भारतके सुप्रसिद्ध विद्वान् अपनी मौलिक रचनाएँ इसमें प्रकाशनार्थ भेजकर गौरवका अनुभव करते हैं। उक्त लेखक महानुभावने इस समय अपनी अशक्त अस्वस्थ वृद्धावस्थामें भी यह 'हिन्दू-पर्व' शीर्षक सुविस्तृत सारगर्भित लोकोपयोगी निबन्ध लिखकर 'श्रीस्वाध्याय' के लिए भेजनेका उपक्रम आरम्भ किया है, इसके लिए 'श्रीस्वाध्याय' के संचालक और पाठकगण आपके आभारी हैं। हमें आशा है कि इस निबन्धके द्वारा भारतीय पर्वोंका पुनरुज्जीवन और प्राचीन आर्य संकृतिका संरक्षण होगा। —सम्पादक]

भूमिका—

भारतके तत्त्वदर्शी महर्षियोंने किसी भी देव-देवी या महापुरुषके सत्कर्मोंका सदैव स्मरण रहने और उनका व्यापक प्रचार बढ़ानेकी कामनासे पर्व नियत किये थे। उनमें कोई कहीं और कोई कहीं सर्वत्र ही होते हैं। अनुसन्धानसे सूचित होता है कि अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतमें और भारतीय अन्य जातियोंकी अपेक्षा हिन्दुओंमें इनका आधिक्य है और इसी कारण 'सात बार-नौत्यौहार' विख्यात हुए हैं।

हिन्दू पर्व अकेले हिन्द या हिन्दूओंको ही लाभ नहीं पहुँचाते; इनसे सभी देश और जातियोंको लाभ होता है। इनमें यह विशेषता है कि ये हर्ष और उत्साहसे मनाये जाते हैं। और स्नान ध्यान गायन वादन और गोष्ठी आदिसे सम्पन्न होते हैं। इनमें छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा कोई भी पर्व तथ्यहीन नहीं है। सभीसे संसारकी आर्थिक, पारमार्थिक, सामाजिक, व्यावहारिक, राजनैतिक या लोकसत्तात्मक और मनोविनोदात्मक वा आरोग्य-बर्द्धक परिस्थितियाँ स्फुरित होती हैं।

खेद है कि ऐसे हितकारी पर्वके (त्यौहारोंके) स्वरूपको स्वयं हिन्दू ही भूलते जाते हैं। मेरा विचार है कि 'श्रीस्वाध्याय' के द्वारा इनका प्राचीन और अर्वाचीन लोक-प्रशस्त या शास्त्र-सम्मत दोनों स्वरूप प्रकाशित करूं। आशा है विशेषज्ञ विद्वान् अपने यहाँ होनेवाले पर्वोंका (त्यौहारोंका) आवश्यक दिग्दर्शन और ज्ञातव्य परिचय भेजकर इस लोकोपयोगी विषयको सार्वदैशिक स्वरूप बनानेमें यथोचित सहायता अवश्य देंगे।

यद्यपि इस विषयकी दो तीन पुस्तकें विभिन्न स्थानोंसे प्रकाशित हुई हैं और उनके नाम भी आकर्षक हैं, किन्तु विषय योजनाकी उनमें अवश्य ही बहुत न्यूनता है और पर्व (त्यौहार) भी सब नहीं; इने गिने थोड़े ही हैं। अतः उन सब त्रुटियों की पूर्ति करनेके विचार से ही मैंने हिन्दू-पर्व नामके इस निबन्धका आरम्भ किया है। इससे पाठक जान सकेंगे कि इसमें कैसे आवश्यक और प्रयोजनीय विषयोंका समावेश होगा।

(१) नवीन वर्ष—

(सम्वत्का आरम्भ और उसके उत्सव समारोह)

भारतमें अबतक अनेक संवतोंका उदय और अस्त अथवा आरम्भ और समाप्ति हो चुकी। उनमें अधिकांश सम्वत् किसी चक्रवर्ती राजा, बादशाह या सम्राट्के नामसे हैं और कई एक किसी त्यागी तपस्वी लोकमान्य या उत्कृष्टगुण-सम्पन्न व्यक्ति विशेष के हैं।

दैवज्ञ विद्वानोंने कलियुग सम्वर्तोमें छः 'शककर्ता' माने हैं। उनमें पहले युधिष्ठिर, दूसरे विक्रमादित्य, तीसरे शालिवाहन, चौथे विजयाभिनन्दन, पांचवें नागार्जुन और छठे कल्कि हैं। इनके सम्वत् यथा समय पहले हुए थे, अब भी हैं और आगे भी होंगे। इनके अतिरिक्त देशी विदेशी और भी कई सम्वत् हुए हैं, जिनका ब्योरे-वार पूरा विवरण यहाँ नहीं दिया है। केवल नामोल्लेख किया है। साथ ही यह भी लगा दिया है कि वे विक्रमसे पहले या पीछेके हैं।

यथा—(१) 'कोलम्ब' सम्वत् वर्तमान विक्रम सम्वत् २००० से ६६७७ वर्ष पहले था। इसी प्रकार (२) 'सप्तर्षि' सम्वत् ८७२१, (३) 'बार्हस्पत्य' ५०७२, (४) 'युधिष्ठिर' और (५) 'कलि' संवत् ५०४४, (६) 'तिब्बी' या चीनाब्द २४१४, (७) रोमकाब्द८०६, (८) 'ब्रह्म' ६००, (९) 'बौद्ध' ४८६, (१०) 'महावीर' ४७०, (११) 'शंकराब्द' ४००, (१२) 'मौर्य' ३१२, (१३) 'सलीकी' २५५, १४) 'पार्थिव' ११०, और (१५) 'आनन्द' सम्वत् विक्रम सम्वत्से २० वर्ष पहलेका है।

इसके अतिरिक्त (१) 'खृष्टयब्द' (ईसवी सन्) विक्रम सम्वत् ५७ से आरम्भ हुआ है इसी प्रकार (२) 'ग्रहपरिवृत्ति' ८१, (३) 'नवद्वीपी' १३१, (४) 'शालिवाहन' १३५, (५) 'वालिद्वीपी' १३८, (६) 'कलचुरी' (चेदी) ३०६, (७) 'गुप्त' ३७६, (८) 'हिजरी' ५३८, (मक्कासे मदीना गए तबसे) (९) 'मालवी' ५७१, (१०) 'वलमी' ६०७, (११) हर्षाब्द' ६०७, (१२) 'पारसी' ६८१, (१३) सिंहाब्द ११६४, (१४) 'चालुक्य' १२१६, और (१५) 'बंगला' विक्रम सम्वत्में आरम्भ हुआ।

उपर्युक्त अनेक सम्वतोंमें वर्तमान विक्रम सम्वत् भारतका 'चक्रवर्ती राजा' या 'सार्वभौम सम्वत्' है। यह प्रतिवर्ष पंचांगोंके रूपमें प्रकट होता है, जिसमें सौर और चान्द्र दोनों सम्वतोंका समावेश रहता है। यह गणित, फलित, सद्भविष्य, महर्घ समर्घ, व्रतउत्सव, शुभाशुभ और महूर्तादिके देखने तथा लोक-व्यवहार चलाने आदिमें उपयुक्त होता है।

(२) विक्रमादित्य—

वे बड़े विख्यात राजा थे। प्रजाके हितके लिए उन्होंने अनेकों काम किए थे, जिनसे अकेले भारतका ही नहीं अन्य देशोंका भी बहुत उपकार हुआ और होरहा है। वे कला-कुशल, व्यवहारदक्ष-धर्मप्राण और शास्त्रज्ञ थे। उन्होंने प्रजामें धन विद्या और कलाका अतः पर प्रचार किया था और पुत्रकी भांति पोषण किया था।

विक्रम संवत् चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे प्रारम्भ होकर (सौरके ३६० और चान्द्रके ३६५ दिन पूर्ण होने पर) चैत्र कृष्ण अमावसको समाप्त होता है। यदि प्रमादवश इसे वैशाख ज्येष्ठ या माघ फाल्गुन में प्रतिपद् भिन्न मनमानी तिथिसे आरम्भ किया जाय तो पञ्चाङ्गके आधारसे होने वाले सभी काम अस्त व्यस्त होजायँ—ऋतु परिवर्तनादिकी सीमा घट बढ़ जाय—और उदयास्तादिका तो ज्ञान ही दूसरे साधनों से हो। अस्तु।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे देशहितके अनेक कामोंका आरम्भ होता है। उनमें संवत्सरका पूजन, पञ्चाङ्गका श्रवण, ध्वजाका रोपण, गोद्विज देवादिकी सेवा, प्रपा (प्याऊ) का प्रारम्भ, नवरात्रोंका स्थापन, लोक हितके साधन, विधानादिकी व्यवस्था, और प्रेमोपहारादिका समर्पण आदिका आरम्भ किया जाता है। स्वयं ब्रह्माजीने भी इसी दिन सृष्टिका आरम्भ किया था। इसी लिए यह दिवस अधिक महत्त्वका माना गया है।

सम्वत्सरके आरम्भकी प्रतिप्रदा उदय व्यापिनी ली जाती है। यदि वह वृद्धिक्रमसे दो दिन तक उदय व्यापिनी रहे तो पहले दिन और उसका क्षय हो जाय तो (अमावसके अनन्तर) प्रथम दिनमें सम्वत्सरारंभ मानना चाहिए। कदाचित् चैत्र अधिक मास हो (अर्थात् चैत्र दो हों तो) दूसरे चैत्रकी उदय व्यापिनी प्रतिपदाको शुभ कर्मोका आरम्भ करना चाहिए।

कार्यकर्त्ता चैत्र शुक्ला प्रतिपदाको प्रातःकालके समय शौचस्नानादि नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर

कार्यारम्भकी सामग्री आदिको यथास्थान स्थापित करके शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे और चौकी या बालूकी वेदी पर वस्त्र बिछा कर अक्षतोंका अष्टदल बनावे और उस पर गणेशादिका स्थापन करके आगे दी हुई प्रयोग विधिके अनुसार उनका तथा संवत्सरके ब्रह्मादि देवताओंका यथाविधि पूजन करे। इसके अनन्तर—

संवत्के १ राजा, २ मंत्री, ३ सस्येश, ४ धान्येश, ५ मेघेश, ६ रसेश, ७ निरसेश, ८ फलेश, ९ धनेश, १० दुर्गेश (इन दशाधिकारियों) का फल श्रवण करके नीमके कोमल पत्तोंमें अन्दाजका हींग, जीरा, नमक और अजमोद मिला कर भक्षण करे। यदि चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे प्रतिदिन एक एक पत्ती बढ़ा कर पूर्णिमाको १५ पत्ती खाय और वैशाख कृष्ण प्रतिपदासे प्रतिदिन एक एक पत्ती घटा कर अमावस को केवल एक पत्र भक्षण करे तो इस कल्पसे अनेक व्याधियां नष्ट हो जाती हैं और भविष्यमें शरीर निरोग रहता है।

संवत्सर सम्बन्धी पूजा समारोह किसी देशमें स्वल्प और किसीमें अधिक विधानसे किए जाते हैं। यथा (१) संवत्सरका पूजन—दक्षिण भारतमें (२) ध्वजारोपण—देशी रियासतोंमें, (३) पंचांग-श्रवण— ग्रामीणोंमें, (४) निम्बपत्र प्राशन— वैद्य-समाज में, (५) नवरात्र महोत्सव— बंगाल और बंगालियोंमें और (६) प्रपा प्रारम्भ सर्वत्र ही यथोचित प्रकारसे सम्पन्न होते हैं।

(३) प्रयोग-विधि—

संवत्सरप्रतिपदि प्रातर्गृहांगणाद्युपलिप्य रंगवल्लीतोरणादिभिरलंकृत्य सपरिवारः (एकाकी वा) तैलाभ्यंगं कृत्वा मांगलिकस्नानं विधाय कृतनित्यक्रियो वस्त्रालङ्कार भूषितो गृहद्वारदेशे सुशोभितं पुष्पमालादि भूषितं आरक्तवस्त्रनिर्मितं (परंपरागत रंगरंजितं वा) ध्वजं संस्थाप्य पट्टिकापीठे संवत्सर पूजनार्थं गणेशमपि संस्थाप्य पूजयेत्। 'आचम्य प्राणानायम्य सुमुखश्चेति गणपतिं स्मृत्वा संकल्पं कुर्यात्। देशकाल संकीर्तनान्ते शुभफलप्राप्तिकामनया सकलाभीष्टसिद्धये संवत्सरपूजनमहं करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नता सिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं च करिष्ये। गजास्य गणनाथत्वेति — गणपतये नमः आवाहनं आसनं पाद्यं अर्घ्यं आचमनं स्नानं (वस्त्रं) यज्ञोपवीतं गंधं अक्षतानि पुष्पाणि धूपं दीपं नैवेद्यं आचमनं ताम्बूलं दक्षिणां नीराजनं प्रदक्षिणां च समर्पयामि। उद्यद्दिने० वक्रतुंडे० त्यादिना मंत्रपुष्पांजलिं दद्यात्। ततः वामकरे अक्षतानि गृहीत्वा दक्षिणकरेण किञ्चिन्निक्षिप्य। ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं आवाहयामि। सूर्याय नमः सूर्यं आवाहयामि। सोमाय नमः सोमं आवाहयामि। (एवं सर्वत्र) भौमाय नमः भौमं०। बुधाय०। गुरवे०। शुक्राय०। शनैश्चराय०। राहवे०। केतुभ्यः०। ब्रह्मणे०। कालायै०। निमेषाये०। त्रुटये०। लवाय०। क्षणाय०। काष्ठायै०। कलायै०। सुषुम्णायै नाड़िकायै०। मुहूर्ताय०। निशाभ्यो०। पुण्यदिवसाय०। देशाय०। पक्षाय०। मासाय०। ऋतुभ्यः०। अयनाय०। सपरिवाराय संवत्सराय०। इडावत्सराय०। अनुवत्सराय०। वत्सरेभ्यो०। कृतयुगादिभ्यो०। नक्षत्रेभ्यो०। योगेभ्यो०। करणेभ्यो०। राशिभ्यो०। व्यतीपाताय०। प्रतिवर्षाधिपाय०। विज्ञाने०। सानुपात्रे०। कुलनागे०। चतुर्दश मनुभ्यः०। पुरंदरे०। पंचभ्यो दक्षकन्याभ्यो०। देव्यै०। सुभद्रायै०। जयायै०। भृगुशास्त्रायै०। सर्वशास्त्रजनकाय०। बहुपात्राय पत्निसहिताय०। वृद्ध्यै०। ऋद्ध्यै०। मित्राय०। धनदाय०। गुह्यक स्वामिने०। नलकूबराय०। शंखपद्माय०। निधिस्थिते०। भद्र काल्यै०। सुरेभ्यो०। वेदविदाय०। वेदांगविद्या संस्थापकाय०। नागयक्षसुपर्णेभ्यो०। गरुड़ाय०। वरुणाय०। सप्त द्वीपाय०। सप्तसमुद्रे०। सागरेभ्यो०। उत्तर कुरुभ्यो०। ऐरावताय०। भद्राश्वकेतुमालाय०। इलावृताय०। हरिवर्षाय० किंपुरुषाभ्यां० नवभारतभेदेभ्यो० सप्तपातालेभ्यो० सप्तनरकेभ्यो० कालाग्निरुद्रशेषाभ्यां० हरयेक्रोड़रुपिणे० सप्तलोकेभ्यो० महाभूतेभ्य० तमसेतमप्रकृत्यै० रजसेरजप्रकृत्यै० प्रकृतये-पुरुषाय० अभिमानाय० अव्यक्तमूर्तये० हिमवानादिपर्वतेभ्यो० सुपर्णेभ्यो० गंगादिनदीभ्यो० सप्तमुनीभ्यो०

नारदादिसप्तर्षिभ्यो० पुष्करादितीर्थेभ्यो० वितस्ताद्या-निम्नगानदीभ्यो० चतुर्दशदीर्घेभ्यो० धारिणिभ्यो० धात्रेभ्यो० विधात्रेभ्यो० छंदोभ्यो० सुरभ्यै० रावणाभ्यां० उच्चैश्रवसे० ध्रुवाय० धन्वन्तरये० शस्त्रास्त्राभ्यां० विनायककुमाराभ्यो० विघ्नेभ्यो० शाखाय० विशाखाय० विनायकस्कंधगृहेभ्यो० स्कंधमातृभ्यो० ज्वरापरोगपत्तये० भष्मकहरणाय० ऋत्विगभ्यो० वालखिल्येभ्यो० काश्यपाय० अगस्तये० नारदाय० व्यासादिभ्यो० अक्षरेभ्यो० सोमपाभ्यो० असोमपाभ्यो० स्तुषितेभ्यो० द्वादशादित्येभ्यो० सगणैकादशरुद्रेभ्यो० पण्येभ्यो० विश्वेदेवेभ्यो० अष्टवसुभ्यो० योगीभ्यो० द्वादशभृगुभ्यो० अंगिरेभ्यो तपस्विभ्यां० नासत्यदस्राभ्यां० अश्विभ्यां० द्वादशसाध्येभ्यो० द्वादशपौराणिकेभ्यो० एकोनपंचाशद्मरुद्गणेभ्यो० सिल्पाचार्यायदेवायविश्वकर्मणे० आसनेभ्यो० दुंदुभिभ्यो० देवेभ्यो० दैत्यराक्षसगंधर्वपिशाचेभ्यो० सप्तभेदेभ्यो० पितृभ्यो० प्रेतेभ्यो० सूक्ष्मदेवेभ्यो० भावगम्येभ्यो० बहुरूपाय विष्णवेनमः विष्णुं आवहयामि। ससंवत्सर ब्रह्मादि स्थापित देवेभ्यो नमः आसनं पाद्यं अर्घ्यं आचमनं स्नानं वस्त्रं उपवीतं अलंकारं गंधं अक्षताणि, पुष्पाणि धूपं दीपं नैवेद्यं आचमनं ताम्बूलं दक्षिणां नीराजनं प्रदक्षिणां चेतिसंपूज्य यज्ञेनयज्ञमयादिना पुष्पाञ्जलि दद्यात्।

ततः प्रार्थना—

भगवंस्त्वं प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे।
संवत्सरोपसर्गा मे विलयंयात्वशेषतः॥

इति प्रार्थनां कुर्यात्। ततो ब्रह्मध्वजायनमः। इति षोडशोपचारैःध्वजं संपूज्य प्रार्थयेत्। "ब्रह्मध्वज नमस्तेस्तु सर्वाभीष्ट फलप्रद। प्राप्तेऽस्मिन्वत्सरे नित्यं मद्गृहे मङ्गलं कुरु।" ततः मरीचि हिंग्वादि संस्कृतं निम्बपत्रं भक्षयेत्।

पारिभद्रस्य पत्राणि कोमलानि विशेषतः।
अजमोदादि संयुक्तं भक्षयेद्रोगशान्तये॥

इति पठित्वा। ततो पंचांगपूजनं। पंचांग श्रवण कल्पोक्त फल प्राप्तये पंचांगस्थ देवता पूजनं। ज्योतिर्विन्मुखात्पंचांग श्रवणं च करिष्ये। ज्योतिर्विदं संपूज्य तन्मुखात्पंचांगस्थ दशाधिकारीणां श्रुत्वा गणकादिभिः संपूज्य तेभ्य फल पुष्पान्नानि च दद्यात्।

॥ इति संवत्सरपूजा विधिः॥

यह भी जीवनका उपहार

[कवयिता—श्री पं० चन्द्रदत्त जी जोशी शास्त्री "चन्द्र"]

सुन्दर उपवन विकसित कलियाँ
मादक सुरभि मधुव्रत गुञ्ज।
नयनाकर्षक कर्ण-रसायन
मधुर मनोहर कुञ्चित कुञ्ज॥१॥

झञ्झाका आघात निष्करुण
सब पलमें देखा पुञ्जित।
कर्दम संछादित शाखाएँ,
कलियाँ शोभासे वञ्चित॥२॥

भ्रमर मर रहा भ्रम से मूर्च्छित
उपवनमें था हाहाकार।
पुष्प-पराग कलुष मुख था
थी मधु बिन्दुच्युति आंसूधार॥३॥

ऐ माली! तू तो माली था
कुछ लेता करुणाका नाम।
दूर भले कर देता पर लेने
देता अन्तिम विश्राम॥४॥

निर्मम करसे ऐ! करुणामय! करके पावकका संचार।
तूने मुझको बता दिया है यह भी जीवनका उपहार॥५॥

श्रीगणपति पूजन

[लेखक—विद्याभूषण विद्यावागीश श्री पं० दीनानाथ जी शर्मा शास्त्री सारस्वत]

(गताङ्कसे आगे)

वृहत्पराशरस्मृतिको स्नातक धर्मदेव आर्य-समाजिकने काश्मीरिक 'श्री' पत्रिकाके ५।१ अङ्कके ४१ पृष्ठमें मूलधर्मशास्त्र माना है। उसमें भी—

"तस्मात् तदुपशान्त्यर्थं समभ्यर्च्यं गणेश्वरम्।" (६।६)
'एतेन सम्पूज्य गणाधिदेवं विघ्नोपशान्त्यै।' (६।३१)

इत्यादि स्थलों पर विघ्नोंके विघातके लिए गणपतिका पूजन माना है।

गृह्यसूत्रोंको वादी लोग भी प्रमाण मानते हैं। उनमें बोधायन-गृह्यशेषसूत्रके तृतीय प्रश्नके दशम अध्यायमें भी विनायककल्प अर्थात् गणेशपूजन वर्णित किया है। हमने इनके पूरे प्रमाण तथा उनपर ऊहापोह अपने बनाये हुए चार हजार पृष्ठके "श्रीसनातनधर्मालोक" नामक संस्कृत ग्रन्थमें (जिसमें सनातनधर्मके ढाई सौ २५० विषयों पर विचार किया गया है) लिखे हैं। यहां पर विस्तारभयसे लिखना कठिन है। केवल दिग्मात्र कुछ शब्द उद्धृत करते हैं।

"मासि मासि चतुर्थ्यां ·······अभ्युदयादौ सिद्धि-काम······ भगवतो विनायकस्य बलिं हरेत्" (बो० गृ० शे० सू० ३।१०।१) '······ हस्तिमुखाय स्वाहा' ३।१०।६ इस प्रकार गणेशपूजन गृह्यसूत्र प्रोक्त भी सिद्ध हुआ।

कई लोग उक्त ग्रन्थमें "इत्याह भगवान् बोधा-यनः" यह शब्द देखकर उसे बोधायन-कर्तृक माननेको प्रस्तुत नहीं होते। पर यह कथन व्यर्थ है। क्योंकि प्राचीनोंकी शैली ही ऐसी है कि वे अपने ग्रन्थ शिष्यों द्वारा ही प्रकट करते थे। इसीलिए ऐसा लिखना सम्भव है। जैसे सुश्रुत-संहितामें प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें "इत्याह भगवान् धन्वन्तरिः" चरकसंहितामें 'यथाह भगवान् पुनर्वसुरात्रेयः' लिखा है। इसी प्रकार मन्वादि सभी स्मृतियोंमें भी शैली दिखाई देती है। तब क्या सभी पुस्तकें अप्रमाण हो जाएँगी? कभी नहीं।

कृष्णयजुर्वेदकी मैत्रायणी संहितामें

'तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्'

यह गणेशगायत्री भी प्रसिद्ध है। इससे भी गणेशपूजन वैदिक सिद्ध हुआ। महाभाष्यके पस्पशाह्निक में यजुर्वेदकी १०१ शाखाएँ गिनी गई हैं। उसमें १५ शाखा शुक्लयजुर्वेदकी हैं, और ८६ शाखायें कृष्णयजुर्वेदकी गिनी गई हैं। मैत्रायणी शाखाकी भांति बौधायनादि शाखा भी कृष्णयजुर्वेद की हैं। वेदकी शाखायें भी वेद होती हैं। तभी 'सर्वे देशान्तरे' वार्तिकके महाभाष्यमें 'वेद' यह कहकर 'यन्मे नर श्रुत्यं ब्रह्मचक्रं' (६।१८) यह काठिकसंहिता-का तथा 'यद्वो रेवती रेवत्यां तमूष' यह लुप्त-शाखाका उदाहरण दिया गया है। इस विषयमें अन्य भी बहुत प्रमाण हैं; समय पर उपस्थित किये जायेंगे।

इसी प्रकार कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यकमें 'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात् (१०।१)

यह गणेशका मन्त्र दिया गया है। उपनिषद् आरण्यकादि भाग ब्राह्मणभागान्तर्गत हैं। ब्राह्मण-भाग भी मन्त्रभागकी भांति वेद है। इस विषयमें भी कभी अन्य समयमें लेख दिया जायेगा। महा-भाष्यमें ३।१।७ सूत्रमें 'शृणोत-ग्रावाणः' १।३।१३।१ इस तैत्तिरीयसंहिता (कृष्णयजुर्वेद) के मन्त्रको

'ऋषि' शब्दसे वेद माना गया है। इससे कृष्णयजुर्वेद भी वेद सिद्ध हुआ। जो इस पक्षको नहीं मानते उनका आधार हठके अतिरिक्त कुछ नहीं।

प्रकरणवश गणेशके गजाननत्व पर भी विचार किया जाता है। कई लोग गणेशकी कथामें शिवके द्वारा उसके सिरका काटना, फिर पार्वतीके अनुनयसे गजके सिरका उसके ऊपर जोड़ना असम्भव मानते हैं। उनका अभिप्राय है कि 'सिर कटनेसे पुरुष मर जाता है। तब उसकी ग्रीवा पर गज सिरकी प्राप्ति वा सन्धान ही कैसे हुआ?' इस पर शङ्काकर्ताओंकी व्यवहारानभिज्ञतासे शोचनीयता सिद्ध होती है। यहाँ पर लौकिकदृष्टिसे भी असम्भव नहीं। कबन्धोंका नृत्य प्रसिद्ध है। सिरके सहसा काट देनेसे शरीर-स्थित धनञ्जय वायु बहुत काल तक ठहरती है। इसलिये कबन्ध नाचते हैं। पठान जाति वाले लोग भी पहले हिन्दुओंका सिर तत्काल काटकर गर्म तवे पर डाल देते थे, तब भीतर धनञ्जय वायुके होनेसे सिर नाचता था, और पठान प्रसन्न होते थे। सर्पके सिर मसल देने पर भी उसका शरीर कांपता रहता है। छिपकलीकी पूंछ काट देने पर भी कुछ समय तक हिलती रहती है। फिर इसमें देवताओंकी तो बात ही क्या। जरासन्धका जब जन्म हुआ था, उसके दो टुकड़े थे; जरा नामक राक्षसीने उसका सन्धान किया था। इस कारण इसमें अनुपपन्नता नहीं। दैवी घटनाओंको मानुषी घटनाके दृष्टिकोणसे देखना अन्याय है।

बहुत स्थानों पर इस ढङ्गकी उत्पत्ति भी हो चुकी है, इस कारण इसमें अप्राकृतिकता भी निरस्त होगई। जयपुरीय 'संस्कृत-रत्नाकर' पत्रके सम्पादक महोदयने द्वितीय वर्षकी अष्टम सञ्चिकाके २५५ पृष्ठमें एक घटना लिखी थी, जिसका संक्षिप्त अनुवाद यह है कि "श्रावणशुक्ल दशमी सम्वत् १६६१, २०.८.३४ ई० में मद्रासके कारेडा नामक गांवमें बादागा खानदानके किसी पुरुषके घरमें एक बच्चा उत्पन्न हुआ। उसका मुख हाथी जैसा और शरीर मनुष्यके समान है। कान बड़े हैं, सिर भी बड़ा है। नाकके नीचे तीन अंगुलिकी सूँड है। उसके दोनों ही ओर दो हाथीदांत जैसे छोटे दान्त हैं। वह ११ दिनका भी छः मासके बच्चेके समान है........" इत्यादि।

इस प्रकार बेलगाम (कर्णाटक) से प्रकाश्यमान 'मधुरवाणी' पत्रिकाके ४।१ अङ्कके अन्तिम टाइटल पेजमें भी एक घटना वर्णित की गई है कि—"हरदेयि प्रान्तमें रघुपुर नामक गांवमें एक स्त्रीके तीन बच्चे एक साथ उत्पन्न हुए। उसमें तीसरे बालकके नाकके स्थानमें हाथीकी भांति छोटी-सी सूँड है। बच्चा उसे पीनेके काममें लाता है........" इत्यादि। सर्कस करनेवाले भी हाथीको गणेशकी तरह चौकी पर बैठाते हैं। यह प्रत्यक्ष है। इसलिए इसमें असम्भव बात न रही।

अब इस विषयमें वेदकी साक्षी भी देखिये। शतपथब्राह्मणकी १४।१।१।१८।२०।२१।२२।२३।२४ कण्डिकामें एक घटना आई है, जिसका संक्षिप्त अनुवाद यह है कि अथर्वाके लड़के दध्यङ्को इन्द्रने कहा हुआ था कि यदि इस यज्ञको पूर्ण करने वाली विद्याको तुम किसी औरको बतलाओगे; तो मैं तुम्हारा सिर काट डालूंगा। उसने स्वीकार किया। एक बार उसके पास अश्विनीकुमार आए। उसे उक्त विद्या बतलानेके लिए अनुरोध करने लगे। तब दध्यङ्ने इन्द्रकी धमकी सुना कर निषेध कर दिया। वे थे देवताओंके वैद्य। उन्होंने कहा हम तुम्हें उससे बचावेंगे। दधीचिने कहा— कैसे? उन्होंने उत्तर दिया—

'यदा नौ उपनेष्यसे, अथ ते शिरः छित्त्वा अन्यत्र अपनिधास्यावः। अथ अश्वस्य शिरआहृत्य तत् ते प्रतिधास्यावः। तेन नौ अनुवक्ष्यसि। स यदा नौ अनुवक्ष्यसि; अथ ते तद् इन्द्रः शिरः छेत्स्यति। अथ ते स्व ७ं शिर आहृत्य तत् ते प्रतिधास्यावः'

१४।१।१।२३।

अर्थात्—जब तुम उक्त विद्या हमें देने लगोगे, तब हम तुम्हारा सिर काट कर अलग रख देंगे और घोड़ेका सिर लाकर तुमसे जोड़ देंगे। उससे हमें उक्त विद्या देना तब तुम्हारे उस अश्वके शिरको इन्द्र काट डालेगा। फिर हम तुम्हारा सिर तुमसे जोड़ देंगे। यह घटना आगे हुई। जैसे कि—

"तौ ह उपनिन्ये। तौ यदा उपनिन्ये, अथ अस्य शिरः छित्त्वा अन्यत्र अपनिदधतुः। अथ अश्वस्य शिर आहृत्य तद् ह अस्य प्रतिदधतुः। तेन ह आभ्याम् अनूवाच। स यद् आभ्यामनूवाच, अथास्य तद् इन्द्रः शिरःचिच्छेद। अथ अस्य स्वश्ंशिर आहृत्य तद्हअस्य प्रतिदधतुः" (शतपथ १४।१।१।२४)

अर्थ पूर्व जैसा ही है। शतपथ ब्राह्मणको स्वा० दयानन्दजी भी प्रमाण मान गये हैं। उन्होंने अपने यजुर्वेद भाष्यकी सत्यतामें शतपथब्राह्मणकी ही साक्षी दी है।

शायद शतपथ ब्राह्मणकी यह अपनी ही कल्पना लोग न मान लें। इसलिये शतपथब्राह्मणने इस कथामें मन्त्रभाग, जिसे वादी लोग वेद मानते हैं — की भी साक्षी दी है। जैसे कि 'तस्माद् एतद् ऋषिणा अभ्यनूक्तम् — 'दध्यङ् ह यन्मधु आथर्वणो वाम् (अश्विनौ) अश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाच' (ऋ० १।११६।१२) शत० १४।१।१।२५।

वेदके अन्य स्थलोंमें भी दधीचके सिर पर अश्वियों द्वारा अश्वके सिर स्थापन करनेका मूल मिलता है। जैसे कि—

'आथर्वणाय अश्विनौ दधीचे अश्व्यं शिरः प्रत्यैरयताम्। (ऋग्वेद १।११७।२२) युवं दधीचो मन आविवासथो ऊथा शिरः प्रतिवाम् अश्व्यं वदत्' (१।११९।९)।

फलतः उक्त वैदिक कथाकी भांति गज-मुखका सन्धानभी असम्भव नहीं। जिस प्रकार वेदमें अश्व-मुख द्वारा भी सम्भाषणशक्ति निरूपित की गई है, वैसे गजमुखमेंभी सम्भाषण शक्ति जान लेनी चाहिये। अन्य बात यह भी स्मर्तव्य है कि — देवता स्वभाव से ही अमृतभक्षक होते हैं। वेदमें यह बात मानी गई है, जैसा कि— 'देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्' अथर्व० ११।७(५)।२३, 'यत्र देवा अमृतमानशानाः' अथर्व० २।१।५ 'देवा अमृतेन उदक्रामन्। अथर्व० १९।१९।१०। सुश्रुतसंहिताके उत्तरतन्त्रमें लिखा है—

येनाऽमृतमपां मध्याद् उद्धृतं पूर्वजन्मनि।
यतोऽमरत्वं सम्प्राप्तास्त्रिदिवास्त्रिदिवेश्वरात्॥
(३९।३)

यह बात धन्वन्तरिके लिये कही गई है। पारस्कर-गृह्यसूत्रमें कहा है—

"देवा आयुष्मन्तस्त अमृतेन आयुष्मन्तः।"
(१।१८।८)

स्वा० दयानन्दजीने भी यह मन्त्र अपनी संस्कार-विधिके अट्ठावन पृष्ठमें उद्धृत किया है। फलतः अमृताशी होने पर सिर काटने से भी शरीर मृतक नहीं हो जाता। इस पर राहु केतु को नहीं भूलना चाहिये। इस प्रकार गणपतिके भी अमृताशी होनेसे शिर कटने पर भी उसकी प्राणवायु निकल नहीं गई। इस पर वेदान्तदर्शनके १।३।३३ सूत्रके भाष्यमें कहा हुआ —

'ऋषीणामपि [एवं देवादीनामपि] सामर्थ्यं न अस्मदीयेन सामर्थ्येन उपमातुं युक्तम्।'

यह श्रीस्वामी शङ्कराचार्यका वचन सदा याद रखना चाहिये। तब गजके शिरके जोड़नेसे यथापूर्व भाषणशक्ति होगई। जैसे जरासन्धकी दोनों सन्धियों के जरा राक्षसी द्वारा जुड़नेसे उसकी अव्यक्त प्राण-वायु फिर व्यक्त हो गई, वैसे हाथीके शिरके सन्धान से भी अन्तर्हित प्राणवायु प्रकटरूपमें होगई। गणेश-पूजनके विषयमें गणेशाऽथर्वशीर्ष पुस्तक भी [जो प्राचीन है] प्रसिद्ध है। विस्तार भयसे उसके अंश उद्धृत नहीं किये गये। उसका प्रकृतोपयुक्त अंश यह है—

"'एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
.........मूषकध्वजम्।
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।

.....................लम्बोदराय एकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय नमः ....।"

कई लोग फिर भी प्रश्न करनेसे नहीं चूकते कहते हैं—"हाथीका सिर बहुत बड़ा, वह छोटे पुरुषकी ग्रीवा पर कैसे समा सका?" परन्तु यह शङ्का व्यर्थ है। गणपतिको मनुष्य शरीर समझना शङ्काकर्ताकी भूल है। गणपति मनुष्य नहीं, किन्तु देव हैं। देवताओंके शरीर मनुष्य तुल्य नहीं होते; किन्तु बहुत बड़े होते हैं। चाहे आप चित्रोंमें गणेश-को ह्रस्व आकारवाला देखें, परन्तु वहाँ वास्तविकता नहीं होती। सूर्य देवताका भी चित्र बनाया जाता है। चित्रमें सूर्य कितना छोटा होता है, परन्तु क्या उतना ही सूर्यका आकार होता है? नहीं। सूर्य तेरह लाख पृथ्वी जितना है। इस प्रकार देवताओंमें आकारकी दीर्घता जाननी चाहिये। हाथी भी वहाँ पर दिव्य जानना चाहिये, इस लोकका प्राणी नहीं। ऐसा समझने पर फिर कोई विप्रतिपत्ति नहीं ठहर सकती।

दूसरे पुरुष एक अद्भुत परन्तु हास्यास्पद एक कल्पना करते हैं। वे गणपति देवको पृथक् स्वीकार ही नहीं करते। उनका अभिप्राय यह है कि 'ॐ' का पूजन ही गणेशपूजन है। 'ॐ' के आरम्भमें हाथीकी सूंडका आकार दिखलाई देता है। उसे पौराणिकोंने गणेशकी सूंड बना दिया। 'ॐ' में जो अनुस्वार दीखता है उसे गणेशका मोदक (लड्डू) बना दिया गया। इस प्रकार गणपतिपूजन ओङ्कारपूजनकी विस्मृतिका कारण है। इस पर हम यह कहते हैं कि यदि यह कल्पना सत्य मानी जावे, तो फिर चारों वेदों तथा सभी अक्षरोंको भी कल्पित मानकर उन्हें छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि जैसे उन्होंने 'ॐ' से गणेशकी मूर्त्ति सिद्धकी है; वैसे ही 'ॐ' से सभी अक्षर तथा आकार बनाये जा सकते हैं। कई पुरुष इस बातको सिद्ध कर भी चुके हैं। तब आप क्या यह मान कर अन्यान्य अक्षरोंको वर्ण-मालासे बहिष्कृत कर देंगे?

वास्तवमें आक्षेपकोंकी यह कल्पना ही बालूकी भित्ति है। क्योंकि 'ॐ' यह आकृति ही स्वयम् अर्वाचीन तथा अशुद्ध है। तब वह औरोंको ही क्या अर्वाचीन सिद्ध कर सकेगी? प्राचीनकालमें ओङ्कार 'ॐ' इस रूपमें नहीं लिखा जाता था; किन्तु 'ओम्' इस रूपमें ही। बल्कि इसमें 'ओ' भी 'ओ' इस 'अ' वाले आकारमें ही प्राचीनकालमें लिखा जाता था। मकारको अनुस्वार हल् प्रत्याहार परे होने पर हो सकता है, हल्के अभावमें नहीं। तब इसमें हाथीकी सूंड वा मोदककी भ्रान्ति हो ही नहीं सकती। तब यह वादियोंका गणेशपूजा हटानेके लिए व्याजमात्र ही सिद्ध हुआ। गणपतिपूजन तो बहुत प्राचीन है, जबकि 'ॐ' यह आकृति प्रचलित भी नहीं हुई थी।

वादियोंको यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि 'ॐ' शब्दको देखकर जो उसके अग्रभागसे हाथीकी सूँड समझें, और उसके अनुस्वारको देखकर जो उसका लड्डू समझें, वे मूर्ख क्या महामूर्ख हो सकते हैं। उन जैसोंके लिए ही यह कहावत प्रसिद्ध है। 'काला अक्षर भैंस बराबर'। परन्तु गणेशकी हस्तिमुखकी कल्पना निरक्षरोंकी नहीं, किन्तु साक्षरों-की है। इसमें स्मृतियें, इसमें कृष्णयजुर्वेद, इसमें गृह्यसूत्र भी साक्षी हैं। तब क्या इनके वक्ता वा प्रणेताओंको मूर्ख कहनेका साहस कोई धृष्ट कर सकता है?

अन्य यह भी विचारणीय है कि ओङ्कारमें न तो कोई हाथीकी आकृति है, न ही उसमें कोई एकदन्तकी आकृति है, न उसमें कोई स्थूलोदरता है, और न ही उसमें कोई मूषकवाहनकी भ्रान्ति हो सकती है। तब गणेशपूजा ओङ्कारपूजा-विस्मरण-मूलक है, यह वादियोंकी बात कट गई। बल्कि जहाँ पर गणपतिपूजा होती है, वहाँ पर ओङ्कारकी पूजा पृथक् ही हुआ करती है। गणेशपूजाके ओङ्कार-पूजन-विस्मरण मूलक होने पर गणेशसे पृथक् ओङ्कारकी पूजा नहीं होनी चाहिये थी। परन्तु ओङ्कारकी गणेशसे पृथक् जो पूजा की जाती है

इससे स्पष्ट है कि वादियोंकी कल्पनाका व्याजसे अधिक मूल्य नहीं।

कई लोग गणेशका मूषकवाहन सुनकर उस पर मखौल उड़ाते हुए उसे दबी जीभसे अप्रामाणिक तथा असम्भव कहनेके लिए बद्धकटि हो जाते हैं कि एक छोटा सा चूहा स्थूलोदर गणेशको कैसे उठा सकता है इत्यादि। इस पर भी दो-चार शब्द लिखना उचित प्रतीत हुआ है, पाठक ध्यानसे देखें।

यजुर्वेदके तीसरे अध्यायके सत्तावन मन्त्रमें यह अंश है — 'आखुस्ते पशुः'। इसका अर्थ यह है कि चूहा तेरा वाहन है। यद्यपि इस मन्त्रका देवता 'रुद्र' है, तथापि इसमें रुद्रको ही गणपति रूपमें वर्णित किया गया है। तभी रुद्रसूक्तके 'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च' यजुः १६।२५। इस मन्त्रमें रुद्रको भी गणपतिरूपमें कहा गया है। इसी प्रकार 'रुद्रस्य गाणपत्यं' यजुः ११।१५। इसमें भी रुद्रको गणपति कहा गया है। उसमें कारण पहले बताया जा चुका है। इस प्रकार यहाँ अप्रमाणिकता तो हट गई। शेष प्रश्न असम्भवका है। उसमें यह निवेदन है कि जब कि गणपति एक देव है, तब उसका वाहन मूषक भी दिव्य ही है; साधारण मूषक नहीं। इस प्रकार कार्तिकेयका वाहन मयूर है। उस विषयमें भी जानना चाहिये। तब गणेशका उस पर आरोहण भी अनुपपन्न नहीं। लौकिक मूषकके आकारसादृश्य से तो उसे भी मूषक कहा जाता है, इससे उसका परिमाण भी उतना हो, यह बात नहीं हो सकती।

आकाशमें वृश्चिक, मकर, मीन आदि राशियाँ हैं। उनका यह नाम लौकिक वृश्चिक (बिच्छू), मकर (मगरमच्छ), मीन (मत्स्य) के आकारके सादृश्यको लेकर पड़ा है, क्योंकि उस उस राशिका तारामण्डल उसी आकार प्रकारका है। अतएव नाममें भी सादृश्य है। परन्तु क्या परिमाण लौकिक वृश्चिकका वा राशिमण्डलके वृश्चिकका तुल्य हो सकता है ? — कभी नहीं। उन्हीं वृश्चिक आदि राशि पर सूर्यादि ग्रह आरोहण करते हैं। सूर्य १३-१४ लाख पृथिवियोंके परिमाण वाला माना जाता है; तब इतना बड़ा सूर्य छोटेसे वृश्चिक (बिच्छू) पर कैसे चढ़ सकता है ? यदि उस वृश्चिकका आकार विशाल माना जाता है तो इसी प्रकार गणेशके मूषकका आकारभी विशाल समझना चाहिये। क्योंकि दिव्य और लौकिकमें परस्पर बहुत भेद हुआ करता है। तब दिव्य मूषक पर गणपतिके आरोहणमें असम्भव दोष हट गया और फिर यह भी याद रखना चाहिये कि वे वाहन भी देवताओंके अवतार विशेष होते हैं, यह साधारण लौकिक नहीं।

इन कुतर्कोंको काट कर फिर हम प्रकरणमें पहुँच कर उसको समाप्त करके प्रकृतविषयका उपसंहार करते हैं। केवल कृष्णयजुर्वेदमें ही गणपतिपूजन नहीं कहा गया, प्रत्युत शुक्लयजुर्वेदमें भी गणपतिकी पूजा बतलाई गई है। जैसे कि— 'गणानां त्वा गणपति ᳫं हवामहे' (यजुः २३।१६) यहाँ पर अश्वमेधके अश्वका गणपतिरूपसे आह्वान किया जाता है। इसी लिये आर्यसमाज वैदिक प्रेस अजमेरसे प्रकाशित यजुर्वेदमें इस मन्त्रका देवता भी 'गणपति' लिखा गया है, इससे हमारा ही पक्ष पुष्ट हुआ। इसी प्रकार 'रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि' (यजुः ११।१५) इस मन्त्रका भी देवता आर्यसमाजसे प्रकाशित उक्त वेदमें 'गणपति' लिखा गया है। ऋग्वेदमें भी ब्रह्मणस्पति गणपतिका आवाहन मिलता है, जैसा कि—'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' (ऋ० २।२३।१) अन्य स्पष्ट मन्त्र यह है। देखिये —

'निषुसीद गणपते ! गणेषु
त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किञ्चनारे
महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥'

ऋग्वेद १०।११२।६

यहां पर गणपतिके लिये कहा गया है कि— 'न ऋते त्वत् क्रियते किञ्चन' अर्थात् तेरे पूजनके बिना कोई काम प्रारम्भ नहीं किया जाता। इस वेद के मूलको तथा गृह्यसूत्र, स्मृति, एवं पुराणादिकी

साक्षीको ले कर ही सनातनधर्मने गणपतिपूजा स्वीकृत की है। 'त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्' इस अशमें 'विप्र' का निघण्टु ३।१५ के अनुसार 'मेधावी' यह यौगिक अर्थ है। अथवा—

'जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं' १३६।

इस अत्रिस्मृतिके प्रमाणके अनुसार 'ब्राह्मणवर्णस्थ-विद्वान्' यह योगरूढ़ अर्थ होगा, क्योंकि वेदमें यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ तथा यौगिकरूढ़ सभी प्रकार के शब्द आते हैं। देवताओंमें भी वर्णविभाग माना गया है। इस कारण 'ब्राह्मण वर्णस्थ विद्वान्' यह अर्थ सङ्गत हुआ। गणपतिकी विद्वत्ता महाभारतके लेखक बननेके समय जिसका विवरण महाभारतके आदिपर्व १।७५।८३ में विद्यमान है, स्पष्ट ही है।

कई लोग इस मन्त्रका देवता 'इन्द्र' देख कर कहते हैं कि यह इन्द्रका मन्त्र है, गणपतिका नहीं। उनसे पूछना यह है कि आपके नेता स्वा० दयानन्द जीने अपने भाष्यमें स्वयं लिखित देवताओंसे विरुद्ध भी अर्थ किये हैं। 'द्वादश प्रधयश्च क्रमेकम्' ऋ० १।१६४।४८। इस मन्त्रका देवता स्वामीजीने 'संवत्सरात्मक काल' माना है। परन्तु अर्थ किया है— 'आकाशयान' (हवाईजहाज) का। स्वप्रमाणित निरुक्तका भी यहां अनादर कर दिया। सत्यार्थ-प्रकाशके ११० पृष्ठमें सप्तम समुल्लासमें स्वामीजीने ही लिखा है— 'क्या एक अर्थके अनेक नाम, और एक नामके अनेक अर्थ नहीं होते?' तब उनके अनुयायी हमारे पक्षमें यह बात क्यों भूल जाते हैं?

वास्तवमें हमारा पक्ष तो स्पष्ट भी है, तथा सोपपत्तिक भी। इस मन्त्रमें 'गणपति' शब्द स्फुट ही है। यहां पर इन्द्र 'गणपति' रूपसे वर्णित किया गया है। निरुक्तमें भी यह प्रसिद्ध है—

'एकस्य आत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।' (७।४।९)

इस लिये वहीं पर दैवतकाण्ड सप्तमाध्यायमें तीन देवतामात्र स्वीकृत कर अन्य देवताओंका उन्हीं तीनोंमें अन्तर्भाव माना है। और भी निरुक्तमें देखिये — देवताओंके लिये वहां पर लिखा है—

इतरेतरजन्मानो भवन्ति इतरेतरप्रकृतयः। ७।४।१२
'माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते' (निरुक्त ७।४।८)

एतदादि प्रमाण हमारे पक्षको स्पष्टतया पुष्ट कर रहे हैं।

सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि शतपथब्राह्मण में लिखा है— 'इन्द्रः सर्वा देवताः' (३।४।२।२), 'इन्द्रो वै सर्वे देवाः' (शत० १३।२।७।४), 'इन्द्राऽग्नी वै सर्वे देवाः' (शत० ६।३।३।२१) इन प्रमाणोंसे स्पष्ट हुआ कि— इन्द्र देवता हो, चाहे अग्नि देवता; इनकी सब देवताओंके रूपसे स्तुति हो सकती है। इसी लिए ही—

'त्वमग्ने! इन्द्रो .... त्वं विष्णुः .... त्वं ब्रह्मा' ऋ० २।१।३ 'त्वमग्ने! राजा वरुणो .... त्वं मित्रो ....। त्वमर्यमा ....' ऋ० २।१।४ 'त्वमग्ने! रुद्रो ....। त्वं पूषा ....' ऋ० २।१।६

इत्यादि मन्त्रोंमें अग्निको बहुत देवताओंके रूप वाला कहा गया है। इस प्रकार इन्द्रके लिए भी जानना चाहिए। तब इन्द्रकी गणपति रूपसे भी स्तुति की जा सकती है। इससे गणपति देव, तथा उसका पूजन वैदिक सिद्ध हुआ। गणपति कोई देवता विशेष ही वेदमें नहीं; यह बात नहीं कही जासकती। क्योंकि— 'गणानां त्वा गणपति ꣳ हवामहे' यजु० २३।१९ इस, तथा यजु० ११।१५ मन्त्रका आर्यसमाज से छपाये वेदमें भी 'गणपति' देवता लिखा है; यह हम पहले कह ही चुके हैं। तब गणपति देवताकी सिद्धि होनेसे हमारा पक्ष ही सिद्ध हुआ।

इससे यदि उक्त मन्त्रमें इन्द्र ही गणपति-देव रूपसे वर्णित किया गया है; तथापि इससे गणपति देवताका पृथक् अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। इसी लिए निरुक्त ७।५।२ में केवल तीन देवता लिखकर शेष देवता इन्हीं तीनके अन्तर्गत माने गए हैं।

श्रीभगवद्भक्ति

[लेखक—श्री पं० भवानीदत्त जी शर्मा व्याकरणाचार्य]

अखिलचराचर-कारागार - दुस्तार - असार इस संसारमें शूकर - कूकर - कीटपतङ्ग दानव मानवादि चौरासी लक्ष योनियोंमें सर्वश्रेष्ठ ज्ञानवान् मनुष्ययोनि अनेक जन्मके पुण्यसे प्राप्त होती है। इस अलभ्य मनुष्यजीवनपथ पर आरूढ़ हो कर श्रीपूर्णतम पुरुषोत्तम अखण्डकोटि - ब्रह्माण्डनायक सर्वान्तरात्मा परमात्माकी भक्ति ही अपारदुस्तार सागरसे पार करने वाली एक नौका है। इस भगवद्भक्तिका अवलम्बन करते हुए मनुष्य आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक दुःखभयसे निर्मुक्त हो कर सर्वान्तरात्मा परमात्माके विशुद्ध सत्स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके जन्ममरणादि सांसारिक दुःखोंसे निर्मुक्त हो जाता है। अतएव—"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"—यह वेदोक्तिप्रमाण है। श्रीभगवान् वेदव्यासजीने श्रवणादि भेदसे नवप्रकार भक्तिका वर्णन किया है। यथा—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

मानसिक तथा निष्काम भक्तिका अवलम्बन करना ही मनुष्यको सर्वश्रेष्ठ है। इसका विवरण इस प्रकार है कि— "अयौगपद्याज्ज्ञानानां तस्याणुत्वमिहेष्यते" इत्यादि प्रमाणसे मन परमाणु परिमाण है। मनसे मनुष्य भक्ति समर्पण करता है तो सत्स्वरूप परमात्मा भी मनसे ही ग्रहण करते हैं। इस लिए मनुष्यकी मानसिक स्वल्प भक्ति भी परमेश्वरके मनको पूर्णतया तृप्त कर सकती है। जैसे मानसिक भक्तिसे दिये हुए भक्त सुदामाके मुष्टिद्वय तण्डुल सद्घनचिद्घन घनश्यामके तृप्त्यर्थ हुए। अन्यथा अमानसिक भक्तिसे समर्पित सेवाको भगवान् अपने विराट् मनसे ग्रहण करते हैं। तो कौन शक्तिमान पुरुष परमात्माके विराट् मनकी तृप्ति करनेके लिए समर्थ हो सकता है। अतएव मानसिक भक्तिका अवलम्बन ही सर्वश्रेष्ठ है। एवं सकाम एक व्यापार है। जितनी कोई वस्तु देगा तत्तुल्य ही अन्य वस्तु उसको प्राप्त होगी, न्यूनाधिक नहीं और निष्काममें कई गुणा अधिक फल प्राप्ति होती है। जैसे कि कोई व्यक्ति राजाको निष्प्रयोजन कुछ भेंट समर्पण करता है तो राजा समय प्राप्त होने पर कई गुणा पुरस्कार उस पुरुषको देते हैं। अतएव निष्काम भक्ति मनुष्य

इन्हीं तीन देवताओंमें इन्द्रका भी नाम है। परन्तु इससे "चन्द्रमा देवता, वसवो देवता, रुद्रा देवता, आदित्या देवताः" (यजु० १४।२०) इत्यादि पृथक् देवताओंकी पृथक् सत्ता निषिद्ध नहीं हो सकती।

पुराणोंमें तो गणपति पूजा व्याप्त ही है, जैसे कि भविष्यपुराणके प्रतिसर्ग-पर्वमें द्वितीय भागमें—

पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैः पायसेन घृतेन च।
गणेशं तु चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम्॥२०।१३६

'गजेन्द्रवदनं देवं.......' २०।१४० 'मूषकस्थं महाकायं' २०।१४१ इत्यादि। परन्तु वादियोंकी पुराणों में विप्रतिपत्ति होनेसे उन प्रमाणोंका उद्धरण प्रयासमात्र है। वादी लोग स्वयं ही गणेशपूजाको पौराणिक मानते हैं। वैसा माननेमें पुराणोंके प्रमाणों की क्या आवश्यकता ? इसलिए हमने वे ही प्रमाण चुने हैं, जिनमें वादियोंकी विप्रतिपत्ति न हो सके। इस प्रकार गणपति पूजन जहां पौराणिक सिद्ध हुआ वहां स्मार्त्त भी सिद्ध हुआ, गृह्यसूत्रोक्त भी, एवं वैदिक भी सिद्ध हुआ। तब वादियों द्वारा कही जाती हुई—गणपति-पूजाकी अर्वाचीनता— अपास्त हो गई। इतना ही कह कर प्रकृत विषय उपसंहृत किया जाता है। यदि पाठकोंकी रुचि देखी गई तो आगे ग्रहोंके शुभाऽशुभ प्रभाव पर निबन्ध दिया जा सकेगा, क्योंकि गणपतिपूजनके साथ ग्रहपूजन भी प्रसिद्ध है। शम्।

को सर्वश्रेष्ठ है। भगवद्भक्तिमें मनुष्यमात्रका ही अधिकार नहीं अपितु प्राणीमात्रका अधिकार है। अन्यथा गजेन्द्रकी भक्तिसे कैसे व्रजेन्द्र नन्दनन्दन प्रसन्न होते। अशिक्षित मनुष्य भी मानसिक भक्तिसे सर्वान्तरात्मा परमात्माको प्रसन्न कर सकता है।

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का ?
कुब्जायाः किन्नामरूपमधिकं किन्तत् सुदाम्नो धनम् ?
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं ?
भक्त्या तुष्यति केवलं नच गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ॥

आचरणहीन होने पर भी व्याधने भक्ति द्वारा अपना उद्धार किया, राजा उत्तानुपातका पुत्र पञ्चवर्षीय बालक ध्रुव अपनी सपत्नीमातासे तिरस्कृत हो कर पूर्णतमपुरुषोत्तम भगवान्का स्मरण करता हुआ सघनारण्यपथवर्ती हुआ। महर्षि नारदके बहुशः प्रतिरोध करने पर भी विचलित नहीं हुआ। इस प्रकार ध्रुवकी निश्चित भक्ति जानकर महर्षिनारदने उसको परमात्माका मूलमन्त्र "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" का उपदेश किया। तदनन्तर ध्रुवकी अविच्छिन्न भक्तिसे नारायणदेव प्रसन्न हुए और ध्रुव-पद दिया। जलमें डूबते गजेन्द्रने सर्वान्तरात्मा परमात्मा व्रजेन्द्र नन्दनन्दनका स्मरण किया तो भक्तवत्सल भगवान्ने ग्राहसे उसको निर्मुक्त किया। यदि रूपवान् की भक्तिसे ही परमेश्वर प्रसन्न होते हैं तो कुब्जाका क्या रूप था ? जो श्रीकृष्णचन्द्र उसके प्रति प्रसन्न हुए। यदि धनाढ्यकी भक्तिसे भगवान् प्रसन्न होते हैं तो सुदामाके पास क्या धन था ? बृहत्परिवारकी भी परमेश्वरको अपेक्षा नहीं। अन्यथा विदुरका कैसे उद्धार होता ? यदि बलवान्की अपेक्षा परमात्माको होती तो उग्रकी भक्ति कैसे स्वीकृत होती ? इसलिए सर्वान्तरात्मा परमात्मा केवल भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं, गुणोंसे नहीं। प्रथम घोर दुराचार करने पर भी पश्चात् अपने दोषोंका ज्ञान करते हुए दुखित हो कर उतनी ही प्रचुर परमात्माकी भक्ति द्वारा अपने पापोंको समूलोच्छेद करके परमात्माको मनुष्य प्राप्त कर सकता है। जैसे कि भक्त सूरदासजी ने प्रथम घोर दुराचरण करने पर भी पश्चात् अविच्छिन्न भक्ति द्वारा भगवत्प्राप्ति की। कतिपय जन रामकृष्णादि भगवदवतारोंमें भेदबुद्धि रखते हैं। कतिपय जन शैव वैष्णवादिमें भेदबुद्धि रखते हैं। वस्तुतः एक अनादि परमात्मा ही समयानुकूल इस संसारचक्र को चलानेके लिए भक्तोंकी रक्षाके लिए तथा धर्म मर्यादा सुरक्षित करनेके लिए तत्तदवतारादि रूपसे प्रादुर्भाव हुए। गीतामें भगवान् स्वयं कहते हैं कि 'यदा यदा हि धर्मस्य···· परित्राणाय साधूनामित्यादि।' जैसे एक वृक्षसे अनेक शाखायें निकलती हैं किन्तु जड़ एक है। इसी प्रकार एक परमात्माके ही अनेक रूप हैं। इस लिए भेदबुद्धिका नाश करके किसी भी परमेश्वरका रूप स्मरण कर भक्ति द्वारा उस आशुतोष भक्तवत्सल परमात्माको प्रसन्न करे। इस घोर कलिकालमें दारुण दुःखसागरको पार करनेके लिए भक्त्यतिरिक्त अन्य कोई भी साधन हमको प्राप्त नहीं है। द्वापरान्तमें जब श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अपने उत्तम लोकको प्रस्थान करने लगे तब भक्तोंने प्रार्थना की कि "भगवन्! आपके बिना आपके भक्त इस मर्त्यलोकमें किस प्रकार कालयापन करेंगे ? इसलिए इसका कुछ उपाय विचारिए।" तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भक्तोंको उपदेश किया कि — "मेरे शरीरसे उत्पन्न मेरी ही आदिशक्ति भक्ति यहां है। उस भक्तिके द्वारा यथासमय मैं अपने भक्तोंको दर्शन देता रहूंगा और दुःख दूर करता रहूंगा।" इसीलिए "नाहं वसामि वैकुण्ठे" इत्यादि वाक्य संगत है और इसीलिए सर्वकल्याणकारिणी भक्ति ही है।

सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी।
तथापि नरकं यान्ति धिग्धिगस्तु नराधमान्।

परमात्मका नाम बहुत मधुर है और जिह्वा भी अपने वशमें है, तो भी नरक जाने वाले मनुष्यको धिक्कार है। धन, पशु, भार्या, बन्धुवर्ग, शरीर सब यहींके साथी हैं। परलोकमें केवल भगवन्नाम ही सहायक है। इसलिए जिस प्रकार भक्त प्रह्लाद, श्री महाराणी द्रौपदी, भक्त ध्रुव, भक्त सूरदास, भक्त सुदामा, भक्तगृद्धराज, भक्त हरिश्चन्द्र, भक्त मोरध्वज इत्यादि कई भक्त सर्वान्तरात्मा भक्तवत्सल श्रीपरमा-

दशहरा

[ले०—कविरत्न काव्यतीर्थ काव्यमनीषी श्री पं० रामदत्तजी त्रिवेदी 'विमल' साहित्यालङ्कार शास्त्री]

जगन्नियन्ता जगदीश्वरकी नाट्यशालामें सदा अनेक प्रकारके नाटक हुए हैं, होते हैं और होंगे। हुए नाटकोंमें एक 'दश-हरा' का नाटक भी बहुत कुछ महत्त्व रखता है। जब रावणका चारों ओर राज्य था; उसके अत्याचारोंसे पृथ्वी थर्रा रही थी, ऋषि-निकर 'त्राहिमाम्' की पुकारसे नभोमण्डलको विदीर्ण कर रहा था; देवता अपनी-अपनी सेवा बजानेमें तल्लीन थे; तब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी दशरथके घर अपनी शक्तियोंके साथ कौशल्याके उदरसे जन्म लेके इस नाटकके प्रधान नट बन जाते हैं। उनका जन्म सुनकर ऋषि-मुनियोंके झुण्डके झुण्ड दर्शन करनेके लिए दशरथके घर आते हैं और उन्हें आशीर्वाद देकर धर्मरक्षाके लिए प्रेरित करते हैं।

उनके कुछ बड़े हो जाने पर मुनी विश्वामित्रजी दशरथके दर्बारमें उपस्थित होकर यज्ञ-रक्षार्थ राम लक्ष्मणको लेकर जाते हैं। मार्गमें ताड़का वधसे ही धर्म-रक्षा और पाप-संहारका श्रीगणेश हो जाता है। इधर विश्वामित्र मुनिका यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जाता है और उधर महामहिमा माया श्रीसीताजीका स्वयंवर जनक करते हैं। स्वयंवर-समारोहमें मुनिके साथ दोनों भाई राम लक्ष्मण पहुंचते हैं, और शङ्करके धनुषके दो टुकड़े कर डालते हैं। झट सीताजी स्वयंवर-माला श्रीरघुनन्दनके गलेमें डालती हैं। सीतारामकी जोड़ी आदर्श जोड़ी बन जाती है।

त्माको प्रसन्न कर इस सांसारिक दुःखसे निर्मुक्त हो कर सदा सुखी हुए। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी अविच्छिन्न भक्तिसे श्रीपरमात्माको प्रसन्न कर इस सांसारिक दुःखसे निर्मुक्त हो कर सदा सुखी होवें। इति शिवम्।

विवाह होते ही रामचन्द्रजी घर आते हैं, और दशरथजी शीघ्र राज्याभिषेक करनेके लिए समय निर्धारित करते हैं और ईश्वर-सङ्केतसे नाटकके दूसरे अङ्कका पर्दा उठता है। अभिषेकका दिन निर्वासनमें परिणत हो जाता है। साकेत निवासियों-का सूर्य उदय होनेसे पहले ही अस्त हो जाता है। वह वनका दिन श्रीरामके चरितके ग्रामोफोनमें एक ऐसा डबल रेकार्ड है जिसमें एक ओर राज्याभि-षेकके आनन्दकी भैरवीका आलाप पूर्ण न होनेसे पहले ही दूसरी ओर वन-यात्राकी सोहिनीका शोक-सङ्गीत आरम्भ हो जाता है। सरस्वती मन्थराके द्वारा केकैयीसे श्रीरामचन्द्रको चौदह वर्षका बनवास दशरथसे दिलवाती हैं और रामचन्द्रजी उन चौदह वर्षके अन्दर ही लोक-सन्तापकारी रावणका सकुटुम्ब-विभीषणको छोड़के संहार करते और धराके भारको मिटाते हैं।

जिस दिन रावणका नाश किया गया; उसी दिनको हम 'दश-हरा' कहकर पुकारते हैं। निदान 'दशहरा' है दश मस्तकवाले रावणका नाश होने-वाला दिन। यह दिन जितना व्यापक और पूजनीय है; उतना ही प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण भी है।

(२)

रावण-हन्ता श्रीरामजी क्षत्रिय कुलोत्पन्न थे। क्षत्रियका धर्म वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा करना है। इसी-लिए क्षत्रिय संसारकी भुजाएँ कहलाते हैं:—"बाहु-भ्यां क्षत्रियाः सृष्टः" भुजाका जो धर्म है वही धर्म क्षत्रियका है। जिस प्रकार शरीरकी रक्षा भुजाएँ करती हैं; उसी प्रकार लोककी रक्षा क्षत्रियोंको करनी चाहिए। इसी पुनीत उद्देश्यको लेकर अपने पवित्र कर्तव्यको दिखलाते हुए:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥१॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥२॥

संहार करनेके लिए भगवान् क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए थे। आपने दुर्जेय रावणका नाशकर सनातन-धर्मको सुदृढ़ एवं चिरस्थायी बनाया था। इसी दिन सनातनधर्मावलम्बियोंकी मन चाही हुई थी, अतः यह त्यौहार दशहरा विशेषरूपेण प्रचलित है और हिन्दू इसे प्राणपणसे मनाकर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं।

(३)

रावणके साथ-साथ कुम्भकरणका भी नाम विशेषोल्लेखनीय है। पुराणोंसे जाना जाता है कि किसी समयमें यह दोनों भाई थे और जय विजयके नामसे प्रसिद्ध थे। यह विष्णुके यहां द्वार-रक्षकका काम किया करते थे। एक दिन कहींसे घूमते-घामते सनत्कुमार विष्णुके अतिथि बनकर आये; इन्होंने उनको रोका और उन्होंने इनको शाप दे डाला:—"जाओ, तुम दोनों राक्षस हो जाओ।" जय और विजय दोनों शापको सुनकर झेंपे; चट सनत्कुमारोंके चरणों पर गिरकर गिड़-गिड़ाने लगे। इनको आर्त्त देखकर दयालुऋषियोंको दया आई। उन्होंने कहा, कि "पुत्रों! खड़े हो, हमारा शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता; किन्तु तुम राक्षस तीन जन्मतक रहोगे, आगे मोक्ष पा जाओगे और तीनों जन्मोंमें भगवान् विष्णु ही अवतार लेकर तुम्हें मारेंगे।" तभीसे वह दोनों राक्षस कुलमें उत्पन्न हुए और हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपुके नामसे पुकारे गये। दूसरे जन्ममें यही रावण और कुम्भकर्ण बने; जिनको मोक्ष देनेके लिए लीलामयको मनुष्यावतार धारण करना पड़ा। बस इतना ही इस पुनीत 'दश-हरा' का संक्षिप्त इतिहास है। यह कहना न होगा कि यही दोनों तीसरी पीढ़ीमें शिशुपाल और दन्तवक्रके नामसे पुकारे गये।

कोई भारतीय ऐसा न होगा, जो इस 'दश-हरा' को न मनाता हो। बंगालियों और रजवाड़ोंमें तो इसे विशेष उत्साहसे मनाते हैं। विशेषतः राजपूतानेमें इस अवसर पर एक भैंसेको रावण मानकर मारते हैं। यद्यपि अब समयके साथ कई स्थानोंमें इस प्रथाका अन्तसा होगया है; तथा बहुतसे स्थानों पर यह अब भी प्रचलित है।

'दश-हरा' प्राचीन गौरवका चिह्न है। इसे मनसा-वचसा एवं धनेन मनाना प्रत्येक भारतीयका पहला एवं मुख्य कर्त्तव्य है। क्योंकि अपने आदर्श पूर्वजोंकी विजयके उपलक्ष्यमें कुछ-न-कुछ अवश्य उत्साह मनावें, जिससे उनकी यादगारी एवं कीर्त्ति चिरस्थायी बनकर हमें पुनीत करती हुई अपने कर्त्तव्यकी ओर अग्रसर करती रहे।

आज जैसे पवित्र दिन बहुत दिनों पर आया करते हैं। इसलिये रामकृष्णके भक्त सभी हिन्दुओंको वैर-भाव छोड़कर अपने भाइयोंसे गले मिलकर यह प्रतिज्ञा दृढ़ हो कर कर लेना चाहिये, कि हम आजसे अपना सब वैर-भाव छोड़कर एकताके दृढ़ सूत्रमें आबद्ध हो कर प्रातःस्मरणीय श्रीरामचन्द्रजीके पवित्रः—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नापि मे व्यथा॥
सुनु जननी! सोई सुत बड़भागी।
जो पितु मातु चरण अनुरागी॥
मातु-पिता गुरु-स्वामि निदेशू।
सकल धर्म धरणीधर शेशू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जायँ पर बचन न जाई॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथ।
स्वारथ सुयश धर्म परमारथ॥
पितु आयसु पालिय दोउ भाई।
लोक वेद भल भूप भलाई॥
नर तनु पाय विषय मन देहीं।
पलटि सुधाते शठ विष लेहीं॥

इन मननीय उपदेशों पर अमल करते हुए मर्यादा पालक अपने बचनों पर दृढ़ रहनेवाले,

दीपावली वा सुखरात्रि

[लेखक—श्री पं० वृद्धिचन्द्रजी शर्मा वैद्य]

कार्तिक कृष्ण अमावस्या चार रात्रियोंमें प्रधान महारात्रि है। इसका दूसरा नाम सुखरात्रि और कौमुदीरात्रि भी है। इस दिन भारतमें सर्वत्र 'दीपोत्सव' किया जाता है। सर्वत्र दीपदान होता है। इस लिए इसको दीपावली या दीवाली भी कहा जाता है। इसी दिन भगवती लक्ष्मीकी उपासना होती है। लक्ष्मीजीकी पूजाके साथ ही आज ही सरस्वती और केदारगौरी-व्रत भी कहीं कहीं किया जाता है। मुख्यतः यह त्योहार उन लोगोंका है जो अर्थोपासक हैं। किन्तु आज ऐसा कौन है जिसे अर्थकी आवश्यकता नहीं है? जिसे अर्थोपासक न कहा जा सके? भारतवासियोंके सभी कार्य तो अर्थाभावसे रुके पड़े हैं। इस युगमें अर्थ बल ही सर्वोपरि बल है, इस बलकी न्यूनतासे बलवान् रहते हुए भी निर्बल बनकर रहना पड़ता है।

पूर्वकालमें भी सुशासन व्यवस्था और शत्रुदमनके लिए क्षत्रियोंको अर्थकी आवश्यकता सदा रहा करती थी। अर्थ पाकर ही वे पृथ्वी पर एकच्छत्रधर्म-राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न करते थे और उसमें सफल होते थे। अर्थके महत्त्वके सम्बन्धमें भीष्म पितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं:—

तस्मात् सञ्जनयेत्कोशं सत्कृत्य परिपालयेत्।
परिपाल्यानुगृह्णीयात् एष धर्मः सनातनः॥

सत्यवक्ता बड़ोंकी आज्ञा माननेवाले सबके प्रिय एवं सनातनधर्मके उपासक बनकर इस विशाल विश्वमें अपने गौरव एवं आदर्शका पाठ पढ़ाते हुए:—

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥'

के अभ्रच्छेदी तुमुल नादको निनादित कर दें।

अबलस्य कुतः कोशो ह्यकोशस्य कुतो बलम्।
अबलस्य कुतो राज्यमराज्ये श्रीर्भवेत्कुतः॥
तस्मात् कोशं बलं मित्रमथराजा विवर्धयेत्।
हीनकोशं हि राजानं समन्यन्ते न शत्रवः॥

अबलके पास कोश नहीं होता और जिसके पास कोश न हो वह बलवान् कहाँ होता है? अबलके पास राज्य नहीं होता और बिना राज्यके श्री (लक्ष्मी) कहां हो सकती है? इस लिए कोश, बल और मित्रोंकी वृद्धि करे, क्योंकि अर्थरहित राजाकी शत्रुगण अवमानना करते हैं। इससे यह प्रकट होता है कि यह क्षत्रियोंका प्रधान त्योहार है, न कि वैश्योंका जैसाकि सामान्यतः समझा जाता है। जब हिन्दुओंका साम्राज्य था तभी देशमें सच्ची दीपावली मनायी जाती थी। आज वैश्योंके घरोंमें चाहे कैसे ही आनन्दके साथ बही-बसना-दवात कलमकी पूजा प्रार्थना होती हो, किन्तु पूर्वयुगकी यह प्रार्थना कहीं भी सत्य दिखलाई नहीं देती कि:—

ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तो महाबलः।
शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै इन्द्राय ते नमः॥

वैसे तो यही वह दिन है जिसकी प्रतीक्षा आस्तिक धनी-जन वर्ष-दिनसे किया करते हैं, किन्तु प्रायः नास्तिक पुरुष इसका महत्त्व कुछ समझते ही नहीं हैं।

शास्त्रकारोंने लिखा है कि भगवतीके उपासकोंको तन्मय हो कर पूजा करनी चाहिए और रात्रि भर जागरण और नृत्य-वाद्ययुक्त उत्सव करना चाहिए। उनका यह विधान सर्वथा देशकाल-पात्रानुसार उपयुक्त है।

दुराग्रही तो कहते हैं कि रात्रिमें क्यों जागें और फिर दिन में क्यों शयन करें? किन्तु होली

दिवाली आदि उत्सवों पर जागरणका ही विधान शास्त्रोंमें है और शास्त्रविहित कालोचित कार्यकलापसे ही मनुष्य लाभ उठा सकता है।

चार महारात्रियां जागरणपूर्वक व्यतीत करनेका विधान है, जिनमें दीपावली उत्सव विशेष प्रमोदमय है। दीपावली उत्सवके दूसरे दिन गोवर्धन पूजा होती है। दिनके प्रत्येक भागमें धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न होती रहती हैं। प्रातःकाल ही "परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ" का सुन्दर विधान अनुष्ठित होता है। देखिये इसके सम्बन्धमें शास्त्र क्या कहते हैं—

सुखरात्रेरुषःकाले प्रदीपे ज्वलिते सति।
सर्वान्बन्धूनबन्धूंश्च वाचाकुशलयार्चयेत्॥

कितने उदात्तभाव हैं? कहते हैं कि जो अबन्धु हैं उनकी भी मधुर वचनोंसे कुशल क्षेम प्रश्नपूर्वक पूजा की जाय। यहां जबानी जमा खर्चसे काम नहीं चल सकता। यहां तो जो शास्त्रकी मर्यादा है वैसा ही कार्य करना पड़ेगा। किसीका चरणस्पर्श, किसीको प्रणाम, किसीको नमस्कार और अभिवादनादि (जिसका जो अधिकारी है) किया जाता है। ऐसा न करने पर "अपूज्या यत्र पूज्यन्ते" वाली बात चरितार्थ होती है। इसीलिए शास्त्रकी आज्ञा है कि माता पिता गुरु और श्रेष्ठजनोंके चरणोंको स्पर्श कर प्रणाम करें और अबन्धुओंसे मधुर वाणी द्वारा प्रणाम करके मनोमालिन्य दूर करें। महाराष्ट्रमें विजयादशमीको स्वर्णपत्र दानपूर्वक दृढालिङ्गन करते हैं और वर्षभरकी भूलोंके लिए क्षमा याचना करते हैं। सनातनसे चली आने वाली प्रथाका समुचित आदर देखकर असीम आनन्द होता है किन्तु भाव बनावटी होते जाते हैं यह देखकर बड़ा दुःख होता है। जनताको उसी पथ पर आना चाहिए जो सबके लिए आदर्श है।

❀ भाईदूज ❀

[लेखक—राजकुमार गुरु ज्यौतिषालङ्कार श्री पं० तारादत्तजी राजज्यौतिषी]

कार्तिक शुक्ल द्वितीयाके दिन पूर्वकालमें यमुनाने यमदेवकी पूजा की थी। उस समयसे यह भाईदूजका उत्सव प्रचलित है।

कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां युधिष्ठिर!
यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहे स्वयम्॥१॥
अतो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर!
अस्यां निजगृहे पार्थ! न भोक्तव्यमतो बुधैः॥२॥
यत्नेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्धनम्।
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः॥३॥
(भविष्योत्तर)

[कार्तिक शुक्ल द्वितीयाके दिन पूर्वकालमें यमुनाने यमको अपने घर में स्वयं भोजन कराया था। हे युधिष्ठिर! वह तिथि संसारमें यम द्वितीया कही जाती है। हे कुन्तीपुत्र! इसलिए इस दिन विद्वानों को अपने घरमें भोजन नहीं करना चाहिए। यत्नसे बहिनके हाथसे पुष्टिकारक भोजन करना चाहिए। बहिनोंको दान भी विशेषरूपसे देने चाहिए।]

कार्तिककी अमावस्याके अन्तमें सूर्य-चन्द्रमा नित्य तुलाराशिमें होते हैं। भरणी यमदेवका नक्षत्र है। (यमस्याप भरणीः। तै० १।५।१।५।।) यह मेषराशिके अन्तर्गत है। तुलाराशिमें सूर्य-चन्द्रमा मेषराशिको सप्तम दृष्टिसे देखते हैं। मेषराशिके स्वामी मङ्गलकी द्वितीय राशि 'वृश्चिक' भी उस समय सूर्य-चन्द्रमाके समीपमें होती है।

सूर्य आत्म-ग्रह और चन्द्रमा मनोग्रह है। "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।" (यजु० ७।४६) "चन्द्रमा मनसो जातः।" (यजु० ३१।१२) "पराशर उवाच— कालात्मा च दिवानाथो मनः कुमुदबान्धवः।" (बृहत्पाराशर होरा, खं० १ अ० १ श्लो० २) इस प्रकार इस समय आत्मा और मनका यम-देवके साथ सम्बन्ध होता है। यह तुलाराशि शनिरूप यम-देवका उच्चराशिरूप विशिष्ट बलस्थान भी है।

इस समय आत्मग्रह सूर्यके नीचराशिमें होनेसे और मनोग्रह चन्द्रमाके क्षीण और नीचासन्न होनेसे आत्मशक्ति और मानसिक शक्ति क्षीण होती है। इस कारण मारकशक्तियोंका प्राबल्य होता है। अतएव यह काल मृत्युके अधिष्ठाता यमदेवकी उपासना के योग्य है।

यह — कार्तिककी अमावस्या तिथि — और इससे पूर्व दो तिथियां — त्रयोदशी चतुर्दशी — और इससे आगे दो तिथियां — प्रतिपदा द्वितीया— ये पांच यम पञ्चक तिथियां हैं। इनमें चतुर्दशी, अमावास्या, प्रतिपदा ये मङ्गलकार्यमें अधिक निषिद्ध हैं।

"अमातिथिः पार्श्वतिथिद्वयेन
समं न माङ्गल्यमुपादधाति।
लोकंपृणस्तत्र तिथेः प्रणेता
यस्मान्न पीयूष वपुर्वपुष्मान् ॥१॥"
(विवाह वृन्दावन, अ० ८ श्लो० ३३)

इसलिए कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको यमुनाने भ्रातृपूजोत्सवके लिए योग्य माना। कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीके दिन चन्द्रमाके क्षीयमाण होनेके कारण यह उससे उत्तम मानी गयी है।

विशेष रहस्य

यमुनाकी उत्पत्ति सूर्यसे है। 'कालिन्दी सूर्यतनया' (अमरकोश)। चन्द्रमा जलदेवत्य ग्रह है। 'वह्नय-म्बुशिखिकाः....." (बृहत्पाराशर होरा, खं० १ अ० १ श्लो० ८) जलकी उत्पत्ति (अग्नेरापः) इस श्रुतिके अनुसार अग्निसे है। अग्नि सूर्यका अंशरूप है। यम-द्वितीयाके दिन चन्द्रमाके सूर्यके समीपमें होनेके कारण उसमें सूर्यका प्रभाव विशेषरूपसे पड़ता है। इसलिए उस समय उसमें सर्वव्यापिनी यमुनादेवीकी शक्तियां विशेष रूपसे प्रकट होती हैं।

इस दिन यह तुला या वृश्चिकमें होता है। यदि तुलामें होता है तो सप्तमदृष्टिसे यम नक्षत्रमें भरणीसे युक्त राशिमें, यदि वृश्चिकमें होता है तो इस यम नक्षत्रयुक्तराशिके पतिकी राशिमें योगसे इसका प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार चन्द्ररूप यमुनाका मेषराशि रूप और वृश्चिकराशिरूप यमसे सम्बन्ध इस दिन सिद्ध होता है। चन्द्ररूप यमुनाका किरणरूप अमृत मेषरूप या वृश्चिकरूप यमदेवसे इस–यमद्वितीया–दिनमें स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार प्रतिवर्ष इस तिथिमें यम-यमुनाका सम्बन्ध आकाशमें होता है। जिस समय यह योग बलिष्ठ हुआ होगा, उस समय प्रत्यक्ष रूपसे यमलोकमें इस कार्यका आरम्भ हुआ होगा।

मृत्युके अधिष्ठाता विश्वनियन्ता यमदेवकी इस उत्सवतिथिमें मर्यादा पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस लेखका साररूप स्वनिर्मित श्लोकः—

दिनेशसूनुर्जगतो नियामक-
श्चकार यस्यां हि तिथौ महोत्सवम्।
स्वया भगिन्या सह तत्र युज्यते
जनस्य सर्वस्य तथा विधोत्सवः॥

बली काल

"समय एव करोति बलाबलम्"

दैवज्ञकी दृष्टिमें संसार-चक्र

[लेखक—श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय']

'समय' शब्दके संस्कृत-साहित्यमें तत्तत् परिस्थितिके अनुसार प्रकरणवश कई प्रकारके अर्थ हुआ करते हैं, इस बातको विद्वद्वर्ग प्रायः सभी जानता है। यहाँ 'समय' शब्दका अर्थ 'काल' है। प्रत्येक पुरुष अपनी वस्तुको दूसरेके अधिकारमें देना रुचिकर तथा हितकर नहीं समझता, किन्तु ऐसा होने पर भी परिस्थितिवश अपनी वस्तुको दूसरेके अधिकारमें देना पड़ता है। इसका कारण है काल। काल महान् बली है, इसकी अनुकूलता उन उन पदार्थोंको बली बना देती है, तथा इसकी प्रतिकूलता उन प्रत्येक पदार्थोंको निर्बल बना देती है। वस्तुका निर्बल होना अथवा प्रबल होना यह उस बली कालका ही पूर्ण स्वायत्त अधिकारका खेल है, कारण प्रत्येक पदार्थकी सृष्टि स्थिति तथा लय काल ही किया करता है। बड़े बड़े दार्शनिकोंने "भावानामवभासकः शक्तिविशेषः कालः" इस प्रकार कालका निर्वचन किया है। यह अपनी इच्छानुसार अपनी क्रीड़ाके लिए प्रत्येक पदार्थको प्रबल दुर्बल बनाता रहता है। इसमें ननुनच करनेका किसी जन्तुको अधिकार नहीं। मनुष्य प्राणी मनुष्य लोकमें प्रधान बना, किन्तु उसे प्रधान बननेका सौभाग्य कालने ही प्रदान किया था, इसीलिए उस प्रधान पदको समय समय पर वह छीन भी लेता है। विज्ञ पुरुष इस बातको भली भांति जानते हैं, वे दूसरेकी दी हुई किसी भी शक्ति पर अभिमानसे वृथा इतराया नहीं करते। कालकी अनुकूलतासे बल प्राप्त होनेपर साधु पुरुष वस्तुमात्रके कल्याणके लिए तथा उनकी सुव्यवस्थाके लिए प्रयत्न किया करते हैं, किन्तु असाधु इसके विपरीत वृथा अभिमानसे ग्रस्त हो कर पदार्थमात्रके लिए अकल्याणकारक तथा वस्तुमात्रके अव्यवस्थाकारक कर्म कर बैठते हैं। वे अपने आपको सबसे बढ़कर समझा करते हैं, किन्तु भगवान् वासुदेवके मतमें ऐसे पुरुष अज्ञानसे मूढ़ ही कहे गये हैं। देखिये भगवान् क्या कहते हैं—

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥

[मैं सम्पन्न हूँ, मैं कुलीन हूँ, मेरे समान और कौन हो सकता है, मैं बड़े बड़े यज्ञ करता हूँ, मैं ही लोगोंको नाना प्रकारके पदार्थोंका दान करता हूँ, मैं ही आनन्द कर सकता हूँ, अज्ञानसे मूढ़ पुरुष इस प्रकारकी निरर्गल तथा अभिमानयुक्त बातें किया करते हैं।]

यह बात सर्वथा सत्य है कि अपनी वस्तुकी प्राप्ति दुर्बलको नहीं हुआ करती, प्राचीन सनातन महर्षियोंका यह एक अटल सिद्धान्त है। उपनिषदोंमें लिखा है कि "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" [यह आत्मा बलहीनको प्राप्त नहीं होता] किन्तु बड़े बड़े हाँ हाँ करने वाले कालके फेरसे निर्बल क्या विनष्ट भी हो जाते हैं और ऐसे विनष्ट कि मानो उनका अस्तित्व कभी था ही नहीं। भारतीय इतिहासको ही लीजिए, कालकी कड़ी पीठ पर इसी भारतने कितने ही अच्छे अच्छे सुन्दर चित्र लिखे थे, किन्तु आज उन चित्रोंमेंसे बहुतोंका लेशमात्र भी नहीं

रहा। किसी समय समस्त भूमण्डलमें शिरोमणिरूपसे विराजमान भारत आज कितना दुर्गत दीन दरिद्र हुआ जा रहा है। जहाँ घृतकुल्या मधुकुल्या बहा करती थीं वहाँ कण-कणके लिए भारतवासियोंका तरस तरस कर प्राण छोड़ देना क्या कालकी महिमा को अभिव्यक्त नहीं करता ? ऐसा होने पर भी काल की कृपासे जिन पुरुषोंको थोड़ा बहुत बल अधिकार प्राप्त हुआ है वे इस प्रकार अभिमानसे इतराना छोड़ कर लोक कल्याणके लिए कुछ प्रयत्न करें तो वे काल की दृष्टिमें अपराधी न हो कर पुरस्कारके पात्र भी हो सकते हैं। किन्तु उन्हें इसकी चिन्ता नहीं है, वे उस मिलने वाले पुरस्कारको ठुकराते हुए इस बात को सिद्ध करनेका मानो प्रयत्न कर रहे हैं कि असाधु पुरुष यदि न हों तो संसारका विनाश तथा संसारका अकल्याण किस प्रकार होगा ? बली कालकी महिमा अपार है। प्रत्येक राष्ट्रका कर्णधार इसी बात की डौंडी पिटानेमें मत्त है कि मैं ही सम्पूर्ण संसार की रक्षा कर सकता हूँ। संसारकी रक्षाके लिए ही निश्शस्त्र तथा निर्बल बनाना मुझे अभीष्ट हो रहा है। युद्धका विरोध करना मानो अपने आपको नरक लोक ही भेजना है, ऐसा समझाया जाता है, किन्तु क्या उन उन राष्ट्रोंके वास्तविक अधिकारोंकी सुरक्षा तथा सुव्यवस्थाके बिना युद्ध रुद्ध हो सकता है ? नहीं कदापि नहीं, बली काल ऐसा नहीं कर सकता। वर्तमान महायुद्धके विगत ४ वर्षोंमें बली कालने कौन कौनसे खेल नहीं खेले हैं ? जो जो खेले जाचुके हैं वे जनताके समक्ष आचुके हैं। अब आगे खेले जाने वाले खेल कौन कौनसे होंगे तथा किस प्रकार के होंगे ? इस विषय में निश्चित रूपसे कौन क्या कह सकता है ? तथापि आज दो वर्षोंसे 'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी पाठक भली-भांति जान चुके हैं कि 'श्रीस्वाध्याय' की भविष्यवाणियाँ कितनी सत्य सिद्ध हुई हैं। विज्ञ पाठकोंका ही कहना है कि "श्रीस्वाध्याय की भविष्यवाणियाँ ६५ प्रतिशत ठीक उतरी हैं"। वर्तमान परवश परिस्थितिको दृष्टिमें रखते हुए जो कुछ जितना लिख सकते हैं, उतना हम निर्भयता-पूर्वक स्पष्ट शब्दोंमें लिखते आए हैं और भविष्यमें भी लिखते रहेंगे।

श्रीस्वाध्यायके गताङ्कमें हमने ६ महा भीषण अशुभ योगोंका उल्लेख करके उनका सप्रमाण विस्तृत फल लिखा था, वह अब प्रत्यक्ष घटित हो रहा है। 'ग्रीष्माङ्क' में लिखा था कि "नववर्षाङ्क पाठकोंके हाथोंमें पहुँचनेसे पूर्व ही नभोमण्डलमें कई अशुभ योग घटित हो जाएँगे जिनका अनिष्ट परिणाम जन धन विनाशके रूपमें भूमण्डल पर होना आरम्भ होगा"। आषाढ शु० ११ से श्रावण कृष्ण ३० पर्यन्त ४ अशुभ योगोंका उल्लेख करके लिखा था कि—"यह महामारी, राजयुद्ध, देशविप्लव, दुर्भिक्ष, जननाश, अतिवृष्टि आदि उपद्रवोंसे नाना प्रकारका दुःख सूचक है।" तदनुसार श्रावण कृ० १४ ता० ३० जुलाईको राजस्थानके सैकड़ों वर्गमील विस्तृत भूप्रदेशमें विनाशकारी जलप्रलय (बाढ़) ने लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति और असंख्य प्राणियोंके प्राण नष्टकर एवं सहस्रोंको दीन हीन भिखारी बनाकर जो लोमहर्षण उत्पात मचाया वह पाठकोंको विदित ही है। इसी प्रकार पूर्वीय भारत बंगालमें कुछ तो भयानक बाढ़ने और उससे भी अधिक अन्नाभाव (दुर्भिक्ष) ने साक्षात् प्रलयङ्कर शङ्कर (रुद्र) का रूप धारण करके जनसंहार आरम्भ कर दिया है और यह दुर्भिक्षकी व्याधि अभी बढ़ती ही जा रही है; इससे सारा भारत सशङ्क सतर्क हो उठा है। इधर भारत की यह भयावह स्थिति है और उधर यूरोपमें जो युद्धकी भयङ्कर स्थिति बनती जा रही है वह भी संसार के लिए कल्याणकर नहीं है। इन्हीं गत दो मासोंमें इटलीमें जो नाटकीय घटनाएँ घटी हैं अथवा जो अवाञ्छनीय आशातीत राजनैतिक उलटफेर हुए हैं उसकी पहले किसे कल्पना थी ? आजसे ठीक ३ मास पूर्व 'श्रीस्वाध्याय' के ग्रीष्माङ्कमें इसी स्तम्भमें हमने ६वें अशुभ योगका उल्लेख करके स्पष्ट लिखा था कि—

"यह योग रोमपत्तन इटलीका अग्निकाण्ड युद्ध विग्रहादि द्वारा पतनका द्योतक है।" उस समय

हमारे कई मित्रोंको भी इस वाक्य पर विश्वास नहीं हुआ था, परन्तु इटलीकी वर्तमान दुर्दशाने आज उस योगको अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दिया है। इसी प्रकार सन् १९४० में मुसोलिनीके पतनकी भविष्य-वाणी हमने सन् १९४० के मार्चमें समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित करवाई थी। उसीके सत्य सिद्ध होने पर विश्वबन्धुके सुयोग्य सम्पादकजीने अभी ता० १६ अगस्तके अङ्कमें सम्पादकीय टिप्पणीमें लिखा है कि—"मुसोलिनीका पतन सन् १९४३ के जुलाईमें हुआ है परन्तु भारतके विख्यात ज्योतिषी और त्रैमासिक 'स्वाध्याय' के यशस्वी सम्पादक पं० हरदेव-शर्मा त्रिवेदीने मार्च १९४० में ही मुसोलिनीके पतनकी भविष्यवाणी कर दी थी और समय भी बता दिया था……"

विज्ञ पाठकोंकों विदित ही है कि भारतके कई लब्ध प्रतिष्ठ ज्योतिर्विदोंने सं० २००० सन् १९४३ में युद्ध समाप्ति और कइयोंने तो श्रावण या अगस्त माससे ही सुख शान्तिका साम्राज्य स्थापित होना और कराची आदिके कुछ ज्योतिषियोंने २३ अगस्त-को गान्धीजीके बन्धन-मुक्त होनेकी निश्चित घोषणा भी कर दी थी, किन्तु आरम्भसे ही हमारा मत ऐसी भविष्यवाणियोंके सर्वथा विरुद्ध रहा है, यह 'श्रीस्वा-ध्याय' के पाठकोंको विदित ही है। 'श्रीस्वाध्याय' के हेमन्ताङ्क पौष सं० १९९९ के अङ्कमें हमने "युद्ध शीघ्र समाप्त नहीं होगा" शीर्षकसे एक विस्तृत भविष्यवाणी प्रकाशित की थी वह पाठकोंको अवश्य देखनी चाहिए। उस अङ्कका मूल्य अब १) रु० है।

इन तीन मासोंमें क्या होगा?

आश्विन शु० १० से पौष शु० १० तकके ये ३ मास भी संसारके लिए महान् अनिष्टकर सिद्ध होंगे। मिथुनके शनि और बृहस्पतिके वक्रातिचार द्वारा राशित्रयके स्पर्शका जो सप्रमाण विस्तृत अनिष्ट फल गताङ्कमें लिखा जा चुका है वह तो न्यूनाधिक रूपमें १४ मास पर्यन्त होता ही रहेगा, किन्तु उन अशुभ योगोंमें ही कार्तिक मार्गशीर्ष पौषमें चार-पांच भयङ्कर अशुभयोग और बन रहे हैं; अतः इन मासोंमें संसारमें युद्ध-विग्रह अराजकता आर्थिक संकट दुर्भिक्ष महामारी देशविप्लव पर-चक्रभय अग्निप्रलय आदि आधिदैविक आधिभौतिक उपद्रवोंसे भीषण विनाश होगा।

(१) पहला अशुभयोग दीपमालाको बन रहा है। चतुर्दशी शुक्रवारको सायंकाल दीपोत्सव लक्ष्मी-पूजनके समय स्वाति नक्षत्र नहीं है और दूसरे दिनप्रातःकाल गोक्रीड़ा गोवर्द्धनपूजनके समय विशाखा नक्षत्र नहीं है, यह किसी सम्राट्की मृत्यु या पतन और दुर्भिक्षका द्योतक है, इसका फल यों लिखा है—

स्वातिमें दीवा ना बले विशाखा न खेले गाय
तो धरतीका पति मरे (वा) समया निष्फल जाय ॥

(२) दूसरा अशुभयोग कार्तिक शुक्ल ५ मंगल-वारमें मूल नक्षत्र सम्पर्कका है। यह योग भयानक दुर्भिक्षका द्योतक है। यथा—

दीवा बीती पंचमी जो मूल नक्षत्र होय।
खप्पर हाथां जग भ्रमे भीख न घाले कोय ॥

का० शु० ५ को क्रूरवारका होना भी अनिष्ट सूचक है।

(३) तीसरा अशुभयोग कार्तिक शुक्ल पक्षमें १३ दिनके पखवाड़ेका है। यह त्रयोदश दिनका पक्ष युद्धमें भयङ्कर स्थिति उत्पन्न करके महाविनाशका द्योतक है। लिखा भी है।

"त्रयोदश दिने पक्षे तदा संहरते जगत्"

गत सं० १९९७ में ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष १३ दिनका था, उसी समय फ्रांसका पतन हुआ था। अतः इस समय भी किसी असम्भाव्य अप्रिय अनिष्टकर घटना घटित होनेकी सम्भावना है।

(४) चौथा अशुभयोग कार्तिक शुक्ल १५ को भरणी नक्षत्रके कारण बना है, यह अवर्षण दुर्भिक्ष महामारी हृद्रोग शोक चिन्ता और संसारमें विग्रह-कारक है—

अथवा भरणी तद्वत् पूर्णास्यात्पूर्णिमा दिने।
कुत्रचिच्च भवेद्वृष्टिः कुत्रचित्स्यादवर्षणम् ॥
दण्डखडेन हृद्रोगो वियोग गदपीड़नम्।
भ्रामतीति तदा भ्रान्तो विग्रहेण हतं जगत् ॥

(५) पांचवाँ अशुभयोग मार्गशीर्ष मासमें पाँच शनिवार और सूर्यमंगलका प्रतियोग है। इसी मासमें मंगल शनि ये दोनों क्रूर ग्रह वक्री चल रहे हैं, यह संसारमें भयानक विनाश करेंगे। युद्ध-अग्निभय दुर्भिक्ष रोगादि उपद्रवोंसे अनेक दुर्घटनाओंका सामना करना पड़ेगा। शनि मंगलके कारण अनार्य कूटनीतिकी अनेक घातक चालें चली जावेंगी। अधिकारियों और राष्ट्रिय नेताओंमें मतभेद उपस्थित होगा।

(६) छठा अशुभयोग पौष मासमें मंगल बुध गुरु शनि और हर्शल ये पांच ग्रह वक्री हो रहे हैं, ये अनावृष्टि, जन धन नाश, रोग, शीत ओले आदिसे खेतियोंका नाश और भांति-भांतिके उत्पात-के सूचक हैं—

भौमवक्रे अनावृष्टिर्बुधवक्रे धनक्षयः।
गुरुवक्रे स्थिरारोगाः शनिवक्रे जनक्षयः ॥

सारांश—

उक्त अशुभयोगोंका सारांश यह है कि कार्तिक माससे संसारमें युद्ध दुर्भिक्षादि उत्पात जनित भयङ्कर अश्रुतपूर्व आश्चर्यकारक घटनाओंका उपक्रम आरम्भ होगा। महायुद्ध भीषण रूप धारण करेगा और कोई विचित्र परिस्थिति उत्पन्न होगी। मित्र शत्रु और शत्रु मित्रके रूपमें परिवर्तित होनेकी सम्भावना है। यूरोप और भारतके सुदूरपूर्वमें भयानक आक्रमण होंगे और व्यापारमें भयङ्कर उथल-पुथल होगी। अन्न वस्त्र रुई आदि प्रत्येक पदार्थका भाव अत्यधिक महंगा होगा। कण्ट्रोल और राशनिंग पद्धतिके कारण जनता तथा अधिकारियोंकी असुविधाएँ अधिक बढ़ेंगी। कई प्रान्तोंमें अधिकारी स्वयं कण्ट्रोलकी असफलताका अनुभव करके इस बन्धनको ढीला करेंगे और कई प्रान्तोंमें दृढ़ होगा। भारतीय राजनीतिमें नई नई विचित्र समस्याएँ सामने आएँगी। सामाजिक धार्मिक झगड़े भी बहुत होंगे। परस्परमें राजनैतिक और सामाजिक सुधारोंकी चर्चा चलेगी परन्तु इनका परिणाम सफलतामें परिणत न होगा। प्रभावशाली विदेशी शासकों द्वारा राजनैतिक गत्यवरोध दूर करनेका प्रयास किया जायगा, परन्तु पूर्णरूपेण सन्तोषजनक सफलता प्राप्त न होगी।

महात्मा श्री गांधीजीको गुरुमहादशा चल रही है। इसमें अभी ११ मास ६ दिनके लिए मंगलका अन्तर आरम्भ हो रहा है, यह मंगल द्वितीयद्यूननाथ हो कर धन (मारक) स्थानमें दशेश (गुरु) से अष्टम पड़ा है; अतः इस अन्तरमें श्री गांधीजीको शारीरिक मानसिक कौटुम्बिक और राजनैतिक चिन्ताएं अधिक व्याप्त होंगी। रक्ताभिसरण (खूनके दबाव) की व्याधि भी हो सकती है, अतः परिश्रमसे सावधान रहना चाहिए। कार्तिकके अनन्तर श्री गांधीजीको किसी नई राजनैतिक परिस्थितिके लिए बाध्य होना पड़ेगा। तत्कालीन परिस्थितिके अनुसार अधिकारियोंसे विचारविमर्श करनेके लिए वे स्थानान्तरित वा स्वतन्त्र भी हो सकते हैं।

शनि मंगल स्वभावतः क्रूर हैं और वक्र होने पर इनका क्रूरत्व और भी बढ़ जाता है। आश्विन शुक्ल १३ को शनि वक्री हो रहा है और आगे आर्तिक कृ० ३० को मंगल भी वक्री हो जावेगा। तबसे बड़े बड़े राष्ट्रोंमें रक्तपात, मारधाड़, पारस्परिक कलह, असन्तोष, सामूहिक गत्यवरोध (हड़ताल या असहयोग) रोगवृद्धि और राजवर्ग वा बड़े अधिकारीवर्ग अथवा किसी महापुरुषकी मृत्युकी भी सम्भावना है।

वायुप्रकोप, शीताधिक्य, हिमपात तथा कभी कहीं भूकम्प भी होंगे। अरब, आस्ट्रेलिया, इटली, इंगलेण्ड, जर्मनी, हंगरी, स्पेन, संयुक्तराज्य अमेरिका,

बेल्जियम, इजिप्ट, वेल्स, आरमेनिया आदि देशोंमें तथा हमारे भारतमें ब्रह्मदेश, बंगाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, मद्रास, बम्बई और कृष्णासे लङ्का तथा कृष्णासे गोदावरीके बीचके प्रदेशोंमें इनका अनिष्ट परिणाम अधिक होगा। यद्यपि भारतके सुदूरपूर्व तथा पश्चिमके सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों और राष्ट्रकर्णधारों के लिए यह समय अनिष्टकारक ही है, तथापि पूर्वकी अपेक्षया पश्चिमी राष्ट्रोंमें अनिष्टकर घटनाएँ अधिक घटित होनेके कुयोग बन रहे हैं। भारतके लिए अभी इतना अनिष्ट नहीं है जितना कि यूरोपादि अन्य देशोंके लिए। हां, इस समय बंगालमें दुर्भिक्ष के कारण जो क्षुधामृत्युकी ज्वाला धधक रही है उसकी लपटें उत्तरोत्तर धीरे धीरे सांसर्गिक रोगकी भांति समस्त भारतमें प्रथित होती प्रतीत होती हैं। "बुभुक्षितः किन्न करोति पापं क्षीणानराः निष्करुणा भवन्ति" के अनुसार दुःखी तृस्त जनता विवेकहीन हो कर अकार्य करनेको उद्यत होगी। जिससे यत्रतत्र क्रांति पारस्परिक संघर्ष लूट खसोट चोरी डाके आदिकी घटनाएँ अधिक होंगी। संक्रामकरोग सन्निपात (निमोनिया) ग्रान्थिक सन्निपात (प्लेग) की व्याधियाँ और आततायी गुण्डोंके उत्पात अधिक होंगे। शारीरिक सम्पत्तिशाली लोगों पर आपत्तियां आएँगी। भारतमें एक नवीन विचारधाराका आविर्भाव होगा; उसका समस्त देश पर प्रभाव पड़ेगा।

पौष शु० ६ शनिवारको प्रारम्भ होने वाला ईस्वी सन् १६४४ किनकिन विशेषताओंको लेकर आ रहा है? और इसमें क्या क्या इष्टानिष्ट परिणाम घटित होंगे? यह जाननेके लिए 'श्रीस्वाध्याय' के आगामी अङ्क (हेमन्ताङ्क) की प्रतीक्षा कीजिए।

वाणिज्य-व्यवसाय

कार्तिक मासमें—

तुला संक्रान्ति कार्तिक कृष्ण ४ रविवारको मिथुन लग्नमें प्रवेश हुई है। मंगल राहुकी कर्तरीमें लग्नस्थ शनि संसारके लिए अनिष्टसूचक है। गेहूँ चावल तिल उड़द मूंग कम्बल वस्त्र चन्दन केसर रुई कपास मजीठ लाख चपड़ा अलसी सरसों घृत तैल अरण्डी सुपारी राई विशेष तेज। कृष्णपक्ष (बदी) की अपेक्षया शुक्लपक्ष (सुदी) में तेजी अधिक होगी। पाट किरानामें घटाबढ़ी। सुवर्ण चान्दी सुदीमें तेज। अलसी बदीमें कुछ मंदी, सुदी ५ से तेज। गेहूं और सुवर्ण भी बदीमें कुछ मन्दा रह कर सुदीमें तेज होगा।

मार्गशीर्ष मासमें—

वृश्चिक संक्रान्ति मार्ग० कृ० ४ मंगलवारको मिथुन लग्नमें लगी है। लग्न पर मंगल राहुकी कर्तरीमें चन्द्र शनिका योग और लग्नेशका छठे होना किसी भयानक अनिष्ट और महान् आपत्तिका सूचक है। रुई चांदी अलसी पाट गेहूं और सुवर्णमें विशेष तेजी। लाल रंगकी प्रत्येक वस्तु गेहूँ गुड़ शकर तांबा चणा मिर्च ईख और घृत चावल उड़द कम्बल रेशमी वस्त्र किराना तेज। कृषिमें हानि, शीत अधिक। शुक्लपक्षमें मिर्च वस्त्र अलसी सुवर्ण चान्दी बिनौला सूत घृत अस्थाई रूपमें एक बार कुछ मन्दा होगा। लाख चपड़ा सरसों अलसी तेज।

पौष मासमें—

पौष कृष्ण ५ गुरुवारको धनुर्लग्नमें धनुः संक्रान्ति प्रवेश होगी। रुई चान्दी पाट अलसी सुवर्ण और तुषधान्य गेहूं चावल जौमें विशेष तेजी। ताम्बा चन्दन मोती तिल तैल कपास सूत वस्त्र तेज। इस मासकी ग्रहपरिस्थिति बड़ी विषम है, अतः व्यापार सावधानीसे करें। अचानक कई वस्तुओंमें तेजीमें मंदी और मंदीमें तेजी आना सम्भव है। अन्तमें बाजारका रुख तेजीकी ओर रहेगा। विशेष विवरण अर्थस्तम्भमें 'व्यापारिक तेजीमंदी और ज्योतिष' 'व्यापार विमर्श' आदि लेखोंमें देखिये।

शंख-ध्वनि

[लेखक—श्री 'शङ्खपूजक']

भारतवर्षका हिन्दू-समाज सहस्रों वर्षोंसे कार्त्तिकी अमावस्याके दिन श्रीमहालक्ष्मीका पूजन करके दीपावलीका उत्सव मनाता है, परन्तु फिर भी देशका दारिद्र्य घटनेकी अपेक्षा दिन प्रतिदिन भारतीयोंके लिए भोजनकी समस्या और भी विकट होती जा रही है। सूक्ष्मतत्त्वान्वेषी लोग इस दारिद्र्य-वृद्धिका कारण चाहे जो समझते रहें परन्तु अपने रामकी मोटी बुद्धिके अनुसार तो इसका वास्तविक और प्रबल कारण प्रतिवर्ष लक्ष्मीपूजामें होने वाली एक भयङ्कर भूल ही हो सकती है; जिसकी ओर आज तक किसीने भी ध्यान नहीं दिया है। केवल इस वर्ष लक्ष्मीपूजाके अवसर पर उस भूलसे सावधान करके सच्चे लक्ष्मीपात्र बननेका प्रयोग बतानेके लिए ही अपने रामने आज यह लेखनी उठाई है; आशा है सब लोग सावधान होकर सुनेंगे।

यह एक मानी हुई बात है कि बहिनका भाईके साथ जो सच्चा प्रेम होता है, वह दूसरे किसीके साथ नहीं हो सकता। इसी प्रकार बहिन भाईके यहाँ जिस प्रसन्नताके साथ आ जा सकती या उसके घर रहकर अल्प-स्वल्प सेवासे सन्तुष्ट हो जाती और सदैव उसकी मङ्गलकामना किया करती है, उतनी वह सुसरालवालोंके प्रति उदार नहीं हो सकती। उसमें भी फिर स्त्री-भक्त भावुक जनोंकी तो बात ही न पूछिए। उन बेचारोंसे तो वह बलपूर्वक भी अपने भाईका सम्मान करवाती रहती है। लोग इस स्त्रैणता पर भले ही नाक भौंह सिकोड़ें परन्तु अपने राम तो इसका पूर्ण अनुभव करके शिक्षा ले चुके हैं। आपके आत्माराम भी यदि थोड़ासा साहस कर सकें तो उनके लिए यह बहुमूल्य प्रयोग बड़ा लाभकारी हो सकता है। भय खाने-जैसी कोई बात नहीं है, और न कोई सर्वथा नवीन आदर्श ही आपके सामने रक्खा जाता है, जिसमें कि आगे बढ़ने पर आपको नक्कू बनना पड़े। क्योंकि किसी नये सुधारको अपने घरसे आरम्भ करते ही लोग प्रायः झिझकने लगते हैं, किन्तु उनकी उत्साह-वृद्धिके लिए किसी साधारण राजा महाराजा वा अन्य महापुरुषका उदाहरण न रखकर स्वयं अखिल ब्रह्माण्डके सञ्चालक लोकपति श्रीमन्नारायण भगवानकी ही स्त्री-भक्तिका आदर्श उपस्थित किया जाता है। भला आप ही विचारिये कि इससे अधिक स्त्रैणताका आदर्श क्या होगा कि सर्वशक्तिमान् परमात्माको अपने नामके पहले (भयसे वा भक्तिके कारण कुछ भी समझ लीजिए) अर्धाङ्गिनी श्रीलक्ष्मीजीके नामाक्षर जोड़कर ही पूर्णता प्राप्त करनी पड़ी है। "भय बिनु होत न प्रीति" के अनुसार बहुत सम्भव है कि नारी जातिकी शक्तिसे भयभीत हो कर ही श्रीमन्नारायण भगवान्‌को श्रीलक्ष्मीनारायण नाम धारण करना पड़ा है; और कदाचित् इसी भयसे कि कहीं देवीजी असन्तुष्ट न हो जाएँ, उन्होंने अपने सालभद्र श्रीशङ्खदेवको चतुरायुधोंमें प्रधान मान कर दिनरात हाथमें धारण कर रक्खा है। यही क्यों है, जब कभी उन्हें कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करना होता है या संसार को किसी प्रकारकी महान् घोषणा सुनानी होती है तब वे इन्हीं महानुभावका मुंहसे स्पर्श करते हैं, जिसे स्पर्श करनेका अधिकार एकमात्र लक्ष्मीजीके अतिरिक्त और किसीको भी नहीं हो सकता। अर्थात् स्वयं भगवान्‌ने जिस व्यक्तिको यहाँ तक मुंह लगा रक्खा है कि प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य उसकी सहायतासे, किम्बहुना उसीकी वाणीमें शब्द उच्चारण करते हुए निपटाना पड़ता है, तब इससे बढ़ कर स्त्री-भक्ति

का प्रमाण और क्या मिल सकता है? एक उदाहरण और भी लीजिए — जब समुद्रमन्थन हो चुका और उसमेंसे निकले हुए चौदह रत्नोंका विभाजन होने लगा, तब भी भगवान्ने अपनी स्त्री-भक्तिका परिचय दिया है। सबसे प्रथम उन्होंने सागर-सुता श्रीलक्ष्मी जीको अपनी भार्याके रूपमें ग्रहण किया, इसके अनन्तर कौस्तुभ-मणिको कण्ठमें स्थान दिया और तब जाकर शेष वस्तुएँ दूसरोंको लेनेकी सम्मति दी। किन्तु शङ्ख जैसी वस्तुका महत्त्व कौन जान सकता था? क्योंकि सभी उसकी उपयोगितासे अपरिचित थे। अतः हाथी, घोड़ा, चन्द्रमा प्रभृति वस्तुएँ तो अन्य देवताओंने अपनी अपनी इच्छानुसार ले लीं, किन्तु शङ्खको जब किसीने भी हाथ नहीं लगाया तब बेचारी लक्ष्मीजीसे भाईका यह अपमान सहन न हो सका और उन्होंने श्रीमन्नारायणको इस बातके लिए विवश किया कि उनके भाई अर्थात् अपने सालेको आश्रय दें। भला भगवान्‌की क्या शक्ति थी कि वे इसे अस्वीकार कर देते। तत्काल उन्हें प्रधान आयुधके रूपमें उसे धारण करना पड़ा। सारांश, श्रीमन्नारायणने नारी-जातिकी महत्ताको स्वीकार कर उसके सन्तोषके लिए प्रतिक्षण उद्योग किया है, और यहां तक कि समुद्रसे निकले हुए रत्नोंमेंसे स्त्री-वाचक रत्नोंको तो उन्होंने ग्रहण किया ही; किन्तु इसीके साथ साथ सुधा (अमृत) वितरण करते समय भी उन्हें मोहिनी बन कर स्त्री-शक्तिसे सहायता लेनी पड़ी। इस प्रकार जहाँ देखिये वहीं स्त्रीत्वका प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है, और स्वयं भगवान् श्रीमन्नारायणने ही आगे बढ़कर अपने आदर्शका अनुकरण करनेके लिए लोगोंको सम्मति दी है। इतने पर भी लोग नारी-भक्तिसे घृणा करें तो अतिरिक्त उनके दुर्भाग्यके और क्या कहा जा सकता है? यदि मनुष्य अपनेको भगवान् मनुकी सन्तान कहलानेका अधिकार रखता हो तो भी उसे अपने आदि-पुरुषके इस वचन पर ध्यान दे कर नारी-जातिकी महत्ता स्वीकार करनी चाहिए, क्योंकि—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"

नारी-जातिके सन्तोषके लिए ही भगवान् विष्णुने वैकुण्ठ धामको छोड़ क्षीर-सागर (सुसराल) में जा कर निवास किया है। सारांश नारी-जातिको सन्तुष्ट करने द्वारा ही मनुष्यको सब कुछ प्राप्त हो सकता है। इसके लिए सबसे सरल उपाय है अपने सालभद्रका आदर करके उसे प्रसन्न रखना, जैसा कि स्वयं भगवान् करते आये हैं।

पाठकगण! क्षमा कीजिये, मुझे क्या कहना था और मैं क्या कह गया। भारतवासियोंको लक्ष्मीपूजनमें होनेवाली भूलका ज्ञान कराना छोड़कर स्त्री-भक्तिका आदर्श सिद्ध करनेके फेरमें पड़ गया। किन्तु यह भी मैंने अपने विषयकी पुष्टिके लिए ही किया है। क्योंकि भारतवासी लक्ष्मीपूजा तो प्रतिवर्ष करते हैं किन्तु उस महाशक्तिके सन्तोषके लिए शङ्ख-देवताको कहीं फटकने तक नहीं देते। ऐसी दशामें यह कैसे सम्भव है कि शङ्खविहीन पूजासे लक्ष्मीजी सन्तुष्ट हो सकें। इसलिए अब इस सिद्धान्तके प्रचारकी परमावश्यकता है कि लोग लक्ष्मीपूजाके ही साथ साथ शङ्खकी भी आराधना करें, जिससे कि भगवान् लक्ष्मीनारायण सन्तुष्ट हो कर धन-जनकी वृद्धि करते रहें।

शङ्खकी पूजाका प्रस्ताव सुनकर लोग भले ही हँसते रहें, किन्तु उपर्युक्त कारणोंके अतिरिक्त भी शङ्खकी महत्ता बहुत बढ़ी हुई है। श्रीरामानुज संप्रदायमें तप्तमुद्राके रूपमें शङ्ख-चक्र धारण करने पर ही वैष्णवको मुक्तिका अधिकार बतलाया है। भगवान् विष्णुके अतिरिक्त शिव, गणेश, दुर्गा आदि देवताओंके हाथमें भी शङ्ख विद्यमान रहता है, और वह मिलिटरीको सावधान करनेवाले बिगुलकी भांति इन सब देवताओंकी शक्तिको एकत्रित करनेमें सहायता देता है। पुराणोंमें शङ्खासुरकी कथा प्रसिद्ध ही है; इसी कारण भगवान्‌के कर-कमलोंमें शङ्ख विराजमान होने पर भी देवपूजाके समय शङ्खकी अनिवार्य आवश्यकता रहा करती है।

स्नानके समय देवप्रतिमा पर चढ़ाया जाने वाला जल भी शङ्खमें डाल कर ही काममें लानेसे पवित्र माना जाता है। इस प्रकार शङ्ख-पूजाका माहात्म्य शास्त्रसिद्ध विषय है। यहाँ तक कि एक ऋषिने तो स्वयं शङ्ख नाम धारण कर शङ्खस्मृति भी लिख डाली है।

अन्य युगोंकी बात छोड़ भी दें तो भी महाभारत की शङ्ख-घोषणा तो सर्वथा समीचीन एवं इतिहास प्रसिद्ध वार्ता है। कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमि पर जब दोनों दलकी सेनाएँ अपने बड़े-बड़े महारथियोंके अधिनायकत्वमें आकर डट जाती हैं, ठीक उसी समय—

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः॥

अर्थात् श्वेत घोड़ोंके बहुत बड़े रथ पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन वहाँ आकर अपने अपने शङ्ख बजाते हैं। बस, फिर तो एकवार जैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रके पाञ्चजन्यकी शङ्खध्वनि लोगों के कान पर पड़ती है कि तत्काल अर्जुन देवदत्तको, भीम पौण्ड्रको, युधिष्ठिर अनन्त-विजयको, नकुल सुघोषको और सहदेव मणिपुष्पक नामके शङ्खको यथाक्रम फूंकना आरम्भ कर देते हैं। यहाँ तक कि काशीराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट् सात्यकि, द्रुपद और महाबाहु अभिमन्यु आदि सैकड़ों वीर मारे शङ्खध्वनिके पृथ्वी और आकाश तकको गुँजाते हुए कौरवोंके हृदय कम्पायमान कर देते हैं।

भला, जिस शङ्खका इतना प्रताप है उसकी अवहेलना करके कोई अपना कल्याण कैसे साध सकता है? किन्तु फिर भी क्या विद्वान् और क्या मूर्ख, सभी एक स्वरसे "शङ्ख" शब्दका प्रयोग बुरे अर्थमें करते हैं, अर्थात् एक प्रकारसे उन्होंने इसे गाली का ही रूप दे डाला है। किसी भी मूर्खकी भर्त्सना करते समय लोग उसे शङ्खके ही विशेषणसे सम्बोधन करते हैं। ऐसी दशामें कैसे संभव है कि अपने भाई का अपमान सहकर श्रीमहालक्ष्मीजी उन लोगों पर दया कर सकें। सारांश, वे इसी अदूरदर्शिताको देख कर रुष्ट हो रही हैं। इसलिए सब लोगोंको चाहिए कि श्री भगवती महालक्ष्मीके कृपापात्र बननेके लिए उनके अनुज श्रीशङ्खमहाराजकी उपासना आरम्भ कर दें, जिससे कि वे शीघ्र ही महाशङ्खपतिके रूपमें अतुल वैभवके अधिकारी हो सकें। क्योंकि गणितशास्त्रमें भी इकाई-दहाईसे आरम्भ करके गणनाका अन्त महाशङ्खके ही नाम पर किया गया है। इससे अधिक संख्या होने पर वह अगणित कहलाने लगती है। अर्थात् यहाँ भी सृष्टिकर्त्ताने शङ्खको सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्रदान किया है। भारतमें तो स्यात् ऐसे महाशङ्ख एक-आध ही होंगे किंतु पाताल (अमेरिका) लोक अवश्य ही ऐसे कई शङ्खपतियोंसे सुशोभित है, और यही कारण है कि आज संसारमें उसका आदर बहुत बढ़ा हुआ है। लोग पूछ सकते हैं कि अमेरिका वाले आजकल शङ्खकी सेवा कहाँ और किस रूपमें करते हैं? किन्तु उन्हें विचारना चाहिए कि यद्यपि वे प्रत्यक्षरूपमें महाभारतकी भांति दिव्य शङ्ख तो नहीं फूँकते हैं किन्तु फिर भी उन्होंने पर्यायरूपसे अपने यानका स्वर (मोटरका भोंपू) शङ्खध्वनिसे मिलता-जुलता ही बनाया है और दिनरात वे उसी के महाघोषसे जनताको भयभीत किया करते हैं। बहुत संभव है कि पिछले किसी जन्ममें उन्होंने प्रत्यक्ष शङ्खसेवा की हो और उसके फलस्वरूप वे इस जन्ममें महाशङ्खपति कहलाते हों, अस्तु। यद्यपि भारतवासियोंने भी मोटरके भोंपू द्वारा शङ्खकी सेवा आरम्भ कर दी है, किंतु इन्हें इसमें सफलता इस लिए नहीं मिल सकती कि यहाँ शङ्खपूजाका साहित्य प्रत्यक्ष वर्तमान है, जब कि पातालवालोंको केवल बैठकको शोभा और सजावटके लिए ही इनेगिने शङ्ख मिल पाते हैं। सारांश अपने ध्येय और धर्मका आदेश छोड़ कर परमुखापेक्षी बननेसे भारतवासियों ने पराधीनता तो मोल ले ही ली है; अब यदि वे शङ्खध्वनि भी उन पातालयन्त्रियोंके बतलाए हुए ढंग से करेंगे तो कहींके भी न रहेंगे। भारतमें जैनधर्म अत्यन्त शान्त एवं अहिंसाका प्रचारक माना जाता है, किन्तु शङ्खके उपयोग और उसकी पवित्रता

को ये लोग भी भलीभांति मानते हैं। इनके बाईसवें तीर्थ श्रीनेमिनाथजीका मुख्य चिह्न शङ्ख ही माना गया है। इसी प्रकार तिब्बतके बौद्धविहारोंमें भी शङ्खका सम्मान किया है।

धर्मकी बात छोड़ कर यदि हम समाजशास्त्रमें शङ्खका महत्त्व देखना चाहें तो हमें सृष्टि-रचनाका नियम सिखाने वाले मनसिज मदन रतिपति श्रीकामदेव रचित कामशास्त्रमें भी किसी न किसी रूपमें शङ्खका उल्लेख अवश्य मिलेगा। आधुनिक असली और नकली कोकशास्त्रोंकी बात छोड़ दीजिये जिनमें कि महा निकम्मी नारीका उल्लेख शङ्खिनीके नाम से किया गया है किन्तु अन्यान्यमें कई पुस्तकों यथा हस्तरेखा आदिमें शङ्खकी प्रशंसा और उसका माहात्म्य भी अवश्य लिखा मिलता है। इस प्रकार भगवान्‌का यह आयुध धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ सुलभ कर देनेवाला है। इनमेंसे धर्म और पर्यायरूपसे अर्थ एवं कामकी प्राप्तिके उपाय तो हम ऊपर बतला ही चुके हैं; अब व्यवसायकी दृष्टिसे इस पर विचार करना चाहिए।

वैसे तो भारतके तीनों किनारों पर समुद्रदेव अपने भक्तोंको शंखरत्न प्रदान करते ही रहते हैं; किन्तु दक्षिणावर्त शङ्ख उनमें इने गिने ही उपलब्ध होते हैं। जिसके पास यह शङ्ख हो उस पर श्रीमहालक्ष्मीजीकी पूर्ण कृपा ही समझनी चाहिए। पर ऐसे भाग्यशाली ढूंढ़ने पर ही मिल सकते हैं। अधिक संख्या सामान्य शङ्खपूजकोंकी ही है। गङ्गासागर (पूर्व) मेंसे शङ्ख सीपी आदि निकाल सकना जरा टेढ़ी खीर है; किन्तु फिर भी वहाँके निकले हुए शङ्ख कलकत्ता, ढाका प्रभृतिनगरोंमें बहुत अच्छे मूल्य पर बिकते हैं। दक्षिणमें रामेश्वर और मद्रासमें भी शंखकी बिक्री खूब होती है। रामेश्वरमें तो "शङ्ख निधिकार्यालय" ही इसका प्रचारकर्ता बना हुआ है। वहाँ पूजनीय शङ्ख तो मिलते ही हैं किन्तु इसके साथ साथ अँगूठी, कड़े, छल्ले, खिलौने, चूड़ियाँ आदि प्रकार प्रकारकी वस्तुएँ भी शङ्खके टुकड़ोंसे निर्माण की जाती है। द्वारकाके श्रीरणछोड़रायजीने तो शङ्खका माहात्म्य यहाँ तक बढ़ा दिया है कि कोई भी मनुष्य जबतक द्वारका जा कर वहाँकी छाप नहीं लगवा आता, तबतक उसको चारों धामकी यात्राका फल ही नहीं मिल सकता। अर्थात् द्वारकाकी छाप एक प्रकारसे भगवान्‌के खजानेकी सील (मुहर) है, जिसके द्वारा मनुष्यके जन्मभरकी सुकृतकमाई भक्तिभण्डारमें सञ्चित हो कर आजन्म विद्यमान रहनेवाला प्रमाणपत्र मिल जाता है। इस छापमें भी शङ्ख और चक्रका ही प्राधान्य है।

इसी प्रकार पुण्यभूमि भारतवर्षको शङ्खरत्न प्रदान करनेका भार जिन जिन प्रधान क्षेत्रों पर है उनमें द्वारका और रामेश्वर केवल पूजाके ही शङ्ख विशेष प्राप्त होते हैं। यद्यपि ढाका (बंगाल) इस कार्यमें सबसे आगे बढ़ा हुआ है। कोई समय था जब ढाका मलमल, मोतीके बटन और शङ्खकी बनी वस्तुओंके लिए विख्यात था, किन्तु अब तो वहाँ केवल शङ्खका ही प्राधान्य रह गया है। कारण भी स्पष्ट है कि जब मलमल जैसी मूल्यवान् वस्तु ही वहाँ नामशेष हो गयी, तब क्या कोई शोभाके लिए मोतीके बटन बनवाएगा ?

ढाकामें सरवारी नामकी एक श्रमजीवी जाति निवास करती है जिसका निर्वाह आज भी केवल शङ्ख-सीपीकी बनी हुई वस्तुओंके व्यवसाय द्वारा ही होता है। विशेषतः ये लोग शङ्खकी चूड़ियाँ, कड़े, अँगूठी आदि बनाते हैं। बच्चोंके खिलौने भी कुछ लोग शङ्खके ही निर्माण करते हैं। बङ्गमहिलाएँ शङ्खकी चूड़ियाँ और शङ्खके ही भुजबन्ध प्रधानरूपसे धारण कर इन्हें सौभाग्यका मुख्य चिह्न समझती हैं। यहां तक कि सोनेकी चूड़ियोंसे भी वे इन्हें बहुमूल्य समझती हैं। श्रीसम्पन्न महिलाएँ तो शङ्खकी कामदार चूड़ियाँ सोनेमें मढ़ाकर पहनती हैं, किन्तु सामान्य महिलाओंके लिए शङ्खकी चूड़ियाँ धारण करना सौभाग्य-चिह्नके रूपमें प्राचीन कालसे ही अनिवार्य हो चुका है। इसी प्रकार प्राचीनकालमें भी शङ्खकी चूड़ियां धारण करनेका उल्लेख मिलता है।

चूड़ियां बना सकने योग्य कच्चे शङ्ख अधिकतर बङ्गालकी खाड़ी और तूतीकोरिन तथा रामेश्वरके ही किनारे पर मिलते हैं। इस समय इन केन्द्रों पर मद्रास-सरकारका अङ्कुश और अधिकार है। "तित-कुती" नामकी सीप इनमें सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है और यह मद्राससे ही ढाका भेजी जाती है। ढाकेका श्रमजीवी संघ उन शङ्ख और सीपियोंको थोड़ा थोड़ा करके आपसमें बाँट लेता है, क्योंकि सङ्घ टेण्डर देकर सब माल एकसाथ खरीद लेता है। यह टेण्डर-पद्धति अब चली है। इसके पहले समुद्र व्यवसायी सब अपना माल ले कर कलकत्ता आते थे, और आपसमें एक मत रखकर उसे पर्याप्त लाभ पर बाजारमें बेच दिया करते थे, किन्तु सन् १६१० ई० में ढाकाके मेसर्स जे० बी० दत्तकी कम्पनीने थोक मालके खरीददारके रूपमें आगे बढ़नेका साहस दिखलाया। बस फिर क्या था? तत्काल ही मद्रास-सरकारने उक्त समुद्र-व्यवसाइयों (नखोदा-समाज) का गुट तोड़नेके लिए मेसर्स दत्तकी मांग स्वीकार कर ली। किन्तु कुछ दिनोंके अनन्तर यह अनुभव हुआ कि ऐसा करनेमें मद्रास सरकारसे भयङ्कर भूल हुई है। क्योंकि लोग दत्त कम्पनीकी स्वेच्छाचारिता और मुँह माँगे दाम पर माल बेचकर बहुत अधिक लाभ उठानेके विषयकी शिकायत लेकर सरकारके सम्मुख उपस्थित होने लगे और उन्होंने बङ्गाल सरकारसे निवेदन किया कि इस कलाके जानकारों द्वारा दत्त कम्पनी पर अङ्कुश बैठाया जाय। फल स्वरूप सरकारके सहकारी समिति-विभागने शङ्खकलाभिज्ञ लोगोंका एक मण्डल सङ्गठित कर मद्रास-सरकारको सूचित किया कि वह इस मण्डलकी माँग स्वीकार करे। किन्तु यह योजना भी थोड़े ही दिन चल सकी, क्योंकि इस मण्डलके लोग भी परस्पर विश्वासघात करके स्वार्थ-साधनमें प्रवृत्त हो गए। अन्ततः विवश होकर बङ्गाल सरकारको इसकी जाँच आरम्भ करनी पड़ी, और परिणाममें उसने शङ्ख-कलाभिज्ञ मण्डलकी उपेक्षा करके ढाकाके श्रमजीवि सङ्घको नियुक्त कर दिया। इस संस्थाने अनेक छोटी छोटी समितियाँ बनाकर यह सब कार्य नियमित रूपसे चलाया और इससे मजदूरों एवं कारीगरोंको भी लाभ पहुँचाया।

चूड़ियाँ बनानेके लिए शङ्ख या सीपी पर तीन प्रकारके संस्कार किए जाते हैं। (१) शङ्ख या सीपी के टुकड़े करना (२) उन्हें चूड़ीके आकारमें काटना (३) उन पर चित्रकारी करके पालिश कर देना।

सर्व प्रथम छोटी सी तेज आरी से शङ्ख काटा जाता है। और इसके लिए उसे लकड़ीके शिकञ्जेमें फँसा देते हैं। एक गोलाकारके काटनेमें न्यूनातिन्यून पाँच मिनट लगते हैं। इस गणना से एक साधारण कारीगर दिन भरमें १०० गोल टुकड़े सहज ही काट सकता है।

ये टुकड़े बिलकुल गोल नहीं होते, इसलिए उन्हें घिसकर चिकने और गोल बनाना पड़ता है। इसके पश्चात् उनमें छेद करना खुदाई करना और चमकदार बनानेके लिए पालिश चढ़ाना पड़ता है। यह कार्य भी महीन आरी या कानस द्वारा किया जाता है।

इस कार्यमें चतुर कारीगरकी आवश्यकता रहा करती है, अतएव आधुनिक अर्थशास्त्रके युगमें इस प्रकारके हस्तकौशलकी प्रणाली नहीं लड़ सकती। क्योंकि इस काममें प्राचीन और आरम्भिक युगके शस्त्रोंका उपयोग करनेसे शक्ति और समय दोनोंका अपव्यय होता है। किन्तु बेचारे सरकारी लोगोंके लिए इससे बढ़िया उद्योग ही दूसरा कोई नहीं है, अतएव वे इसीमें बहुत कुछ श्रम करके ज्यों त्यों पेट भरते हैं। बेचारे स्त्री पुरुषोंको घण्टों परिश्रम करने पर भी भरपेट मजदूरी नहीं मिलती। इसके भी दो कारण हैं प्रथम तो यह कि कच्चा माल जुटानेवालेकी दृष्टि सदा अपने लाभकी ओर होती है, दूसरे यह कि इस मशीनरीकी स्पर्धाके युगमें उन श्रमजीवियों के पुराने ढर्रेके शस्त्र (औजार) टिक नहीं सकते। फिर भी यदि कोई चाहे तो इस व्यवसायमें बहुत कुछ उन्नति और सुधार करके लाभ उठा सकता है। इसी प्रकार कार्यपद्धतिको सरल बनाकर वैज्ञानिक

वर्तमान विश्वव्यापी संग्राम और ज्यौतिष

[लेखक - श्री प० विशुद्धानन्द जी गौड़ ज्यौतिषाचार्य]

उक्त शीर्षक लेख "श्रीस्वाध्याय, में निरन्तर अब आ रहा है। वस्तुतः यह विश्व-व्यापार निखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री भगवान्‌का स्वाभाविक एक कार्य है। सब कारणोंके कारण-जगन्नियन्ता भगवान्‌के सृष्टि-पालन-संहारादि व्यापारमें किसी भी प्रयोजन या उद्देश्यकी अथवा हेतुकी बात उठ ही नहीं सकती, यह तो उनका एक प्राकृतिक स्वभाव है। उनके इस स्वभावके ऊपर अन्तःस्थित अथवा वहिःस्थित अन्य किसी भी शक्ति, प्रयोजन, कारण, अथवा किसी उद्देश्यका अभाव न होनेके कारणसे ही वे पूर्ण स्वाधीन, पूर्णस्वतन्त्र, तथा एकमात्र अद्वैत भी कहलाते हैं। समग्र कार्य-कलाप नित्य स्वच्छन्दतासे चलता है, उनकी इच्छाशक्तिके सामने कोई अभीष्टरूप कल्पित नहीं रह सकता है। मनुष्य जीवनकी विशेषता यही है कि वह ज्ञानसे और प्रेमपूर्वक, शास्त्रसे अनन्त ज्ञानमय और अनन्त प्रेममय श्री भगवान्‌की इस प्राकृतिक लीलाका सम्भोग कर सकता है। मनुष्यके साथ जितने लोंगोका जितने प्राणियोंका जिस जिस प्रकारका सम्बन्ध स्थापित होता है तथा अन्यान्य प्राणियोंके साथ जड़ प्रकृतिके साथ जिस जिस प्रकार सम्बन्ध बनता है तथा मिटता है, इन सब सम्बन्धोंमें उन उन प्राणियोंके साथ आदान प्रदान तथा घात प्रतिघातके अन्दर जितना सुख दुःखका भोग होता है कर्मानुसार सब प्राकृतिक सिद्धान्तसे उक्त सम्बन्ध यथा समय चलता ही रहता है और उसका परिज्ञान भी मनुष्योंको होता ही रहता है। यद्यपि इस वर्तमान वर्षके वर्तमान शताब्दीकालकी विवेचना पर "श्रीस्वाध्याय" के गताङ्कोंमें सम्पादक महोदयने बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है। तो भी अपने-अपने दृष्टिकोणसे ग्रहोंकी चालका विवेचन तथा ऋषियोंके एवं शास्त्रकारोंके अनुभव तथा विज्ञानका प्रकथन समय समय पर कैसा फल रखता है, इस पर प्रकाश डालना परमावश्यक भी हो जाता है। क्योंकि ऋषियोंका अपना अनुभव तथा शास्त्रकारोंका अपना विज्ञान लोकके हिताहित के लिए होता है। वर्तमान समयमें तथा निकट भविष्यकी सांग्रामिक परिस्थिति जगत्‌के लिए शुभ फलदायक प्रतीत नहीं होती है। प्रत्युत अशुभ फलदायक ही भासित होती है। जितने अंशमें अंशतः शुभफलदायक है इसका विवेचन भी इस लेखमें मिलेगा।

गत श्रावण मासकी अमावस्या रविवारके मध्याह्न कालिक सूर्यके परिवेषको भारतवर्षके अन्दर प्रायः सभी मनुष्योंने देखा होगा। परिवेष कुण्डलको कहते हैं, परिवेष सूर्य अथवा चन्द्रमाका ही प्रायः देखनेमें आया है। सूर्य अथवा चन्द्रमाकी किरणें पवनसे टकराकर भूमिमें स्थित पर्वतोंसे प्रतिबिम्बित होने पर पवनके द्वारा मंडलाकार हो कर स्वल्प मेघवाले आकाशमें अपने अनेक रंग और आकारकी दिखलाई देती हैं, उनको परिवेष कहते हैं। परिवेष दिनमें सूर्यका और रात्रिमें चन्द्रमाका होता है। प्रायः आकाशमें इसी नियमसे सूर्यकी किरणें पवनसे

साधन द्वारा भी इस व्यवसायका पुनरुद्धार किया जा सकता है।

इस प्रकार हमारे पाठक देख सकते हैं कि भगवान्‌के ये निकट सम्बन्धी शङ्ख देवता इस मर्त्यलोकमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थके दाता हैं, अतएव इसी शुभ मुहूर्तसे हिन्दू समाजको शङ्खकी आराधना आरम्भ कर देनी चाहिए। आशा है जनता अवश्य इस पर ध्यान देकर इसे शङ्ख-ध्वनिसे सफल करेगी।

अवरुद्ध होने पर धनुष्यका आकार भी मेघ युक्त आकाशमें धारण कर लेती हैं। इसको इन्द्रधनुष्य भी बोलते हैं। सूर्यकी स्थिति जब आकाशमें याम्योत्तरवृत्तमें खस्वस्तिकसे पूर्वकपालमें रहती है, अर्थात् मध्याह्नसे पूर्व सूर्यकी स्थितिमें सूर्यकी किरणें प्रतिविम्बित हो कर काले, पीले, नीले, लाल रङ्गोंसे मिश्रित धनुष्यके आकारमें पश्चिमकी ओर दिखलाई दिया करती हैं और इसी प्रकार जब सूर्यकी स्थिति याम्योत्तर वृत्तमें ही खस्वस्तिकसे परकपालकी ओर रहती है अर्थात् सूर्यकी मध्याह्नोत्तरकी स्थितिमें सूर्यकी किरणोंसे पूर्वकी ओर धनुष्यका आकार विचित्र रंगवाला दिखाई दिया करता है। प्रतिविम्ब का स्वरूप विरुद्ध दिशामें ही बना करता है, यह नियम है। और जब सूर्यकी स्थिति याम्योत्तरवृत्तमें ठीक खस्वस्तिकमें होती है तब सूर्यकी किरणें पवनसे टकराकर सूर्यके चारों ओर ही गोलाकारमें नीले, हरे, लाल, श्वेत रङ्गके आकारमें परिणत होकर दिखाई देती हैं जैसा कि श्रावण कृ० अमावस्या रविवारको मध्याह्नकालमें २॥ या ३ घण्टेके लगभग आकाशमें गोलाकार वृत्तगत विचित्र रङ्गकी स्थितिमें परिवेष दिखलाई दिया था। इस परिवेषकी स्थिति प्रायः सर्वत्र ही उक्त समयमें दिखलाई दी थी। उक्त परिवेषके शास्त्रीयफल विवेचनके विषयमें प्रथम तो—

वृष्टि स्त्र्यहेण मासेन विग्रहो वा ग्रहेन्दुपरिवेषे।
होराजन्माधिपयोर्जन्मर्क्षे वा शुभो राज्ञः॥

इस उक्तिसे परिवेषकी उक्त स्थितिमें प्रथम तो तीन दिनमें वर्षा जहाँ तहाँ अच्छी हो जानी चाहिये, और अच्छी वर्षा होती भी है। दूसरे एक मासमें राजाओंमें विग्रहकी स्थिति तथा विग्रहकी भावना बन जाती है। यह शुभफलदायक नहीं है। तीन दिन पश्चात् वर्षा प्रायः परिवेषके होनेके अनन्तर दूर-दूर तक अच्छी ही हुई यह प्रायः किसीसे भी अविदित नहीं है। विग्रहकी परिस्थिति जहाँ तहाँ उपस्थित प्राय है समय स्वयं बतला ही रहा है।

सूर्यकी मासिक गतिके नियमसे अथवा संक्रान्ति भोगकालकी गतिके नियमसे एक राशि पर एक मासमें भोग सूर्यका होता है। उस श्रावण कृष्णा अमावस्या रविवारमें सूर्यका सांक्रान्तिक भ्रमण भोगकाल कर्कराशि पर चल रहा था। कर्कराशिकी संक्रान्ति उक्तामावस्यामें थी। "दर्शः सूर्य्येन्दुसंगमः" इस नियमसे सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों ग्रह एक ही कर्कराशि पर ही थे। इसलिए अमावस्यामें कर्कराशिस्थ सूर्यके परिवेषमें चन्द्रमा भी आ गया था। और परिवेषके अन्दर ही चन्द्रमाकी स्थिति उक्त समयमें थी।

युद्धानि विजानीयात् परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः।
दिवसकृतः शशिनो वा क्षुदवृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम्॥

इस वचनसे यदि एक परिवेषके अन्दर दो ग्रह होवें तो राजाओंमें युद्ध होता है। तीन ग्रह यदि परिवेषके अन्दर होवें तो और भी अशुभफल जगत्के लिए होता है।

केवल कर्कराशिस्थ चन्द्रमाके होनेसे चन्द्रमा ही परिवेषके अन्दर नहीं आया है प्रत्युत गत श्रावण मासकी अमावस्यामें कर्कराशिमें बुध, राहु, गुरु, चन्द्रमा, ये चारों ग्रह और भी थे। इससे यह अभिप्राय निकला कि सूर्य सहित पाँच ग्रह कर्कराशिस्थ होनेसे परिवेषके अन्दर पाँच ग्रह माने गये और पाँच ग्रहोंका ही उक्त परिवेष बना था।

याति चतुर्षु नरेन्द्रः सामात्य पुरोहितो वशं मृत्योः।
प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु॥

यदि परिवेषके अन्दर चार ग्रह होवें तो मन्त्री और पुरोहितके सहित राजाके लिए अहितकारक होते हैं और यदि दैवयोगसे पाँच ग्रह मण्डलके अन्दर होवें तो जगत्में मानो एक प्रकारका प्रलय हो जाय। इससे अधिक नेष्टफल और हो भी क्या सकता है।

एकराशौ यदा यान्ति चत्वारः पञ्चखेचराः।
प्लावयन्ति महीं सर्वां रुधिरेण जलेन वा॥

यह उक्ति भी सर्वथा युक्तिसंगत ही है। शकुन शास्त्रसे एवं ग्रहादिकोंके विचार विमर्शसे उक्त

शताब्दीका फलादेश जगत्के लिए सुन्दर प्रतीत नहीं होता है। दो ग्रहोंका फल नेष्ट, तीन ग्रहोंका और भी अशुभ, पाँच ग्रहोंके लिए जो फलादेश शास्त्रकारोंने बतलाया है कि—"प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु" यह सर्वथा अन्य योगोंसे भी स्पष्ट प्रतीत हो रहा है और होना जँचता भी है।

"कुर्यादमापञ्चदश्यां पीड़ां नराधिपस्यैव"

इस नियमसे अमावस्या अथवा पञ्चदशीमें होनेवाला परिवेष राजाओंके लिए विशेष शुभफलदायक नहीं हुआ करता है। और जब राजाओंके लिए अशुभफलदायक है, तो राज्य एवं प्रजाका परस्पर अङ्गाङ्गी भाव होनेसे "मूलंमनुजाधिपति प्रजातरोस्तदुपघात संस्कारात्" इस नियमसे प्रजा रूपी तरुके लिए राजा मूल हुआ करता है, मूल कारण आदि कारण भी कहलाता है; उसे जड़ भी बोलते हैं। "छिन्नेमूले नैव पत्रं न शाखा" इसीलिए मूलके दोषास्पद् होनेसे तरुका वृक्षका हरा-भर रहना कहाँ तक सम्भव हो सकता है? इसीलिए प्रजाके लिए प्रत्युत प्राणीमात्रके लिए समय भयावह नहीं है तो क्या स्थिति सुन्दर कही जा सकती है?

नागरकाणामभ्यन्तर स्थिता यायिनां च बाह्यस्था।
परिवेष मध्यरेखा विज्ञेया क्रन्दसाराणाम्॥

आगमके इस नियमसे विधानसे आदेशसे परिवेषमें प्रायः तीन ही रेखा प्रधान हुआ करती हैं, जिनमें सबसे अन्दरकी रेखा उन राजाओंकी होती है जिनके राष्ट्रों पर चढ़ाई की जाय। अर्थात् चढ़ाई किये जानेवाले राजाओंकी सबसे अन्दरकी रेखा होती है और परिवेषके बाहरकी रेखा उन राजाओं की होती है, जो यायि होते हैं जो चढ़ाई करनेवाले हैं अथवा चढ़ाई करके किसी राष्ट्र पर जावें।

रक्तश्यामो रुक्षश्च भवति येषां पराजयस्तेषाम्।
स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान् येषां भागो जयस्तेषाम्॥

इस आगम वचन प्रमाणसे जिस राष्ट्रके जिन राजाओंके अधिकारमें अथवा भागमें आई हुई रेखा लाल होती है उन राष्ट्रोंका उन राजाओंका पराजय हुआ करता है। और जिन राजाओंका भाग श्वेत होगा उनके लिए जय देनेवाली शुभ फल देने वाली उक्त श्वेत रेखा होती है। गत श्रावण कृष्णा अमावस्याके उक्त परिवेषके अन्दर का भाग अर्थात् सबसे अन्दरकी रेखा लाल थी और बीचकी हरी नीली थी और बाहरकी श्वेत रङ्गकी थी। इसका आशय यही है कि जो राष्ट्र जिस राष्ट्र पर यायि बनेगा अथवा उक्त समयमें बना है उसका विजय होगा और विजय हुआ करता है, ऐसा शास्त्रकारोंका अनुभव है और अन्य राजाओंके लिये अन्य राष्ट्रोंके लिये जो कि यायि नहीं बने हैं उनके लिये हानिकारक अशुभ फलदायक पराजयसूचक समय सिद्ध होगा। "अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः" इस नियमसे विचारशील दैवज्ञ एवं विचारशील विद्वान् इसका भलिभांति विवेचन समझ सकते हैं कि उक्त वर्तमान विश्वव्यापी संग्रामके विषयका क्या परिणाम होगा। तथा उक्त वर्तमान विश्वव्यापी संग्रामके विषयमें परिवेषकी स्थितिका फलादेश कितने अंशमें किसके लिये शुभ एवं अशुभ फलदायक है, यह अर्थतः सिद्ध है।

समस्त भूमण्डल पर ग्रहोंका तथा समस्त प्राणियोंमें एवं समस्त वस्तु मात्र पर दैविक नियमोंका कैसा प्रभाव है? तथा कृषि विज्ञानमें उक्त दैविक नियमोंकी कैसी स्थिति रहती है और सम्वत्सर सुभिक्ष दुर्भिक्षके विचारांशमें कैसा रहेगा? इस विषयमें यद्यपि पिछली आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमाकी वायु परीक्षा भी (मध्यप्रान्तकी) उक्त फलादेशकी ही पोषक सिद्ध हुई है।

वायुकी उस समयकी गति पूर्वसे पश्चिम दिशा को थी, और वायुका झुकाव विशेषकर आग्नेयकोण से था, इसका फलादेश शास्त्रकारोंके मतसे धान्यादिकोंकी उत्पत्तिके दृष्टिसे अच्छा ही है। पूर्वदिशासे वायुका चलना वर्षाकी दृष्टिसे धान्यादिकोंकी उत्पत्ति के नियमसे बड़ा ही शुभ फल देने वाला है। अर्थात् वर्षा भी अच्छी होनी चाहिए, जहाँ तहाँ धान्यादिकों

की उत्पत्ति भी अच्छी ही होनी चाहिए। परन्तु आग्नेयकोणकी ओरका झुकाव होनेसे शुभ फल होते हुए भी अशुभकी ओर झुकाव रहना चाहिए। अच्छी धान्यादिकोंकी उत्पत्ति होते हुए भी धान्यादिकोंकी महर्घतासे धान्योंकी दुष्प्राप्यता होनी पूर्ण सम्भव है। और अग्निकोणके सम्बन्धित होनेके नियम से—

आषाढ़ी पूर्णमास्यां तु चाग्नेयो यदि मारुतः।
राजमृत्युं विजानीयाच्चित्रं सस्यं तथा जलम्॥

यह फलादेश स्पष्ट रूपसे देखनेमें आही रहा है। जलका वर्षना भी विचित्र रूप रखता है। कहीं वर्षा विशेष है और कहीं अल्प भी है। सस्यादिकोंकी उत्पत्तिमें भी यही विचित्रता रहेगी। कहीं सस्य सम्पत् अच्छी रहेगी, कहीं बिल्कुल धान्य नष्ट हो जावे। और किसी अंशमें होने पर भी महर्घताके कारण दुष्प्राप्यता होनेसे 'चित्रं सस्यं तथा जलम्' यह शास्त्रकारोंका वचन सर्वथा अपना लक्षण समन्वय रखता है और रखेगा, ऐसा स्पष्ट प्रतीत भी होता है। हमारे यहाँ मध्य प्रांतके बुलन्दशहरके एग्रीकल्चर कालेज तथा लखावटी डिगरी कालेजके वायुयन्त्रसे परीक्षित वायुका फलादेश तो यही है। उक्त दोनों कालेजोंमें भी मेरे प्रति मास भारतीय वायुशास्त्र तथा वृष्टि विज्ञानके सम्बन्धमें व्याख्यान हुआ करते हैं। बुलन्दशहरके उक्त कालेजमें प्रति मास ४ लेक्चर और लखावटी कालेजमें प्रति मास दो ही व्याख्यान होते हैं। उक्त कृषि कालेजोंमें वनस्पति विज्ञान एवं भूमि संशोधन सम्बन्धी विषयों पर भी व्याख्यान नियमित एफ० ए० तथा बी० ए० के छात्रोंके लिए होते हैं। गत आषाढ़ शुक्ला १५ पूर्णिमाको भारतीय वायुशास्त्रके विज्ञान पर व्याख्यान होकर वायुयन्त्रसे वायु परीक्षा करके क्रियात्मक फलादेश उक्त निश्चित किया है और शास्त्रकारोंके नियम एवं वचनानुसार उसका उक्त फलादेश वैसा ही जँचता भी है। भारत के अन्य भूभागोंकी वायु परीक्षा चाहे जैसी होवे। मध्यप्रान्तके यू० पी० की वायु परीक्षासे तो "चित्रं सस्यं तथा जलं" की उक्ति स्पष्ट ही यथातथ्य ही प्रतीत होती है। लिखनेका आशय यह है कि उक्त लक्षणोंका उत्पातोंका ग्रह जन्य परिस्थितिके दूषित होनेका ग्रह योग समय कार्तिकसे ही बनता है, यहाँ तक तो समय साधारण रूपसे ही चलता रहेगा। "चित्रं सस्यं तथा जलम्" की परिस्थिति ही किसी अंशमें जैसी है रहेगी। परन्तु कार्तिक अमावस्यासे समय दोषास्पद् ही विशेष प्रतीत होता है। बृहस्पति का अतिचार भी ठीक कार्तिकसे ही आरम्भ होकर चैत्र वदी अमावस्या तकका समय विशेष दूषित बनता है। मङ्गलका भी अतिचारी वक्री होना इस वर्ष विशेष दोषकारक और उक्त समयमें ही विशेषकर श्रावण शुक्ला पूर्णिमाके ग्रहणके फलादेशकी दोषकारक स्थिति भी उक्त समयमें ही दोषास्पद होगी।

प्रायः समस्त भूमण्डलके विचारांशसे समय विवेचनाके साथ भारतवर्षस्थ प्रान्तोंमें भी दोषास्पद स्थिति कार्तिकसे बृहस्पतिके अतिचार काल पर्यन्त भयावह एवं दोषकारक कष्टकारक प्रतीत होती है। यद्यपि आगेके सं० २००१ वर्षके ग्रहोंकी विवेचना भी विशेष दूषित प्रतीत होती है, परन्तु प्रस्तुतमें तो शताब्दीके ग्रह परिस्थितिकी ही क्रम विवेचना उपस्थित है।

ऐसे दोषकारक समय परिस्थितिमें क्या उपादेयता है, मनुष्यमात्रका क्या कर्तव्य हो जाता है? ऐसे दैविक उत्पातोंमें दूषित ग्रहजन्य परिस्थितिके समयमें शास्त्रकारोंका क्या आदेश है? यह विषय इस अङ्कमें भी पाठकगणके सम्मुख उपस्थित नहीं किया जा सका, सम्भव है आगामी अङ्कमें विवेचन किया जावे।

भारतीय ज्यौतिष-प्रणाली

[लेखक—ज्योतिर्विद्यारत्न श्री पं० कृष्णचन्द्र जी ओझा, केतकी पञ्चाङ्गकर्ता]

'श्रीस्वाध्याय' के गताङ्कोंसे विदित हुआ ही होगा कि गणित सूक्ष्म वेधतुल्य होने पर ही फलित धर्मशास्त्र आदिका निर्णय योग्य समय पर होगा अन्यथा नहीं। पञ्चाङ्गोंमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण ऐसे पांच अङ्ग होनेसे उसे पञ्चाङ्ग कहते हैं—

प्रथम तिथिका विचार करते हैं। ग्रहलाघवमें "भक्ताव्यर्कविधोर्लवा यमकुभिः" से रवि चन्द्रका १२ अंशका अन्तर होने पर १ तिथि होती है और पूर्णिमाको रवि चन्द्रका परम अन्तर १८० अंशका होता है, अर्थात् जिस समय रवि चन्द्रका उक्त अन्तर १२×१५=१८० होने पर पूर्णिमाका अंत होता है, और जिस समय रवि चन्द्रका अन्तर शून्य होता है उस समय अमावास्याका अन्त होता है। यदि हमें तिथिका काल सूक्ष्म लाना हो तो पहले रवि चन्द्र सूक्ष्म लाने पड़ेंगे। रवि चन्द्र सूक्ष्म होने पर ही तिथिका काल सूक्ष्म आ सकता है। रवि चन्द्र स्पष्ट करनेके लिए मध्यम सूर्य चन्द्रमें मन्दफल संस्कार किया जाता है। प्रथम तो मध्यम रविचन्द्र सूक्ष्म होने चाहिएँ और मन्दफल भी सूक्ष्म वेधतुल्य होगा, तभी रविचन्द्र सूक्ष्म मन्द स्पष्ट होंगे। प्राचीन मन्दफलमें कालान्तरजन्य स्थूलता है और सूक्ष्म परम रवि मन्दफल १।५५।१६ तथा चन्द्रमामें सूक्ष्म परम फलैक्य संस्कार ८।२०।० है; और चन्द्र परम मन्दफल ६°.३ है। ग्रहलाघव मतसे परम रवि मंद फल २°.२ और चन्द्र परम मन्दफल ५ अंश है। इन सूक्ष्म और स्थूलके भेदसे सूक्ष्म गणित द्वारा तथा ग्रहलाघव गणित द्वारा भेद होना स्वाभाविक है। इसी कारणसे प्राचीन गणितके पञ्चाङ्गोंमें तथा केतकी आदि सूक्ष्म गणितके पञ्चाङ्गोंमें तिथिमें अन्तर रहा करता है। यह अन्तर पूर्णिमा तथा अमावास्याके समीप स्वल्पान्तरसे रहता है और अष्टमीके समीप ७८ घटी तकका अन्तर हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि पूर्णिमा अमावसके समीपके मूलाङ्क प्राचीन ग्रन्थकारोंने अधिक वेधसे निश्चित किये हैं और अष्टमीके समीपके अङ्क सूक्ष्म वेधयुक्त नहीं होनेसे वहाँ अन्तर अधिक आया करता है। गणित शुद्ध लेनेका जहाँ प्राचीन आचार्योंका एक मत है वहाँ स्थूल मूलाङ्क द्वारा आए हुए गणितके अङ्क त्याज्य हैं और जिन सूक्ष्म वेधतुल्य परिमाणों द्वारा जो तिथि प्राप्त हो वही ग्राह्य और माननीय है। उपर्युक्त रवि-परम मन्दफलमें (ग्रहलाघवमें) ०°.३ तथा चन्द्र परम मन्दफलमें १°.३ क्रमसे ऋण और धन यही प्राचीन परम मन्दफलमें कालान्तर जन्य बीज संस्कार है। ऐसे ही प्राचीन चन्द्रगति न्यूनसे न्यून ७२० तथा परम ८६० कला है। यही सूक्ष्म परिमाणों द्वारा वेधतुल्य न्यूनसे न्यून ६६० तथा परम ६२० कला है। उक्त अन्तर भी चन्द्रमें कालान्तर जन्य मध्यमगतिमें अन्तर है। यह अन्तर भारतीय तथा पाश्चात्त्योंने अनेक वेधों द्वारा निश्चित किया है। उक्त मध्यमगति में अन्तर सूक्ष्म और स्थूलके भेदसे है सो न्यूनमें ३० कला और परममें ६० कला क्रमसे ऋण धन मध्यमगतिमें बीज है। अतः यह बीज मध्यम चन्द्र गतिमें देकर शुद्ध किये हुए रविचन्द्रसे आई हुई तिथि सर्वत्र ग्राह्य है। जिसके लिये वसिष्ठ वचन यह है—

"यस्मिन्पक्षे यत्रकाले येन दृग्गणितैक्यकम्।
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादि निर्णयम्॥"

इस वसिष्ठ प्रमाणसे निश्चित है कि जिस समय में दृक्तुल्य गणित जो आती हो उसी पक्षके अनुसार तिथ्यादिका निर्णय करना चाहिये। निर्णयका अर्थ

धर्मशास्त्र मुहूर्त्त आदिका निर्णय समझना चाहिये।

नारदीय पुराणे—

ज्ञात्वा तिथिं नरः सम्यक् संवत्सरमुदीरितम्।
सकुर्यादुपवासं तु अन्यथा नरकं व्रजेत्॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

चन्द्रार्कगत्या कालस्य परिच्छेदो यदा भवेत्।
तदा तयोः प्रवक्ष्यामि गतिमाश्रित्य निर्णयम्॥

गोभिल—

"यः परमो विप्रकर्षः सूर्याचन्द्रमसोः सा पौर्णमासी।
यः परः संनिकर्षः सा अमावास्या॥"
आदित्याद्विप्रकृष्टस्तु भागद्वादशके यदा।
चन्द्रमाः स्यात्तदाराम तिथिरित्यभिधीयते॥

इत्यादि प्रमाणों द्वारा ज्ञात होता है कि तिथिका निर्णय स्पष्ट रविचन्द्रके अन्तर पर करना चाहिये और रविचन्द्र सूक्ष्म दृश्य गणितयुत परिमाणों द्वारा बना कर ही तिथि साधन करना चाहिये।

रविचन्द्रका द्वादश अंशका अन्तर होने पर १ तिथिके प्रमाणसे ही पूर्वाचार्योंने तिथि साधन की है और वेदमें भी "दृष्टे तत्परिमाणम्" ऐसा कहा है (का० श्रौ० सू० १–४४) अर्थात् जो खगोल शास्त्र द्वारा गतिमान दृष्टिगोचर होवें उसीको प्रमाण मानना चाहिये और उसी प्रमाणों द्वारा (सूक्ष्म वेधतुल्य परिमाणों द्वारा) ही निर्णय करना चाहिये एवं चन्द्रके स्पष्टगति स्थिति पर ही तिथियोंका निर्णय तथा फल होता है।

सूर्यसिद्धान्ते—

आर्काद्विनिस्सृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः॥

इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्तमें भी सूर्यसे चन्द्र द्वादश अंश आगे जाने पर १ तिथि पूर्ण होती है। अर्थात् तिथिमापन प्रत्यक्ष सूर्यचन्द्रसे की जाती है यह निर्विवाद बात है। सूर्यचन्द्र सूक्ष्म होने पर ही तिथिका काल सूक्ष्म आयगा और वैसा सूक्ष्म काल आया हुआ ही धार्मिक कार्योंके लिए ग्राह्य करना, यह ज्योतिष शास्त्रकी उत्पत्तिसे ही सिद्ध होता है। मुहूर्त ग्रंथकारोंने सूर्यचन्द्रका अन्तर शून्य होने पर अमावास्या पूर्ण होती है और उसका फल भी नेष्ट होता है ऐसा बतलाकर उसके लिए शान्ति भी बतलाई है। पीयूषधारा में अमावस्याके दो लक्षण कहे हैं। १ सिनिवाली, २ कुहुः। यथा—

अमावास्या त्वमावस्या दर्शः सूर्येन्दुसंगमः।
सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुःकला कुहुः॥
(अमरः)

अर्थात् जबतक चन्द्र दीख रहा है तब तक वह सिनीवाली है और चन्द्र पूर्ण क्षीण हो गया हो तो वह कुहुः अमावास्या है। अर्थात् कृष्ण चतुर्दशीके अंतसे याने अमावस्याके प्रारम्भसे जबतक चन्द्र कुछ अंश भी दृष्टिगोचर होता हो वह सिनीवाली और चन्द्र किञ्चिन्मात्र भी न दीखता हो अर्थात् रविचन्द्रका संगम पूर्ण हुआ हो उसकी कुहुः नामक संज्ञा है। "सिनीवालीचन्द्रवती नष्टचन्द्रा कुहुर्मता" इस कश्यप वचनसे भी यही लक्षण है। यहाँ चन्द्रका पूर्ण क्षयकाल गणितसे ही आ सकता है। वह गणित सूक्ष्म होने पर ही सिनीवाली, कुहुः अमावास्याका काल सूक्ष्म आयगा और ऐसे आये हुए सूक्ष्म कालका ही फल विशेष बतलाया है। बिना गणित सूक्ष्मकाल कैसे निकाल सकेंगे? इसमें दृश्य गणितका ही फल है। तदेतदुक्तं छंदोगपरिशिष्टे—

"इन्दुक्षयकालः श्राद्धकालः।"

अर्थात् श्राद्धके लिये जो अमावास्या ली जाती है वह भी चन्द्रक्षीणकी ग्राह्य है।

अत्रेन्दुराद्ये प्रथमेऽवतिष्ठते चतुर्थभागोनकलावशिष्टः। तदन्तरा च क्षयमेति कृत्स्नमेवंज्योतिश्चक्रविज्ञा वदन्ति॥

"तेन देशकालगणनाकुशला यथा यथा गणयन्ति तदेवाङ्गीकार्यमिति सूच्यते" "तत्रोपपन्नस्य सिनीवालीजननफलमादेश्यं सिनीवालीप्रयुक्ता शान्तिश्च विधेया॥ अथ तस्याममावास्यायां यदा नष्टेन्दुकलात्वं स्यात्तदा कुहूरिति तत्र "सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दु कला कुहूः" इत्यादिषु हि दर्शन शब्देन चाक्षुषं दर्शनं विवक्षितम्।"

इत्यादि विचारसे तिथि सूक्ष्म दृश्य गणनानुसार ही लेनी चाहिए। और भी कई प्रमाण हैं, विस्तार-भयसे नहीं देता हूं। ऐसे ही नक्षत्र यह चन्द्रभ्रमण है, अतएव नक्षत्र भी सूक्ष्मगणितागत जो आवे उसीसे धार्मिकनिर्णय तथा फल या दशान्तर्दशा बर्तना चाहिए। रविचन्द्र सूक्ष्म हो जाने पर उससे आए हुए योग समाप्तिके काल ही पञ्चाङ्गोंमें देने चाहिएं। इसी प्रकार तिथि सूक्ष्म होने पर तिथिके ही दो भाग करण हैं, अतः करण स्वयं शुद्ध हो ही जाते हैं। इस प्रकार पञ्चाङ्गके पांचों ही अङ्ग शुद्ध होने पर उसी पञ्चाङ्ग द्वारा अपने धार्मिक कार्य फल मुहूर्त आदिका विचार करने पर वह किया हुआ धार्मिक कार्य योग्य समयमें होकर जो फल मिलना लिखा है वह फल मिलेगा। यदि स्थूल पञ्चाङ्गों द्वारा धार्मिक क्रियाएं हुईं तो जिस फलकी अपेक्षासे किया हुआ कार्य जिस समयमें करना चाहिये उस समयमें (गणितकी स्थूलतासे) नहीं होनेसे वास्तवमें जो फल मिलना आवश्यक है वह नहीं मिलेगा। इसी लिये धर्मकार्य तथा फल ज्योतिषके लिये कालज्ञान ही मुख्य है और कालज्ञान ज्योतिषशास्त्रके आधीन है; अतएव धर्मकार्यके लिये कालज्ञान सूक्ष्मसे सूक्ष्म होना चाहिये और कालज्ञान सूक्ष्म होनेके लिये सूक्ष्म वेध तुल्य परिमाणों द्वारा आए हुए गणितसे ही धार्मिक क्रियायें करनी चाहिएं, यही भारतीय ज्यौतिषशास्त्रकी प्राचीन प्रणाली है।

इस प्रणालीके विरुद्ध जो प्राचीन गणितके स्वाभिमानी हैं उनका यह कहना है कि प्राचीन गणितसे तिथि अधिकसे अधिक ६५ घटी और न्यून से न्यून ५४ घटी आती है तथा नूतन वेधतुल्य सूक्ष्म परिमाणोंको स्वीकार करनेसे यह परमावधि नहीं आती। अतः 'बाणवृद्धि रसक्षयः' कहे हुए वचन को बाधा पहुँचती है, किन्तु इन प्राचीन मताभिमानी मित्रोंको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ज्योतिष शास्त्रकी व्याप्ति ही खगोल विज्ञान पर निश्चित है और खगोल विज्ञानसे निश्चित हुए काल-ज्ञानसे धर्मशास्त्रका निर्णय करना है तो यह प्राचीन स्थूल गतिजन्य वचन प्रमाणको ज्योतिष शास्त्रमें स्थान नहीं है। आद्यज्योतिःशास्त्र और ज्योतिष शास्त्रसे किये हुए काल निर्णयसे धर्मशास्त्र (धर्मसूत्रं ततः पश्चाद्) हैं। ज्योतिषशास्त्र में दृक्तुल्यताके विरोधी कमलाकर-भट्ट शक १५८० में हुए जिनका मत पहले लेखमें कह आए हैं, उन्होंने मुख्यतः सूर्यसिद्धान्तको वेद तुल्य माना है और इसी हेतुसे "अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं यथा-र्कार्युक्तितः कुरु" अर्थात् अदृष्टफल सिद्धिके लिए सूर्य-सिद्धान्तसे गणित करनी चाहिये। किन्तु सूर्यसिद्धान्त में ही दृक्तुल्यताको प्राधान्यता दी गई है—

"तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः"

'जिन जिन गति द्वारा ग्रह दृक्तुल्यताको प्राप्त होवे ऐसी गणितको कहता हूँ" ऐसा सूर्यसिद्धान्तकार का स्पष्ट वक्तव्य है। यदि सूर्यसिद्धान्तमें स्थूलता हो जाय तो उसमें बीज देना चाहिये ऐसा सूर्यसिद्धान्त का प्रमाण गताङ्कमें दे चुके हैं, अतः कमलाकरभट्टका यह कथन श्रद्धाजाड्य है। वह इस लिए है कि बीज के लिए वे भ्रमयुक्त हो गए थे, कालान्तर जन्य अन्तरको मानकर किस बीजको कहां और कैसा मिलाना चाहिए इसका उनको पता नहीं लगनेसे सूर्यसिद्धान्तको ही उन्होंने वेदतुल्य मान लिया है। वास्तवमें कमलाकर भट्ट कालान्तर जन्य अन्तरको मानने वाले हैं, इस लिए उनके गलेमें यह बीजकी माला पहिनानी ही पड़ेगी, अर्थात् बीजयुक्त वेधतुल्य गतिमानको स्वीकार करके ही धार्मिक निर्णय लेना चाहिए। स्व० पं० लालचन्द्रशर्मा अध्यक्ष ज्यौतिष यन्त्रालय जयपुरने अपने 'पञ्चाङ्ग सारणी संस्कारदर्पण' में लिखा है—

"कितने ही विद्वान् लोग दृक्प्रत्ययसे बने हुए पञ्चाङ्गको धर्मशास्त्रके विरुद्ध बताते हैं उसमें कोई प्रमाण नहीं मालूम होता है, केवल उन लोगोंका हठमात्र ही मालूम होता है। यदि दृक्प्रत्यय धर्मशास्त्र के विरुद्ध होता तो काशी प्रभृति स्थानोंके विद्वान् लोग इस दृक्प्रत्ययको ग्रहण क्यों करते? तथा ज्योतिषके गणित ग्रन्थ प्राचीन वा अर्वाचीन सिद्धा-न्तादिकोंमें दृक्प्रत्ययका नाम क्यों लिखते? ज्योतिष

के सर्वसिद्धान्तकारोंका विरोधी एक कमलाकर भट्ट हुआ जिसने शक १५८० में "सिद्धान्त तत्त्व विवेक" बनाया है उसको आधा दृक्प्रत्यय तो जबरदस्तीसे मानना ही पड़ा है"।

सारांश प्राचीन कालसे वेधप्रणालीसे चले आये मानोंको स्वीकार करके ही आर्योंके पञ्चाङ्ग बनते थे। इसी लिए सब ही सिद्धान्तोंमें दृक्तुल्यता लानेको बतलाया गया है। यदि भारतीय ज्योतिषशास्त्रमें वेध प्रणाली नहीं होती तो आज ग्रहोंमें प्रत्यक्ष दीखने में और गणितमें महद् अन्तर आता और आज जो भी सूक्ष्मयन्त्रों द्वारा तथा पाश्चात्त्योंके सूक्ष्म साधनों द्वारा यदि भारतीय ज्योतिष शास्त्रकी तुलना करें तो प्राचीन स्थूल यन्त्रोंसे भी पर्याप्त सूक्ष्मता भारतीय ग्रन्थोंमें है। इसमें भारतीय विद्वानोंके प्रति पाश्चिमात्यों ने आश्चर्य प्रकट किया है, तथापि कालान्तर जन्य तथा ग्रन्थागत स्थूलता यदि ग्रन्थोंमें सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा प्रतीत होती है तो उसी स्थूलको मानते बैठना केवल अन्धश्रद्धा है, वास्तवमें प्राचीन आचार्योंके मतसे ही संशोधन करना सिद्ध है, अर्थात् सूक्ष्मगणितागत निर्माण हुए पञ्चाङ्गोंमें ही भारतीय जनताको अपने धार्मिक् जातक ताजिक आदिका विचार करना चाहिए और उसीके अनुसार आचरण करना चाहिए, यही भारतीय ज्यौतिष शास्त्रकी प्रणाली है।

सिंहस्थ-गुरु-व्यवस्था

[लेखक—राजज्यौतिषी श्री० पं० लक्ष्मीकान्त जी शास्त्री राजपण्डित]

इस वर्ष कतिपय पञ्चाङ्ग-रचयिता महोदयोंने सिंहराशि पर गुरु आनेसे कुछ पञ्चाङ्गोंमें विवाह-मुहूर्त्त नहीं लगाए हैं। परन्तु निम्नलिखित परिहारों से इस वर्ष सिंहस्थ गुरु विचारणीय नहीं है—

१. परिहार—'सिंहे गुरौ सिंहलवे विवाहो नेष्टः।' अर्थात्—सिंहके गुरुमें सिंहका नवांशक ही विशेष त्याज्य है।

सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः।
सर्वदेशेष्वयं त्याज्यो दम्पत्योर्निधनप्रदः॥

अतोऽवशिष्टेष्वंशेषु विवाहादि शुभं भवतीत्यर्थः।

इस वर्ष सिंह राशिके सिंहके नवांशकमें गुरु नहीं है, अतः विवाहादि होने उचित हैं। यह योग (सिंह राशिके सिंहके नवांशकमें गुरु) संवत् २००१ के भाद्रपदमें होना पाया जाता है।

२. परिहार—यदि माघ शुक्ल पौर्णमासी मघा-युक्त नहीं हो तो सिंह राशिस्थ गुरु दूषित नहीं होता।

माघमासे पौर्णमासी मघायुक्ता यदा भवेत्।
सिंहस्थस्य गुरोर्दोषस्तस्मिन्वर्षे न चाऽन्यथा॥ (मु०)

माघ्यां यदि मघा नास्ति सिंहेगुरुरकारणम्।
(शतानन्दः)

यदा न माघी मघया युता स्यात्
तदा गुरुः सिंहगतोऽप्यकारणम्॥ (टोडरानन्दः)

गुरौ हरिस्थे न विवाहमाहु-
र्हारीत गर्ग प्रमुखा मुनीन्द्राः।
यदा न माघी मघया युता स्यात्
तदा च कन्योद्वहनं वदन्ति॥ (दक्षः)

यह योग (मघा युक्त माघ शुक्ल पौर्णमासी हो और उसी वर्षमें सिंहका गुरु भी हो) संवत् २००२ के वैशाख शुक्लसे प्रारम्भ होगा। वहाँ पर ही सिंहस्थ गुरु विचारणीय है! अतः समस्त दैवज्ञ महानुभावोंसे प्रार्थना है कि इस वर्ष उपरि-निर्दिष्ट प्रमाणोंसे भागीरथीके दक्षिण तटवर्ती तथा गोदावरीके उत्तर तटवर्त्ती देशोंमें भी वर कन्याओं के शुभ विवाह मुहूर्त्त बतलानेकी कृपा करते रहें।

त्रैमासिक राशिफल

[लेखक—गणकभास्कर श्री पं० सखाराम जी जोशी शास्त्री]

आश्विन सुदी और कार्तिक वदीमें
(ता० ३० सितम्बरसे २६ अक्टूबर तक)

मेष शरीर स्वास्थ्य साधारण, साम्पत्तिक दुःख सहसा उत्पन्न हो, मन उदास, प्रवास, यशप्राप्ति, सन्तान सुख उत्तम, शत्रु नाश, स्त्रीसुख, भाग्य वृद्धि, व्यय अधिक, आय थोड़ी। अक्टू० ता० (दिनाङ्क) ६, ७, १०, ११, १६, १७ शुभ। अशुभ ता० ३, ४, ५, २१, २२, १२, १३। शेष साधारण।

वृषभ शरीरमें गर्मीका अधिक प्रभुत्व रहे, धन लाभ साधारण. पराक्रम वृद्धि, सन्तान सुख साधारण, भाग्यवृद्धि, स्त्रीपीड़ा। शुभ दिनाङ्क ३०, ७, ६, १२, १३। अशुभ दिनाङ्क २४, २५, १, २, ६, ७ शेष साधारण।

मिथुन शरीरमें आलस्यका पूर्ण वास, कुटुम्बमें लड़ाई झगड़े, यश प्राप्ति, शरीर सुख उत्तम, सन्तान सुख, बुद्धिमें तीव्रता, शत्रु नाश, स्त्रीको वात विकारसे पीड़ा, आय साधारण, कौटुम्बिक व्यय अधिक। शुभ दिनाङ्क १, २, १०, ११, १४, १५, २१, २२। अशुभ दिनाङ्क ७, ८, १६, १७, २६, २७। शेष साधारण।

कर्क शरीर प्रकृति उत्तम, कौटुम्बिक सुख, राज पक्षसे यश प्राप्ति, सन्तान सुख, शत्रु पीड़ा, स्त्री पीड़ा, भाग्य वृद्धि, लाल वस्तुओंसे इस मासमें अधिक लाभ हो, व्यय साधारण। शुभ दिनाङ्क ३, ४, १२, १३, १६, १७। अशुभ दिनाङ्क १, २, १०, ११, १६, २०। शेष साधारण।

सिंह शरीर प्रकृति उत्तम, मनमें उच्चकोटिकी कल्पना खेलती रहे। कौटुम्बिक पीड़ा, पराक्रम साधारण, सन्तान कष्ट, शत्रु वृद्धि, स्त्रीजाति से लाभ, राजघरानेसे शोक (दुःख) उत्पन्न हो। आय साधारण हो। शुभ दिनाङ्क ६, ७, १४, १५, १६, २०। अशुभ दिनाङ्क ४, ५, १२, १३, २१, २२। शेष साधारण।

कन्या निवास स्थान छोड़ना पड़े, धनकी प्राप्ति साधारण, यशप्राप्ति, शरीर स्वास्थ्य साधारण, सन्तानको वात विकारसे रोग उत्पन्न हो, भाग्यकी अवनति, मन अस्थिर, व्यय अधिक, स्त्री सुख उत्तम। शुभ दिनाङ्क ८, ६, १६, १७, २१, २२। अशुभ दिनाङ्क ६, ७, १४, १५, २४, २५। शेष साधारण।

तुला शारीरिक सुख, चित्तमें भय उत्पन्न हो, शत्रु पीड़ा, कुटुम्बमें कलह, स्त्री पीड़ा, सन्तान कष्ट, साम्पत्तिक रुकावट, धर्म कार्यमें मनकी प्रवृत्ति न हो, उच्चवर्गसे विरोध बढ़े, अनेक हानियाँ होनेकी सम्भावना है। शुभ दिनाङ्क १०, ११, १६, २०, २४, २५। अशुभ दिनाङ्क ८, ६, १६, १७, २६, २७। शेष साधारण।

वृश्चिक शरीरमें गर्मीके विकारसे पीड़ा, पराक्रम वृद्धि, व्यय अधिक रहे, कौटुम्बिक कलह, राजघरानेसे लाभ, स्त्रीसुख, सन्तान कष्ट, अधिकारी वर्गसे लाभ, आय थोड़ी। शुभ दिनाङ्क १२, १३, २१, २२, २६, २७। अशुभ दिनाङ्क ६, १०, १६, २०, २८, २६। शेष साधारण।

धनुः शरीरमें पीड़ा, कुटुम्बमें वैर वृद्धि, साधारण धन लाभ, पराक्रम वृद्धि, सन्तान कष्ट, स्त्री पीड़ा, वस्त्र लाभ, मन वाञ्छित कार्यमें सिद्धि हो। शुभ दिनाङ्क १४, १५, २४, २५। अशुभ दिनाङ्क १२, १३, २१, २२, ३०, ३१। शेष साधारण।

मकर शारीरिक सुख साधारण, सम्पूर्ण मास चिन्ता ही में व्यतीत होगा। सन्तान के विषयमें अधिक व्यय बढ़े। बुद्धिमें तीव्रताका वास रहे। स्त्री कष्ट, अकस्मात् धनयोग, पराक्रम वृद्धि,

शत्रु नाश। शुभ दिनाङ्क ६, ७, १६, २०, २६, ३०। अशुभ दिनाङ्क ३१, १, ८, ९। शेष साधारण।

कुम्भ शरीर कष्ट, कौटुम्बिक कलह, चित्तमें भय उत्पन्न हो, सन्तानको अधिक कष्ट रहे, पोष्य वर्ग (पोषण करने वाले) से झगड़ा होता रहे। अकस्मात् शोक उत्पन्न हो; स्त्री कष्ट। राज तथा अधिकारी वर्गसे लाभ हो। शुभ दिनाङ्क १, २, ६, ७, १६, २०। अशुभ दिनाङ्क १६, १७, २६, २७। शेष साधारण।

मीन शारीरिक सुख उत्तम, कौटुम्बिक सुख, साधारण धन प्राप्ति, शत्रु पीड़ा, सन्तान सुख, स्त्री कष्ट होनेकी सम्भावना है, प्रवास होना आवश्यक है, भाग्य वृद्धि, न्यायालयसे यश प्राप्ति। शुभ दिनाङ्क ४, ५, ८, ९, २१, २२। अशुभ दिनाङ्क १०, ११, ४, ५, १६, २०। शेष साधारण।

कार्तिक सुदी और मार्गशीर्ष वदीमें

(ता० ३० अक्टूबर से २७ नवम्बर तक)

मेष शरीर स्वास्थ्य उत्तम, साम्पत्तिक बाधा, पराक्रम वृद्धि, निजी लोगोंसे वैर बढ़े, सन्तान सुख, प्रवास, स्त्रीको पीड़ा, राज्य घरानेसे लाभ। शुभदिनाङ्क नवम्बर १, २, ३, ६, ७, २०, २१। अशुभ दिनाङ्क ८, ९, ३१। शेष साधारण।

वृषभ रक्तविकार, धनका अधिक व्यय, पड़ोसियोंसे तथा सम्बन्धियोंसे लड़ाई झगड़े, सुख अधिकांशमें थोड़ा ही मिलेगा। यह सम्पूर्ण मास किसी प्रकारसे अच्छा नहीं है।

मिथुन शारीरिक पीड़ा, आलस्य उत्पन्न हो, धन हानि, पड़ोसियोंसे झगड़ा, अपयश प्राप्ति, सन्तान कष्ट, शत्रु वृद्धि, स्त्री कष्ट, भाग्य वृद्धि, राजघरानेसे लाभ, व्यय अधिक। शुभ दिनाङ्क २९, ३०, ६, ७, १०, १२। अशुभ दिनाङ्क ४, ५, १३, १४ शेष साधारण।

कर्क अनेक प्रकारकी चिन्ता, धन लाभ, कौटुम्बिक सौख्य, वस्त्र लाभ साधारण होगा, मान हानि होनेकी सम्भावना है, उदरमें व्यथा, सन्तान कष्ट, शत्रु वृद्धि, स्त्री कष्ट। शुभ दिनाङ्क ३१, १७, ९, १३, १४। अशुभ दिनाङ्क २९, ३०, ६, ७, १५, १६। शेष साधारण।

सिंह मानसिक पीड़ा, शरीर सुख, पराक्रम वृद्धि, शत्रुसे भय उत्पन्न हो, भ्रातृ सुख, स्त्री सुख, धन लाभ साधारण, सन्तान सुख, भाग्य वृद्धि तथा अनेक प्रकारसे धन लाभ हो। शुभ दिनाङ्क २, ३, ११, १२, १५, १६, १७। अशुभ दिनाङ्क ३१, १, ८, ९, १०, १८, १९। शेष साधारण।

कन्या शारीरिक पीड़ा, स्वजनोंसे भय, साधारण लाभ, सन्तानपीड़ा, बुद्धिमें मंदपना, शत्रु नाश, स्त्री पीड़ा, भाग्य अवनति, राजसे चिन्ता, परन्तु कष्ट कुछ नहीं, व्यय अधिक। शुभ दिनाङ्क ४, ५, १३, १४, १८, १९। अशुभ दिनाङ्क २, ३, ११, १२, २०, २१। शेष साधारण।

तुला शारीरिक सुख, स्थानान्तर अवश्य होगा, कुटुम्बमें मृत्यु, पराक्रम वृद्धि, भाई बहिनसे लाभ, उदर व्यथा तथा अपचन, सन्तान सुख, तथा विद्या सम्बन्धी विषयमें सुकीर्त्ति प्राप्त हो, शत्रु लाभमें हानि करे, स्त्री पीड़ा, धर्ममें अभिरुचि न रहे, भाग्यमें बाधा, अधिकारी वर्गसे वैर बढ़ें, लाभ अधिक, व्यय थोड़ा। शुभ दिनाङ्क ६, ७, १५, १६, २०, २१। अशुभ दिनाङ्क ४, ५, १३, १४, २३, २४। शेष साधारण।

वृश्चिक शरीर सुख साधारण, गर्मीके विकारसे पीड़ा, धन लाभ साधारण, सुयश प्राप्ति, बुद्धिमें तीव्रता, सन्तान सुख, व्यापारमें शत्रुता बढ़कर उससे अधिक हानि, साधारणतः यह मास हानिकारक है, सावधानीसे ही व्यवहार करना चाहिए।

धनुः शरीर सुख उत्तम, कुटुम्बमें लड़ाई झगड़े, पृथ्वीसे लाभ, दोषारोपण, स्त्री कलह, शत्रु नाश, सन्तान कष्ट, ठोकर लगनेसे महान् दुःख प्राप्त हो, भाग्य तथा धनकी वृद्धि, वस्त्र लाभ। शुभ दिनाङ्क ११, १२, २०, २१, २५, २६। अशुभ दिनाङ्क ८, ९, १८, १९, २७, २८। शेष साधारण।

मकर शरीर सुख साधारण, मन चिन्तासे ग्रस्त रहे, अपयश प्राप्ति, सन्तान कष्ट, बुद्धिमें तीव्रता, साधारण धन लाभ, स्त्री तथा व्यापार कलह, मनकी इच्छा इस मासमें पूर्ण होगी। शुभ दिनाङ्क १३, १४, २३, २४, २७, २८। अशुभ दिनाङ्क ११, १२, २०, २१, २९, ३०। शेष साधारण।

कुम्भ शरीर सुख उत्तम, कौटुम्बिक सुख, पराक्रम वृद्धि, अपचन तथा शत्रु द्वारा पीड़ा, धन तथा पोष्यवर्ग (पालन करनेवाले) का नाश, परन्तु मासके अन्तमें शत्रु द्वारा सम्पत्ति मिले या लाभ हो, मान बढ़े, स्त्री पीड़ा, कार्य सिद्ध, सन्तान कष्ट। शुभ दिनाङ्क १५, १६, २५, २६, २९, ३०। अशुभ दिनाङ्क १०, ११, २०, २१,। शेष साधारण।

मीन शारीरिक पीड़ा, यश प्राप्ति, शत्रु वृद्धि सन्तान कष्ट, बुद्धि मंद, मामासे साधारण हानि, प्रवास, स्त्री कष्ट, अधिकारीवर्गसे अनबन, अधिक व्यय। शुभ दिनाङ्क ३०, ३१, ४, ५, १७, १८। अशुभ दिनाङ्क २८, २९, ६, ७, १५, १६। शेष साधारण।

मार्गशिर्ष सुदी और पौष वदीमें

(ता० २८ नवम्बरसे २७ दिसम्बर तक)

मेष शरीर सुख साधारण, कुटुम्बमें कलह वृद्धि, अधिक व्यय, पड़ौसियोंसे अधिक सहायता मिले, मानसिक पीड़ा, सन्तान सुख, स्त्री पीड़ा, भाग्य वृद्धि, व्यापारमें हानि, धर्म कार्यमें व्यय हो। शुभ दिनाङ्क नवम्बर २९, ३०, दिसम्बर ४, ५। अशुभ दिनाङ्क २७, २८, ६, ७। शेष साधारण।

वृषभ मानसिक दुःख, शत्रु भीति, धनका व्यय, पराक्रम वृद्धि, प्रवास, शारीरिक सुख उत्तम, पुत्र प्राप्ति तथा विद्या सम्बन्धी अनेक लाभ हों, स्त्री पीड़ा, पापकी वृद्धि, भाग्यकी अवनति, अधिकारीवर्गसे लाभ हो। शुभ दिनाङ्क २, ३, ६, ७। अशुभ दिनाङ्क २९, ३०, ८, ९। शेष साधारण।

मिथुन मानसिक चिन्ता रहे, शारीरिक सुख उत्तम, धनका अधिक व्यय, कुटुम्बमें कलह वृद्धि, भाई बहिन सेवक द्वारा दुःख उत्पन्न हो, अपयश, मातृ सुख उत्तम, शत्रु पराजय, समाजमें उन्नति प्राप्त हो, भाग्यकी अवनति, राजघरसे लाभ, स्त्री सुख, सन्तान सुख उत्तम। शुभ दिनाङ्क- ४, ५, ८, ९। अशुभ दिनाङ्क २, ३, १०, ११। शेष साधारण।

कर्क मानसिक पीड़ा, कुटुम्बमें आनन्द प्राप्त हो, धनका आगम भली-भांति होता रहे, प्रवास, पराक्रम वृद्धि, बुद्धिमें भ्रम उत्पन्न हो, सन्तान कष्ट, व्यापार तथा राजघरानेसे लाभ हो, अधिकारियोंकी प्रसन्नता, स्त्री कष्ट, दोषारोपण। शुभ दिनाङ्क ३०, १, ६, ७, १०, ११। अशुभ दिनाङ्क ४, ५, १२, १३। शेष साधारण।

सिंह शरीर सुख उत्तम, परन्तु मनमें भय उत्पन्न हो, पराक्रम उत्तम, विद्या सम्बन्धी विषयोंमें अरुचि, सन्तान कष्ट साधारण, धन साधारण व्यापार द्वारा मिले, परन्तु मासके अन्तमें अधिक व्यय है, स्त्रीसे लाभ हो, अधिकारीवर्गसे लाभ हो। शुभ दिनाङ्क २९, ३०, ८, ९, १२, १३। अशुभ दिनाङ्क ६, ७, १५, १६। शेष साधारण।

कन्या शरीर सुख साधारण, वस्त्र लाभ, कुटुम्भमें शुभ उत्सव, मान हानि होना सम्भव है, अधिकारीवर्गसे झगड़ा उत्पन्न हो, सन्तान कष्ट, स्त्री कष्ट साधारण, यह मास अत्यन्त कष्टकारक है अतः सावधानीसे रहना चाहिये।

तुला शरीर सुख उत्तम, कौटुम्बिक सुख, यश, शत्रु वृद्धि, व्यापारसे हानि, अधिकारीवर्गसे हानि, सन्तान कष्ट, स्त्री कष्ट, मासका उत्तरार्ध अच्छा होगा, परन्तु मासके पूर्वार्धमें सावधानीसे रहना चाहिए।

वृश्चिक शारीरिक सुख उत्तम, कुटुम्बमें कलह, तथा भय, व्यापारमें धन का विनाश, स्त्री कष्ट, सन्तान कष्ट, भाग्यमें बाधा, अधिकारीवर्गसे झगड़ा, पितासे लड़ाई झगड़ा, ग्रन्थ प्रकाशन द्वारा लाभ। शुभ दिनाङ्क ६, ७, १४, १६, २०, २१। शेष साधारण।

धनुः स्वजनोंसे वैर बढ़े, शत्रुनाश, दोषारोपण, मातृ सुख, शरीर सुख उत्तम, सन्तान कष्ट, स्त्री कष्ट, भाग्यमें अवनति, व्यापारमें लाभ, अधिक व्यय, आय न्यून। शुभ दिनाङ्क ८, ९, १७, १८, २२, २३। अशुभ दिनाङ्क ६, ७, १५, १६, २५, २६। शेष साधारण।

मकर मानसिक चिन्ता, कुटुम्ब हानि, पराक्रम वृद्धि, शारीरिक सुख उत्तम, सन्तान पीड़ा, शत्रु नाश, स्त्री कलह, व्यापारमें हानि, वस्त्र लाभ, कार्यसिद्धि, अधिकारीवर्गसे लाभ तथा नौकरी पेशा वालोंको यह मास बहुत अच्छा है। शुभ दिनाङ्क १०, ११, २०, २१, २५, २६। अशुभ दिनाङ्क ८, ९, १७, १८, २७, २८। शेष साधारण है।

कुम्भ शारीरिक सुख उत्तम, परन्तु मानसिक चिन्ताकी अधिक वृद्धि हो, स्वजनोंसे भय उत्पन्न हो; शत्रुओंका अधिक प्राबल्य रहेगा, मासके अन्तमें शत्रुनाश अवश्य होगा, राज द्वारा सम्मान, व्यापारमें अच्छा लाभ तथा भाग्यवृद्धि, स्त्री कष्ट, सन्तान सुख। शुभ दिनाङ्क १२, १३, २२, २३। अशुभ दिनाङ्क १०, ११, २०, २१। शेष साधारण।

मीन शरीर सुख उत्तम, पराक्रम वृद्धि, राजद्वारसे लाभ, बहिन तथा भाइयोंका सुख पूर्ण, सन्तान कष्ट, सट्टेसे हानि होगी, ब्राह्मणवर्ग शत्रु बनेंगे, धनका अकस्मात् विनाश, कार्यमें सिद्धि प्राप्त हो। शुभ दिनाङ्क १५, १६, २५, २६, २, ३। अशुभ दिनाङ्क १२, १३, २२,२३। शेष साधारण।

सायन तुला संक्राति

[लेखक—गणक भास्कर श्री पं० सखाराम जी जोशी]

आश्विन कृष्ण १० गुरुवार ता० २३ सितम्बर शून्य मेरीडियन पर ३ घं० २२ मि० स्थानिक समय पर सायन कुम्भ लग्नमें सूर्यका सायन तुलाराशिमें प्रवेश हुआ है।

लग्नेश शनि पंचम स्थानमें मिथुनके हो कर विराजमान हैं, अतः संसारमें जनताका व्यवहार बिगड़ कर असंतोष उत्पन्न होवे। पश्चिमीय देशोंमें अधिकतर भूकम्प व वर्षासे महान् उपद्रव होनेकी सम्भावना है। अति वर्षाके कारण कहीं कहीं तो खेतीको अत्यन्त हानि हो कर वहांके निवासियोंको दुष्कालका सामना करना पड़ेगा। इन्हीं तीन मासोंमें अग्निप्रलय होनेकी भी सम्भावना है। राजवर्ग व अधिकारारूढ़ पक्षको महान् आपत्तियोंका सामना करना पड़ेगा। जनताका विशेष ध्यान नाटक व सिनेमाकी ओर न रहे। जुआरी तथा सट्टेवालोंको विशेष कर लाभ ही होता रहेगा। देशोंमें छोटे बच्चों की मृत्यु संख्या बढ़ेगी व जन्म संख्या न्यून होगी। शिक्षा विभागमें दिन प्रतिदिन अधिक उन्नति होवेगी। न्याय-विभागमें घूँसकी प्रथा उच्च श्रेणी पर पहुंचने की चेष्टा करे। भिक्षुकवर्गके लिये यह समय महान् कष्टकारक है। शास्त्रप्रगति तथा परराष्ट्रिय व्यापार को यह समय इतना ठीक नहीं है जितना कि होना चाहिये।

चन्द्रमा अपने घरका अधिपति हो कर छठे स्थान में बैठा है, अतः देशोंमें किसी प्रकारका महान् रोग उत्पन्न न होकर शांतता फैलती रहेगी। श्रमजीवीवर्ग तथा कारखानेदारोंको यह समय बहुत हितकारक है। इनके हित तथा सुखके लिए अनेक सुविधाएँ होंगी। संग्राममें मृत्यु संख्याकी वृद्धि होगी, अधिकारी तथा राजवर्गमें मृत्यु होवे। उष्णताका विकार वायुमें फैलता रहे। ग्रन्थकार तथा सम्पादक लोग वास्तविक परिस्थितिको जनताके सम्मुख लाने व छपवानेमें असमर्थ रहें। इनको सङ्कुचित अवस्थामें रहना पड़ेगा। पर राष्ट्रोंसे नयी नयी सन्धियां होंगी। स्त्रीवर्ग में शान्ति रहेगी। इसी समयमें शान्तिका विचार करनेके लिये अनेक विचारविनिमय हों। अनेक धर्मावलम्बी एकत्रित हो कर जनताको सद्उपदेश करेंगे। देशोंमें चोरियां, रक्तपात तथा डाके आदिके उत्पात अधिक हों।

त्रैमासिक पर्वव्रतादि निर्णय

[लेखक—श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी]

आश्विन शुक्ल	११ शनिवार	ता० ६	अक्टूबर	पापाङ्कुशा एकादशी व्रत स्मार्त्तोंका।
	१२ रविवार	ता० १०		एकादशी व्रत वैष्णवोंका।
	१३ सोमवार	ता० ११		सोमप्रदोष व्रत
	१५ बुधवार	ता० १३		शरद्पूर्णिमा कोजागर व्रत आकाशदीपदान सत्यव्रत कार्तिकस्नानारम्भ।
कार्तिक कृष्ण	३ शनिवार	ता० १६		श्रीगणेश ४ करक (करवा) चौथ व्रत चन्द्रोदय वर्द्धित स्टेण्डर्ड घं० ६ मि० १२ रात्रि।
	४ रविवार	ता० १७		तुला संक्रान्ति मु० ४५ पुण्यकाल मध्याह्नोत्तर।
	८ गुरुवार	ता० २१		अहोई ८, राधा ८, अशोकाष्टमी, गुरुपुष्ययोग।
	११ रविवार	ता० २४		रमा एकादशी व्रत स्मार्त्तोंके लिए।
	१२ सोमवार	ता० २५		एकादशी व्रत वैष्णवोंका।
	१३ मंगलवार	ता० २६		भौमप्रदोष व्रत धन १३ धन्वन्तरी जयन्ती, बलिपूज
	१४ बुधवार	ता० २७		श्रीहनुमज्जयन्ती, नरक १४, रूप १४।
	१४ गुरुवार	ता० २८		दीपमालिका श्रीमहालक्ष्मीपूजन।
	३० शुक्रवार	ता० २६		अन्नकूट, गोवर्द्धनपूजन, वर्ष्टिकाकर्षण (रस्साकशी)
कार्तिक शुक्ल	१ शनिवार	ता० ३०		यमद्वितीया, भ्रातृटिका २, चन्द्रदर्शन।
	५ मंगलवार	ता० २	नवम्बर	सौभाग्यपञ्चमी।
	८ शुक्रवार	ता० ५		गोपाष्टमी।
	६ शनिवार	ता० ६		अक्षया ६, परिक्रमा ६।
	११ सोमवार	ता० ८		हरिप्रबोधिनी ११ व्रत, चातुर्मास्य व्रत समाप्ति, तुलसीविवाह, भीष्मपञ्चकारम्भ।
	१२ मंगलवार	ता० ६		भौमप्रदोष व्रत।
	१३ बुधवार	ता० १०		वैकुण्ठ १४ व्रत।
	१४ गुरुवार	ता० ११		टुकरी १५, सत्यव्रत, भीष्मपञ्चक समाप्ति, निम्बार्क-जयन्ती, कार्तिकस्नान समाप्ति।
मार्गशीर्ष कृष्ण	१ शुक्रवार	ता० १२		मृगछौड़ी १।
	४ सोमवार	ता० १५		श्रीगणेश ४ व्रत।
	४ मंगलवार	ता० १६		वृश्चिक संक्रान्ति मु० ४५ पुण्यकाल मध्याह्नोत्तर।
	६ गुरुवार	ता० १८		गुरुपुष्य योग
	७ शुक्रवार	ता० १६		श्रीमहाकाल भैरव जयन्ती।
	११ मंगलवार	ता० २३		उत्पन्ना एकादशी व्रत।
	१२ बुधवार	ता० २४		मल्लद्वादशी।
	१३ गुरुवार	ता० २५		प्रदोष व्रत।
	३० शनिवार	ता० २७		शनैश्चरी अमा०।

मार्गशीर्ष शुक्ल	२ सोमवार	ता० २६		चन्द्रदर्शन।
	५ गुरुवार	ता० २	दिसम्बर	श्री बलदेवजयन्ती।
	६ शुक्रवार	ता० ३		चम्पा ६।
	११ मंगलवार	ता० ७		मोक्षदा एकादशी व्रत, गीताजयन्ती।
	१३ गुरुवार	ता० ६		प्रदोष व्रत।
	१४ शुक्रवार	ता० १०		मतान्तरेण गीताजयन्ती, पिशाचमोचन श्राद्ध।
	१५ शनिवार	ता० ११		सत्य व्रत, श्रीदत्तजयन्ती।
पौष कृष्णा	४ बुधवार	ता० १५		श्रीगणेश ४ व्रत।
	५ गुरुवार	ता० १६		धनुः संक्रान्ति मु० १५ पुण्यकाल ३–३६ उपरान्त [१६–३६ यावत्
	११ गुरुवार	ता० २३		सफला एकादशी व्रत।
	१२ शुक्रवार	ता० २४		प्रदोष व्रत।
	३० सोमवार	ता० २७		सोमवती अमावस्या।
पौष शुक्ला	१ मंगलवार	ता० २८		चन्द्रदर्शन।
	३ बुधवार	ता० २६		हिजरी सन् १३६३ प्रारम्भ।
	६ शनिवार	ता० १	जनवरी	सन १६४४ ई० प्रारम्भ।

महापुरुषोंकी जयन्तियां, निर्वाणदिन और प्रसिद्ध मेले

कार्तिक कृ०	६ शुक्रवार	ता० २२	अक्तूबर	स्व० श्री० विट्ठलभाई पटेल निर्वाण दिन
	१० शनिवार	ता० २३	,,	श्रीकृष्णसखा पार्थ (अर्जुन) जन्मदिन
	१४ गुरुवार	ता० २८	,,	दीपमाला मेला अमृतसर।
	३० शुक्रवार	ता० २६	,,	श्री स्वामी रामतीर्थ जयन्ती।
कार्तिक शुक्ल	८ शुक्रवार	ता० ५	नवम्बर	स्व० श्री चित्तरञ्जनदास जन्मदिन।
	११ सोमवार	ता० ८	,,	भक्त श्री नामदेव जन्मदिन।
	१५ गुरुवार	ता० ११	,,	मेला पुष्करराज और ऋणमोचन कपालमोचनतीर्थ श्रीगुरु नानकदेवजयन्ती।
मार्गशीर्ष कृष्ण	५ बुधवार	ता० १७	,,	स्व० श्री ला० लाजपतराय पुण्यदिन।
	६ गुरुवार	ता० १८	,,	श्री पं० जवाहरलाल नेहरू जन्मदिन।
	१३ गुरुवार	ता० २५	,,	श्रीज्ञानेश्वर महाराज पुण्यदिन
	१४ शुक्रवार	ता० २६	,,	मेला पुरमण्डल (काश्मीर) देविका स्नान।
	१४ शुक्रवार	ता० १०	दिसम्बर	अखण्ड सौ० श्री १०५ मती महाराणी साहिबा बघाटराज्य सोलन जन्मोत्सव
पौष कृष्ण	३ मंगलवार	ता० १४	दिसम्बर	सम्राट षष्ठजार्ज जन्मदिन।
	८ सोमवार	ता० २४	,,	महामना श्री पं० मदनमोहनजी मालवीय जन्मदिन।
पौष शुक्ल	१ मंगलवार	ता० २८	,,	अखिल भारतीय राष्ट्रिय महासभा कांग्रेस जन्मदिन, मेला बाबा हरवल्लभ जालन्धर।
	७ रविवार	ता० २	जनवरी	श्रीगुरु गोविन्दसिंह जयन्ती।

स्वप्न-विज्ञान

[लेखक—विद्याभूषण श्री पं० मोहन शर्माजी, विशारद, पूर्व सम्पादक "मोहिनी"]

प्राचीन समयमें भारतके अधिवासी सात्विक जीवन यापन करना उत्तम समझते थे, जड़वाद और आध्यात्मवादके भेदको समझ कर उन्होंने अपने जीवनको पूर्ण सात्त्विकी बनाया था। उनकी आवश्यकतायें स्वल्प थीं, बाह्याडम्बरकी आसुरी मायासे उन्होंने अपनेको सुरक्षित रक्खा था, इसीलिए तत्त्व चिन्तनमें उनकी स्वभावतः गति और मति होती थी। वे उच्च विचारोंके पोषक और कल्पक होनेके कारण ही अपने अपूर्व अन्वेषणों द्वारा हमारे कल्याण के जो ज्ञानका भण्डार छोड़ गये हैं, यदि हम उसकी उपयोगपूर्वक रक्षा कर सकें तो यह अभ्रान्त प्रमाणोंसे सिद्ध है कि हम भी अपने जीवनको उसी भाँति गौरवनीय और उच्च बना सकते हैं। हमारे धर्मग्रन्थ और शास्त्रोंकी प्रणालियोंका आधार इतना सुदृढ़ और सच्चा है कि विरोधियों द्वारा उसकी सार हीनताके झूठे दावे अब तक व्यर्थ होते आये हैं। वह किसीके हिलाये नहीं हिल सका है। जीवन की क्षुद्रातिक्षुद्र घटनाओंके सम्बन्धमें शास्त्रावलोकन से हमें जो अपार ज्ञान प्राप्त होता है, हममेंसे बहुतों को इसका विवेक तक नहीं है। अन्यथा एतद्देशीय आर्ष-ग्रन्थोंमें वे सब बातें भरी पड़ी हैं, जिनकी गुत्थियोंके फेरमें हम नवीन प्रकाश (सभ्यता) के उपनेत्र (चश्में) से पश्चिमी सभ्यताकी चकाचौंधमें सुलझावको ढूंढनेका व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं।

भारतकी अपनी इन विचित्र अन्वेषणाओंमें स्वप्न-विज्ञान भी एक अलग विद्या है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसे स्वप्न सुषुप्ति और जागृतिकी विभिन्न अवस्थाओंका भान न होता हो, स्वप्न नित्य ही आते रहते हैं। स्वप्नमें मनुष्य जो देखता और अनुभव करता है वह जागृतिमें उसने कभी देखा और सुना भी न था। कितने ही मनुष्य स्वप्नकी मायामें आत्महत्या करते पाये गये हैं। अघटित और अज्ञात घटनायें स्वप्न द्वारा सत्य रूपमें घटित होती देखी गयीं हैं। रात्रिके चतुर्थ प्रहरके स्वप्नका फलाफल कभी २ दूसरे ही दिन प्रत्यक्ष होता पाया जाता है। धरित्रीके क्रोड़से धन मिलने के स्वप्न, जीवनकी नाना अज्ञात घटनाओंके स्वप्न, मृत्यु और जन संहारकी लीला के स्वप्न ये सब भी अपनी सत्यताकी बराबर साक्षी देते आ रहे हैं। इस प्रकार स्वप्न देखने और उनकी चर्चा करनेका विषय मानव स्वभावके पक्षमें नित्य की अनिवार्य घटना है। अधिकांश मनुष्य जो स्वप्न शास्त्रमें कोरे हैं स्वप्नोंको व्यर्थ समझकर, इनके वादविवाद में पड़ना उचित नहीं समझते और जिन्हें स्वप्नोंके फलाफल जाननेकी उत्सुकता तथा रुचि है वे भी इसको परिणाम-भोग तक सीमित रखकर अपनी इतिकर्त्तव्यता समझ लेते हैं। फलतः स्वप्न-विज्ञानकी वास्तविक जानकारी और खोजका विषय अंधेरेमें रह जाता है। इसका तात्त्विक अनुसन्धान मानव-जीवनका कितना ऊपर उठा सकता है, इसे हम कल्पना द्वारा जानते हैं। आजका मानव जीवन नाना प्रकारके दुःख शोकका प्रतीक बन गया है। यदि ऐसे भीषण समयमें मनुष्य अपनी इच्छानुसार स्वप्न देख सकता तो संसारके आधेसे भी अधिक दुःख सदैवके लिए बिदा माँग लेते। परन्तु प्रकृतिने स्वप्नमें जिस महाविस्मयकी मदिराको उड़ेल दिया है; मानव स्वभाव उसकी अवज्ञा नहीं कर सकता। यदि सपने सबके सब सत्य और प्रत्यक्ष हुआ करते तो हम स्वप्नावस्थामें मृत स्नेहियोंसे मिलकर अपनी विरह-व्यथाको क्षणमें शान्त कर सकते थे। दुःखद्वन्द्वकी प्रचण्ड अग्निसे झुलसते हुए इस जीवनमें कितना स्वाद आ जाता, यदि स्वप्नकी आड़में हम दैनिक गुत्थियोंको सुलझानेका बल प्राप्त

कर सकते। किन्तु, प्रकृतिने अपने नियम पर वह दृढ़ मोहर लगायी है कि उसमें किसी उलटफेरके लिए सोचना व्यर्थ प्रयत्न जैसा है। "मनसा चिन्तये-कार्यं दैवो अन्यत्र चिन्तयेत्" मनुष्य कुछ सोचता है और प्रकृति कुछ और ही कर दिखाती है।

परञ्च, मानव शक्तिका जिस पर कोई अधिकार नहीं, उस स्वप्नकी मायाका वास्तविक रहस्य क्या है? स्वप्न कभी मनुष्यके मन पर भारी आघात पहुंचाते, कभी आशाओंका समुद्र उमड़ाते, कभी आनन्दकी धारा बहाते, मनुष्यको अदृश्य जगत् की झांकी कराते और कभी २ भय भावनासे व्याकुल बना कर उसे पेचीदगीमें डाल रखते हैं। इस प्रकार स्वप्नोंका संसार आजकी मानवात्माके लिए निरन्तर रूपसे जिज्ञासा और विस्मयका बोध करा रहा है। विचित्र स्वप्नोंको देखनेवाला मनुष्य प्रायः विचारोंमें ही डूबा रहता है और जब उनका कार्य फलाफल सामने नहीं आता तो उनकी धीरे २ विस्मृति हो रहती है। परन्तु, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं साहित्य और संस्कृतिके धनी आर्यावर्त्त के प्राचीन आर्य-द्रष्टाओंने इस सम्बन्धमें हमारे ज्ञान लाभार्थ पुष्कल सामग्री एकत्र कर दी है। पाश्चात्य विद्वान् जिस विषयमें आज भी अपनी अज्ञानता और कठिनाइयोंका अनुभव करते हैं, उस स्वप्नकी माया पर हमारे पूर्वजोंने नितान्त खोजपूर्ण और उपादेय ग्रन्थोंका प्रणयन किया है। स्वप्नके सम्बन्ध में शकुन-शास्त्रके अन्तर्गत जो विशेष प्रकरण दिये गये हैं उनसे इनका रहस्य जाननेमें यथेष्ट सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त दूसरे २ शास्त्रोंमें भी उपयुक्त विषयोंके अङ्गभूत स्वप्नों पर आवश्यकतासे अधिक साहित्य लिखा हुआ मिलता है। आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें भी स्वप्नका स्पष्टीकरण दिया है। अमुक जातिका स्वप्न अमुक रोगके आक्रमणका सूचक है। इस प्रकारका वर्णन उपर्युक्त ग्रन्थोंमें स्थान २ पर पाया जाता है। एतद्देशीय आयुर्वेद शास्त्रमें स्वप्नों को क्रमशः ७ प्रकारोंमें विभाजित किया है। वे स्वप्नोंके सात प्रकार नीचे लिखे अनुसार हैं :—

(१) **दृष्ट**—मनुष्यने कोई भयानक, करुण, श्रृंगारिक या विशिष्ट प्रकारकी मानसिक अनुभूति का प्रसङ्ग आंखों देखा हो और कुछ समयोपरान्त उसी प्रसंगको वह स्वप्नमें देखे तो इस प्रकारके स्वप्नको 'दृष्ट स्वप्न' कहते हैं।

(२) **श्रुत**—अनेक अवसरों पर हम दूसरोंके मुंह जिन प्रसंगों और घटनाओंकी चर्चा सुनते हैं, उनकी हमारे मस्तिष्क पर पर्याप्त छाप पड़ जाती है। और समय २ पर इन प्रसंगोंकी स्मृति हमें गुलाबी सपने दिया करती है। शास्त्रमें ऐसे ही स्वप्नको "श्रुत स्वप्न" अभिहित किया है।

(३) **अनुभूत**—मनुष्यको उसकी दैनिक जीवन-घटनाएं भी सपने देती हैं। इन घटनाओंका स्वप्न ही "अनुभूत स्वप्न" कहा गया है।

(४) **प्रार्थित**—अपनी इष्ट वस्तुके प्राप्त न होने पर मनुष्य बारम्बार उसका चिन्तन करता है और इस चिन्तनके कारण उसकी इच्छित वस्तु उसे जागृतिमें नहीं तो स्वप्नमें अवश्य ही प्राप्त होती है। शास्त्रमें इसे "प्रार्थित स्वप्न" बताया है।

(५) **कल्पित**—मनुष्यमें स्वभावतः यह बात विद्यमान है कि उसे प्रत्यक्ष जगत्में जो वस्तुएं प्राप्त नहीं होतीं, उसकी वह व्यर्थ कल्पना करता रहता है। बेकारी और अन्न-कष्टसे पीड़ित मनुष्योंकी कल्पनाओं का पूछना ही क्या, मनमानी कल्पना करने और वायवी दुर्ग (हवाई किले) बांधनेमें ही उनके दिन व्यतीत होते हैं। ऐसी कल्पनाओंके प्रभावसे यदि मनुष्य उन्हें ज्योंकी त्यों स्वप्नमें भी देखता है तो इस भांतिके स्वप्नोंको "कल्पित स्वप्न" कहते हैं।

(६) **भाविक**—स्वप्नोंका यह एक विशेष प्रकार है। किसी कार्य वश जाते हुए मार्गमें अमुक व्यक्तिसे भेंट होना, अमुक जातिके पशुओंको देखना, अपने आसपाससे नाना जीवोंके शब्दोंका सुनना इत्यादि इत्यादि अनेक अवसरों पर शकुन अपशकुनके सूचक सिद्ध होते हैं। इसी भांति कई स्वप्न जो

मानवकी भावी जीवन घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं उन्हें स्वप्न शास्त्रमें "भाविक स्वप्न" कहा है।

(७) दोषज—स्वप्नोंका यह सबसे अन्तिम प्रकार है। मनुष्यके शरीरमें मलिनता व्याप्त होने पर उसकी प्रकृति ठिकाने नहीं रहती। शरीरमें मल अथवा दूसरे अप्रत्यक्ष दोष सञ्चित हो कर मनुष्यको नाना प्रकारके स्वप्नोंके संसार दिखलाते हैं। इस विकृतावस्थामें वह अगणित स्वप्नोंको देखता और अनुभव करता है। इस जातिके स्वप्न "दोषज स्वप्न" कहलाते हैं। एक पश्चिमी विद्वान्का कथन है:—

"Every dream is the fulfilment of a wish."

अर्थात् प्रत्येक स्वप्न किसी एक वासनाका प्रतिबिम्ब है, अथवा इच्छाओंकी पूर्णताको बतलाता है और यह बात इस परसे भली-भांति स्पष्ट है कि मनुष्यके हृदयमें संख्यातीत वासनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। इन वासनाओंके दो भाग हो सकते हैं। ज्ञात-वासना और अज्ञात-वासना। मुझे धन मिल जाय या मैं अमुक परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाऊँ यह 'ज्ञात-वासना' है। और 'अज्ञात-वासना' वह है जिसके आस्तित्वको हम आप नहीं जानते। हमने अमुक प्रकारकी वासना कभी की थी या हमारे मनमें उसका उदय था या नहीं, इसकी रञ्च मात्र भी हमें स्मृति नहीं रहती। पर स्वप्नमें हम उसके उदय और विचित्र बनावको देखकर विस्मय विमुग्ध हो उठते हैं। इस प्रकार स्वप्न मीमांसा दो मुख्य वासनाओंका समर्थन कराती हैं। विषयको स्पष्ट करने के लिए साधारणतः यह कह सकते हैं कि छोटे बालकोंके स्वप्नमें ज्ञात-वासना और प्रौढ़ावस्थाके पुरुषोंके स्वप्नमें अज्ञात-वासनाका बाहुल्य होता है। कारण यह कि नन्ही अवस्थाके बालकोंका मानसिक जीवन अत्यन्त सरल होता है। अतः उनके जीवनमें अज्ञात-वासना नहीं होती, वे उन्हीं कामनाओंको कर सकते हैं, जिनका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान होता है।

इधर प्रौढ़ मनुष्यके स्वप्नोंमेंसे वासनाके अस्तित्वको ढूँढ़ निकालना नितान्त कठिन है। क्योंकि साधारणतया इनके स्वप्नमें किसी ज्ञात-वासनाकी प्रतिच्छाया नहीं होती। इसके विपरीत उनमें अज्ञात-वासनाका ही अधिक भाव होता है। प्रौढ़ मनुष्योंका मानसिक जीवन बालकों जैसा सरल और बोधगम्य नहीं होता। इस अवस्थामें आशाएँ मनुष्यको टिड्डी दलकी भांति घेरे रहती हैं। अतः उसे अलग अलग परिस्थितियोंमें रह कर अलग अलग वस्तुओं और अलग अलग पद्धतियोंको देखने और अनुभव करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। इससे उसके मनमें रात दिन नाना प्रकारकी धारणाएँ उत्पन्न होती हैं। पर वह प्रत्येक प्रकारकी धारणाको आदर-पूर्वक स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि उसे समाज, धर्म और राज्यशासनको ध्यानमें रखकर चलना पड़ता है। अतः पार्थिव संसारमें जिस प्रकार शक्ति-संरक्षण (Conservation of Energy) का सिद्धान्त सत्य सिद्ध है, उसी प्रकार मानसिक संसार-में धारणा-संरक्षण (Conservation of Idias) के सिद्धान्तकी मान्यता है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। दिनमें जागृत अवस्थामें हम जिन वासनाओंको सहसा भूल बैठते हैं, निन्द्रावस्थामें वही वासनाएँ स्वप्नरूपसे अनायास सामने आ पहुँचती हैं। इसकी सत्यता सर्वथा अनुभव सिद्ध है।

स्वप्न प्रत्येक मनुष्यको नित्य ही आते हैं। किन्तु, वे सबके सब स्मरण पटल पर स्थिर नहीं रहते। केवल स्पष्ट सम्बन्धवाले और तर्क युक्त स्वप्न या उनका भाग-विशेष स्मरण रह जाता है। सार्थक स्वप्न और डंकेकी चोटका फल देनेवाले स्वप्न भी भुलायेसे नहीं भूलते। देखा जाय तो स्वप्नोंका स्मरण रहना अपनी अपनी स्मरणशक्तिकी तीव्रता पर आधारित रहता है। एक प्रसिद्ध लेखकका कथन है कि स्वप्नको बारम्बार स्मरण करनेका प्रयत्न करना अनुचित है। जो मनुष्य स्वप्नके विषयमें अधिक विचार करता है वह या तो किसी सीमा तक विक्षिप्त स्वभावका है या उसके मस्तिष्कको कोई

विकार हो गया है। अनुभवी पुरुषोंका कथन है कि विक्षिप्त प्रकृतिका मनुष्य अपने स्वप्नोंके विषयमें अधिक सोच विचार करनेका अभ्यासी होता है। आयुर्वेदके मतानुसार जिसे रात्रिमें अधिक स्वप्न आते हों, जो एकाधिक स्वप्न बार बार देखता हो, उसकी शारीरिक स्थिति और प्रकृति बिगड़ी हुई जानना चाहिए। जिसे अधिक स्वप्न दिखाई दें उसको प्रगाढ़ निद्रा हो ही नहीं सकती और जिन्हें प्रगाढ़ निद्राका अनुभव होता है उन्हें स्वप्न अत्यन्त स्वल्प प्रमाणमें दिखाई देते हैं। स्वप्नोंके अनुभव और उन्हें स्मरण रखनेके सम्बन्धमें व्यक्ति-भेद पाया जाता है। अवस्थाकी दृष्टिसे भी स्वप्नोंके प्रकार और संख्याके भेदाभेद परिलक्षित होते हैं। एक अनुभवी लेखकका कहना है कि बालकको अधिक और प्रौढ़ अवस्थावालेको बहुत थोड़े स्वप्न आते हैं। परन्तु प्रौढ़ व्यक्तिके स्वप्न प्रायः सम्बन्धित होते हैं। बालकोंकी भांति स्त्रियाँ भी अधिक स्वप्न देखती हैं। इसका यह कारण है कि उन्हें स्वच्छ जलवायु नहीं मिलती। घर आँगनकी संकुचित सीमित परिधिमें उन्हें रहना पड़ता है। जङ्गली मनुष्योंकी अपेक्षा विचारवान् पुरुष भी अधिक स्वप्न देखते हैं। स्वप्न विशारदोंका इसमें एक ही मत है कि मनुष्यके मस्तिष्क पर जितना अधिक दबाव पहुँचता है, स्वप्न भी उतने ही अधिक और कई बार आते हैं। रोगकी अवस्थामें विशेष प्रकारके स्वप्नोंका दीखना स्वाभाविक है। हिस्टीरिया आदि रोगोंकी अवस्थामें एकाएक अलग ढंगके स्वप्न देखनेमें आते हैं।

एक डूबते हुए मनुष्यका उदाहरण देते हुए एक मनोवैज्ञानिकने बताया है कि एक डूबे हुए मनुष्यको बचाये जाने पर यह जाना गया कि वह अखण्ड जलराशिमें दो मिनट पर्यन्त एकाएक अचेत और बेसुध रहा था। इस बीचमें उसे अपने सारे जीवनकी घटनाएँ स्मरण हो गयीं। उसके बाल्यकालसे ले कर ५० वर्षकी आयु तककी समस्त घटनाएँ एक सिनेमा फिल्मके रूपमें उसकी स्मृति पटल पर घूम गयीं। इस प्रकार स्वप्नावस्थामें वर्षोंका अनुभव क्षणोंमें चित्रपटकी भांति सामने फिर जाता है। और जागृत अवस्थाका एक क्षण, स्वप्नावस्थाका एक वर्ष भी बन सकता है। किसीको रात्रिमें ३-४ से भी अधिक स्वप्न दीखते हैं। और किसी किसीको एक ही स्वप्न आता है। पशु पक्षियोंको भी स्वप्नानुभूति होती है और वे मनुष्योंके स्वप्नोंसे लगते हुए स्वप्न देखते हैं।

स्वप्न-विशारदोंके मतानुसार बड़ेसे बड़ा स्वप्न केवल मात्र १० मिनिट पर्यन्त स्थायी रहता या लगातार दिखाई देता है। और इससे अधिक समय तक कोई भी स्वप्न चालू नहीं रहता। स्वप्न देखनेके पश्चात् यदि मनुष्य पुनः निद्रा लेनेका प्रयत्न न करे तो वह स्वप्न विशेष फलदायी होता है। अशुभ स्वप्न देखनेके पश्चात् यदि तुरन्त ही दूसरा स्वप्न आजाए तो वह भी श्रेष्ठ फल प्रदान करता है। और तब पहिलेके बुरे स्वप्नका कुछ भी प्रभाव नहीं रह जाता। जिसके शरीरमें वायु पित्त और कफ कुपित हो कर शरीरको विकृत बना डालते हैं उसे स्वप्नोंका टोटा नहीं रहता. अर्थात् स्वप्न फिर उसका पीछा नहीं छोड़ते। इस प्रकारके स्वप्न "दोषज स्वप्न" कहे जाते हैं।

स्वप्नोंका संसार अपनी विचित्रताका आप ही प्रमाण है। पर जन-साधारणका स्वप्नके प्रति अविश्वास देख कर हम इससे उनके भोलेपनका ही तात्पर्य लेंगे। क्योंकि प्रधान-मस्तिष्क और लघु-मस्तिष्कके क्रिया कलाप और भेदाभेदको न जाननेसे ही लोगोंमें स्वप्नोंके लिए पूर्ण जिज्ञासा और आदरका एकान्ताभाव बना है। स्वप्नका अद्भुत और विचित्र संसार रहस्यसे कभी रिक्त नहीं हो सकता। हमारे प्राचीन ग्रन्थ इसकी मीमांसामें स्पष्ट विघोषित कर रहे हैं कि स्वप्नका एक अलग विज्ञान है और बिना उसका अध्ययन किये कोई भी इसमें पारङ्गत होनेका अभिमान नहीं कर सकता। जो स्वप्न विषयको रहस्यहीन और थोथा जानकर इसकी हँसी उड़ाते और इसके प्रति उदासीन रहते हैं वे एक बार इस विषयका पूरा पूरा अभ्यास कर देखें। हमारा एकान्त विश्वास

❀ अर्थशास्त्रीसे ! ❀

[लेखक—श्री भगवान्दासजी केला]

[लेखक भारतीय ग्रन्थमाला दारागंज प्रयागके संस्थापक और संचालक हैं। राजनीति और अर्थ-शास्त्रके विद्वानों में आपका प्रमुख स्थान है। नागरिक राजनैतिक और आर्थिक साहित्यका निर्माण करके अपनी ग्रन्थमाला द्वारा आपने पर्याप्त ख्याति एवं यश प्राप्त किया है। उक्त ग्रन्थमालाकी ४२ पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनमेंसे ३७ इस समय उपलब्ध हैं। प्रत्येक पुस्तक ज्ञानवर्द्धक रोचक एवं पठनीय है। हम अपने पाठकोंसे अनुरोध करेंगे कि वे श्री केलाजीकी साहित्य सेवासे (ग्रन्थोंसे) अवश्य लाभ उठावें। 'श्रीस्वाध्याय' के लिए अभी आपने यह छोटासा किन्तु ज्ञातव्य लेख भेजा है, वह यहां प्रकाशित किया जाता है। —सम्पादक]

मैंने एक अर्थशास्त्रीके पुत्रसे पूछा— "कहो जी ! तुम भी अर्थशास्त्री बनोगे ?"

'क्यों नहीं ? हम भी अर्थशास्त्री बनेंगे।' लड़केने हँसते हुए उत्तर दिया।

'क्यों भाई ! अर्थशास्त्र पढ़नेसे क्या होता है ?' मुझे उस लड़केसे बात करनेमें आनन्द आ रहा था।

'अर्थशास्त्र पढ़नेसे यह ज्ञान होता है कि किस प्रकार पर्याप्त मात्रामें द्रव्योपार्जन किया जाय, और सम्पन्न (मालदार) बना जाय।' लड़केने तुरन्त उत्तर दिया।

'अच्छा, तुम धनाढ्य (मालदार) हो जाओगे। पर तुम अपने धनका करोगे क्या ?' बातचीत आरम्भ रखते हुए मैंने पूछा।

'क्या करोगे ? खूब खायें-पीयेंगे, मौज करेंगे, मोटर रक्खेंगे, मकान बनवायेंगे।' लड़केने प्रश्नको अनावश्यक-सा समझते हुए कहा।

'और ?'

'और ? धन जोड़ कर रक्खेंगे।'

अर्थशास्त्रकी शिक्षाके सम्बन्धमें ये हैं एक बालकके विचार। और बालकका ही क्यों, प्रायः बड़ी आयु वालोंका भी तो दृष्टिकोण कुछ ऐसा ही होता है।

अर्थशास्त्री जी ! तुमने इस विषयका पर्याप्त अध्ययन किया है। सिद्धान्तिक वादविवादमें तुम खूब कुशल हो। तुम्हारे शब्द चाहे जो हों, तुम्हारी भाषामें चाहे जितना पांडित्य और विद्वत्ता हो, क्या तुम्हारा भाव संक्षेपमें वही नहीं है जो उस भोले बालककी स्वाभाविक भाषामें व्यक्त हुआ है। कमसे कम व्यावहारिक बात तो यही प्रतीत होती है। तुम्हारी दृष्टि सदैव धन पर रहती है। कोई काम करने योग्य है या नहीं, इसकी कसौटी तुम्हारे विचारसे यही है कि उससे धन मिलता है या नहीं। जिस कामसे जितना अधिक धन प्राप्त होगा, उतनी ही तुम उसकी उपयोगिता अधिक मानते हो। यद्यपि

है कि उन्हें निराशा नहीं होगी और वे इससे अपने लिए कौतूहल तथा ज्ञानकी नई सामग्री ही प्राप्त करेंगे। स्वप्न-विज्ञान एक साङ्केतिक-विद्याके समान है, जिससे हमें जीवनके उतार चढ़ावके लिए प्रतिदिनकी साधारण और महत्त्वपूर्ण घटनाओंके लिए स्पष्ट सङ्केत मिलते रहते हैं। यदि उन सङ्केतोंको जानने और तदनुसार प्रयासी होनेके ठीक ठीक भाव का उदय हो सके तो हम अपने जीवनमें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर सकते हैं। पाठकोंको यह विषय रुचिकर हुआ तो "स्वप्नके सत्य अनुभव" के रूपमें हम इस पर धारावाहिक लेख लिखनेका प्रयत्न करेंगे। प्रस्तुत लेखमें उसकी प्रस्तावना मात्र दी गई है।

कहनेको तुम यह कहा करते हो कि धन (मनुष्य या समाजके लिए) व्यय करनेको ही होता है, पर व्यवहारमें प्रायः यह बात भुला दी जाती है। मुख्य लक्ष्य धन रहता है, व्यक्ति या समाजका हित नहीं। क्या तुम आतशबाजी नशे या विलासिताकी वस्तु बनानेके श्रमको 'उत्पादक' श्रम नहीं कहते ? यद्यपि यह सर्व विदित है कि इससे समाजको भयङ्कर क्षति पहुँचती है। तुम तो शायद सिद्धान्तसे चोरी करने वालेके श्रमको भी उत्पादक श्रम कह सकते हो। इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य केवल अपने मनोरञ्जन या मानसिक शान्तिके लिए अच्छे साहित्यका अवलोकन करता है, या निस्वार्थ भावसे दूसरोंको सुनाता है तो तुम उसके श्रमको 'अनुत्पादक' कहोगे। तुम्हारी दृष्टिमें निष्काम कार्यका कुछ महत्त्व नहीं, प्रत्येक कार्य स्वार्थ साधन होने न होनेके आधार पर ही उत्पादक या अनुत्पादक ठहराया जाता है। इस प्रकार यदि सबके सब मनुष्य 'उत्पादक' कार्य करने में लगे रहा करें तो यह मानव-जीवन कितना शुष्क रसहीन हो जाय। प्रेम, दया, उदारता आदिका इसमें कुछ स्थान न रहनेकी दशामें यह जीवन क्या मनुष्योंके योग्य रह सकता है ?

अर्थशास्त्रीके विचारसे उत्पत्ति या उत्पादन-कार्य का लक्ष्य लाभ (मुनाफा) है। जिन-जिन उपायों या तरीकोंसे लाभका परिमाण बढ़ाया जा सकता है, उनकी ओर प्रतिक्षण तुम्हारी दृष्टि लगी रहती है। इसी लिए तो अर्थशास्त्रमें बड़ी मात्राकी उत्पत्ति ('लार्ज स्केल प्रोडक्शन') और मशीनोंका इतना गुणगान किया जाता है। अपनी निष्पक्षता दिखानेके लिए अर्थशास्त्र इनके कुछ दोष भी गिना देता है, परन्तु उन्हें विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता, गुणों का पलड़ा ही भारी रक्खा जाता है। पाठकों पर यह प्रभाव डालनेका प्रयत्न किया जाता है कि कुल मिला कर बड़ी मात्राकी उत्पत्ति, और मशीनें अत्यन्त लाभकारी हैं। देशकी धन-वृद्धिके लिए इनका अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिए। जिस कामको आज सौ मनुष्य कर रहे हैं, उसे मशीनके सहारे केवल दस मनुष्य कर सकें और नव्वे ६० श्रमजीवी मनुष्योंका वेतन बच सके, तो क्यों न मशीनसे काम लिया जाय। इस प्रकार छोटे कलाकौशल (दस्तकारियों) और घरू उद्योग धंधोंका ह्रास करके और बड़े पैमानेकी उत्पत्तिका प्रचार करके तुम पहले तो बेकारीका रोग बढ़ानेमें सहायक होते हो, और पीछे इसे दूर करनेके लिए कुछ मरहम पट्टीकी योजना करते हो। उस पद्धतिका ही तुम प्रबल विरोध क्यों नहीं करते, जो इस रोगको जन्म देती है, और बढ़ाती है।

एक शुष्क वैज्ञानिककी भांति तुम इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हो कि पदार्थोंका मूल्य माँग और पूर्तिके नियमके अनुसार निर्धारित होता है। यही नियम तुम पारिश्रमिक (मजदूरी) के सम्बन्ध में भी लगाते हो। तुम्हारी दृष्टिसे पारिश्रमिक एक क्रय-विक्रयका पदार्थ है, तुम इसे अपने अनेक बन्धुओं के जीवन-मरणके प्रश्नके रूपमें नहीं देखते। श्रमजीवी अपना भलीभांति निर्वाह करे, और सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करे, इसके लिए उन्हें कितना पारिश्रमिक मिलना चाहिए, यह प्रश्न तुम नीतिशास्त्रियों के लिए छोड़ देते हो।

अर्थशास्त्रीजी ! तुम्हारा 'माँग और पूर्ति' का नियम बड़ा निर्दयी है; अथवा यह कहना ठीक होगा कि तुम उसका उपयोग करनेमें बड़ी हृदयहीनताका परिचय देते हो। यदि किसी गृहस्थ पर कोई आकस्मिक विपत्ति आ जाय, और वह अपनी वस्तु (माल) सस्ते मूल्यमें लुटाने पर बाध्य हो तो यह जानकर कि इस मालकी मांग करने वाले खरीदार कम हैं, तुम ऐसे अवसरका स्वागत करनेको कैसे उत्सुक रहते हो। यदि किसीके घरमें आग लग जानेसे उसका सामान कुछ बिगड़ जाय और तुम्हें वह नाम मात्रके मूल्य पर मिलता हो तो तुम उसे लेनेसे कब चूकने वाले हो। और, इस बातकी तो तुम्हें हर समय खोज ही रहती है कि कहीं अनाथों विधवाओं या अन्य दुर्दशाग्रस्त मनुष्योंकी सम्पत्ति बिके और साधारण सा व्यय करनेसे ही वह तुम्हारे अधिकारमें आ

जाय। कब दूसरों पर सङ्कट हो और तुम्हारी बन आवे! क्या तुम अपने अर्थशास्त्रमें इस 'मांग और पूर्तिके' नियमकी सिद्धान्तिक चर्चा करना ही पर्याप्त समझते हो? क्या इस नियमके भयङ्कर दुरुपयोगकी ओर भी यथेष्ट ध्यान देना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है?

अर्थशास्त्रीजी! तुम्हारी नीतिका मूल सूत्र यह रहता है कि थोड़ेसे थोड़े व्ययसे अधिकसे अधिक माल तैयार करके उसे पर्याप्त लाभ (मुनाफे) से बेचा जाय। इस नीतिका फल यह है कि कोई माल उत्पादन करते समय इस बातका विचार नहीं किया जाता कि जनताको वास्तवमें उसकी आवश्यकता है या नहीं। मुख्य लक्ष्य यह रक्खा जाता है कि जो माल तैयार हो वह बिक जाय। यही कारण है कि अनेक बार जीवन-रक्षक पदार्थोंकी उत्पत्ति न कर, ऐसे पदार्थ उत्पन्न करनेमें शक्ति लगाई जाती है, जिनकी मांग केवल विलासिता या शौकीनीके लिए होती है। यदि यह पदार्थ देशमें पर्याप्त खपता हो तो इसके लिए विदेशोंमें बाजार ढूंढे जाते हैं। यदि दूसरे देश निवासी इन्हें क्रय करनेसे अस्वीकार करते हैं तो उन पर ये छल-बल-कौशलसे लादे जाते हैं, यहां तक कि इसके लिए उनसे भयङ्कर युद्ध ठाननेमें भी सङ्कोच नहीं किया जाता। कोई उन्नत और सबल राष्ट्र स्वयं चाहे जितने समय तक व्यापार-संरक्षण (प्रोटेक्शन) नीतिसे काम लेता रहा हो और भविष्यमें भी चाहे जब इस नीतिको अपनानेको तैयार हो, दूसरे देशोंसे मुक्त-द्वार व्यापारका ही व्यवहार चाहता है और अपने राज्यका रुख देख कर अर्थशास्त्री वैसा ही उपदेश पाठकोंको देता है। क्या शास्त्रवेत्ता और शास्त्र-प्रेमी कहे जाने वाले व्यक्तिसे यह आशा न की जाय कि वह स्वतन्त्रतापूर्वक सत्यका प्रचार करे?

अर्थशास्त्रीजी! क्या-क्या कहूँ। एक ही बात की ओर तुम्हारा ध्यान और दिलाता हूँ। क्या प्रत्येक समय धन ही धनकी पुकार होना उचित है? क्या प्रत्येक उत्पादनका और प्रत्येक व्यापार व्यवसायका उद्देश्य लाभ ही होना चाहिए? क्या मानव जीवन की उपयोगिता केवल यह है कि किसी भी प्रकार मुनाफेके द्वारा खूब धन संग्रह किया जाय, चाहे उससे देश और समाज पर सङ्कट आए, और चाहे संसारमें महायुद्धसे विनाश कार्य हो? यह ठीक है कि मनुष्यका उद्देश्य सुख शान्ति प्राप्त करना है, और इसके लिए एक सीमा तक अर्थोपार्जन आवश्यक है। अपने निर्वाहके लिए परिश्रमपूर्वक धन कमाना ठीक है, परन्तु हर बातमें मुनाफे पर दृष्टि रखते हुए काम करने अनुचित ही हैं। केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में लगे रहनेसे चाहे जितना द्रव्य संग्रह किया जाय, वह अन्ततः सुख शान्ति देने वाला नहीं होता। वास्तविक सुख शान्ति तो उसे ही प्राप्त होती है, जो दूसरों की सेवा और परोपकारका यथेष्ट ध्यान रखता है, जिसका विचार-क्षेत्र विस्तृत है, जो अपने ग्राम नगर या राज्यमें ही नहीं, विश्वभरमें अपनेपनका अनुभव करता है। इसलिए हमारी विविध क्रियायें या श्रम केवल 'आर्थिक' न हो कर लोकहित-मूलक होनी चाहिएँ। यही सच्चा अर्थशास्त्र है; आधुनिक अर्थशास्त्री इसे मान्य करें या न करें। अर्थशास्त्रके नामसे जो कुछ आज दिन पढ़ा-पढ़ाया जाता है, वह तो स्वार्थशास्त्र है; नहीं नहीं उसे शास्त्रका नाम देना ही भूल है। और उससे सच्चे स्वार्थका भी तो ज्ञान नहीं होता। हमारा सच्चा स्वार्थ जनता या संसारके स्वार्थमें ही है, उससे पृथक् नहीं। आह! इस विश्वमें सच्चे अर्थशास्त्रका प्रणयन और प्रचार कब होगा? अर्थशास्त्रीजी! क्या तुम इस पवित्र कार्यमें कुछ योग दोगे?

रुपएका मूल्य ह्रास

[लेखक—श्री अवनीन्द्रकुमार जी विद्यालङ्कार]

जीवन-निर्वाह व्यय दिन-प्रति-दिन 'जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तस तस कपि निजरूप दिखावा।।' के समान बढ़ता जाता है। मासिक व्ययका बनाया बजट प्रति मास बदलना पड़ता है। अकल्पित दैनिक व्यय बढ़ रहा है। खाद्य पदार्थों, कपड़ा और जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओंका भाव बढ़ता जाता है। महंगी आज निर्धन (गरीब) को खाए जा रही है। इसका विकराल रूप कब अदृश्य होगा, यह कोई नहीं जानता। जन साधारण तो इतना जानता है कि जो एक रुपया पहले उसके घर आठ सेर दूध लाता था, अब वह केवल ३ सेर या चार सेर लाता है। गेहूँ रुपएका अब तीन या साढ़े तीन सेर ही आता है। घी चार छटाँक आता है। सोना जो २१) रु० तोला था, अनन्तर ३२—३६ रु० हुआ, आज वह ७०) रु० तोला है। इससे यह तो वह समझता और अनुभव करता है कि रुपएकी क्रय-शक्ति घट गई है। परन्तु सहसा ऐसा क्यों और कैसे हो गया, इसकी व्याख्या वह नहीं कर पाता। वह तो यह जानता है कि १६४१ के अन्तसे महँगीका जोर बढ़ा है और उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। फरवरी १६४२ में रुपएका आठ सेर गेहूँ मिल जाता था, किन्तु इस वर्ष तीन सेर भी मिलना दुर्लभ हो गया। एक वर्षमें यह परिवर्तन कैसे और क्यों होगया ? क्या मालकी सहसा इतनी कमी हो गई ? किसानों धनियों और मुनाफाखोरोंने स्टाक जमा करके क्या माल रोक लिया ? या मुद्रा-प्रसार अत्यधिक मात्रामें हुआ है और वह 'फुलाव' या 'फुगाव' (इनफ्लेशन) की स्थिति पर पहुँच गया है ? क्योंकि वस्तुओंका भाव बढ़नेके दो मुख्य कारण हो सकते हैं। पहला यह कि मांगके अनुसार वस्तुका अभाव हो या बाजारमें मुद्राका प्रसार इतना हो कि वस्तुओंका मूल्य बढ़ जाय। प्रश्न यह है कि किस कारण वस्तुओंका भाव बढ़ा है ?

प्रत्येक वस्तुका भाव बढ़ा है यह निर्विवाद है। यह भी असन्दिग्ध है कि संयुक्तराष्ट्र अमरीका और ग्रेट ब्रिटेनकी अपेक्षा भारतमें वस्तुओंका भाव अधिक बढ़ा है। इसके साथ यह भी सत्य है कि रुपए के मूल्यमें ह्रास हुआ है। १६१४ में बम्बई बाजार-भावकी निदर्शक संख्या यदि १०० मानी जाय तो १६३६ में वह १०६ थी और जुलाई १६४२ में बढ़ कर वह २२५ हो गई, नवम्बर १६४२ में २२८ होगई। और वह निरन्तर बढ़ती जा रही है। यही बात कलकत्ता बाजारभावकी निदर्शक संख्या सूचित करती है। १६३६–४० में यह ११५ थी और नवम्बर १६४२ में २२७ हो गई। संयुक्तराष्ट्र और ग्रेटब्रिटेनके अद्यतन आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु जो प्राप्त हैं उनमें उल्लेख योग्य बात यह है कि दिसम्बर १६४० से दिसम्बर १६४१ के बीच कलकत्ता और बम्बई की थोक निदर्शक संख्या क्रमशः २४ बिन्दु और ४३ बिन्दु ऊपर चढ़ गई। इसी अवधिमें ग्रेटब्रिटेन और संयुक्तराष्ट्र अमरीकामें क्रमशः ७ और १४ बिन्दु बढ़ीं। उल्लेख योग्य बात यह है कि भारतमें भाव इसके पश्चात् बहुत अधिक बढ़े हैं। इस सम्बन्धमें दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रुपएके मूल्यमें आन्तरिक दृष्टिसे अवनति हुई है, उसी प्रकार बाह्य दृष्टिसे भी हुई है। राष्ट्रसंघ द्वारा प्रकाशित 'मनी एण्ड बैंकिंग १६४०–४२' नामक पुस्तकसे ज्ञात होता है कि दिसम्बर १६३८ में रुपया ३४.३६ सेण्टके समान और मार्च १६४२ में वह ३०.१२ सेण्टके समान रह गया। इसके विपरीत जो मानते हैं कि मुद्रा-प्रसारके कारण वस्तुओंके भावमें तेजी नहीं आई, उनका कहना है कि भावोंकी तेजी चरमसीमा

पर नहीं पहुँची है। १८६६–१६३६ कालका पूर्वार्ध भावोंके चढ़ने और उत्तरार्ध उतरनेका है। १८६८ में जब भाव चढ़ने लगे, तब अखिल भारतीय निदर्शक संख्या १२१ (१८७३=१००) थी और १६२० में ३०२ हो गई थी। अधिक तेजी पिछली लड़ाईमें आई थी। १६१४ में १८७ थी और १६१६ में ३०१ पर पहुंच गई थी। १६३६ में निदर्शक संख्या १३४ थी और जुलाई १६४२ में २०० और नवम्बर १६४२ में २५० बिन्दु पर पहुंच गई है। किन्तु १८७३ साल को इकाई मानने वाले एक बातको ओझल कर जाते हैं कि पिछले युद्धमें रुपएका चार सेर तक गेहूँ मिला था और इस लड़ाईमें रुपएका तीन सेर मिल रहा है। उत्पादनमें २० से ३० प्रतिशत वृद्धि हुई है जब कि मूल्योंमें २१८ प्रतिशत तक वृद्धि हुई है।

फुलाव या फुगाव क्या है ?

युद्ध-रत राष्ट्रका उद्देश्य लड़ाईमें येनकेन प्रकारेण विजय पाना होता है। इसीके अनुसार राष्ट्रकी अर्थ-नीति बदल जाती है, और उसको शान्तिके आधार से बदल करके लड़ाईके आधार पर लाया जाता है। उत्पादन बढ़ाया जाता है और उत्पन्न मालकी मात्रा बढ़ाई जाती है, मजदूरोंको आय अधिक होने लगती है, फलतः साधारण समयकी अपेक्षा माल और सर्विसोंकी मांग अधिक बढ़ती है।

राज्यको युद्ध-व्यय पूरा करना होता है। युद्ध-राजस्वका यह आधारभूत प्रश्न है कि लड़ाईका व्यय पूरा करनेका सर्वोत्तम मार्ग क्या है ? जनताकी देश भक्तिकी भावनाको अपील कर या जनताको बाध्य कर सरकार प्रयत्न करके उन स्रोतोंको ले लेती है, जिनका दूसरी दशामें वह उपभोग न करती। नागरिक जनताकी उपभोगकी वस्तुओंको युद्ध-उद्देश्यकी पूर्तिमें लगाना युद्ध-व्ययको पूरा करनेका सर्वोत्तम मार्ग है। इसलिए सरकार जनताके उपभोग पर पाबन्दी लगाने में विशेषरूपसे दिलचस्पी रखती है। नागरिक जिन वस्तुओंके बिना काम चला सकते हैं, या जिनको लड़ाईके लिए छोड़ सकते हैं, वे सब युद्ध-प्रयत्नमें सहायक होती हैं।

आधुनिक समाजमें यह परिवर्तन वस्तु-विनिमय द्वारा नहीं अपितु मुद्रा द्वारा होता है। राज्य तीन प्रकारसे रुपया लेता है— करों द्वारा, जनताकी वास्तविक बचतको उधार लेकर, और फुलाव (इन-फ्लेशन) द्वारा। पहली दो चीजें आपत्तिजनक नहीं हैं। परन्तु कर एक सीमाके अनन्तर नहीं लगाया जा सकता। जनता पर इसका बुरा प्रभाव होता है। कर इतनी ही मात्रा तक लगाया जा सकता है, जितना जनताकी देनेकी शक्ति है और जितना वह प्रसन्नता व स्वेच्छासे दे सकती है, या जितना भार वह सहन कर सकती है। इससे बाहर कर लगानेका परिणाम विपरीत होगा। युद्ध लम्बा होनेके साथ व्यय बढ़ता जाता है। करोंकी आयसे वह पूरा नहीं हो सकता। राष्ट्र ऋण लेता है। नागरिकोंने अपनी जो आय सञ्चित रक्खी होती है उसको राष्ट्र ऋण में ले लेता है। किन्तु इन दोनों उपायोंके समाप्त हो जानेके अनन्तर भी सरकारके पास एक उपाय शेष रह जाता है। सरकारकी आय और वास्तविक व्ययके बीचके अन्तरको पूरा करनेके लिए सरकार नई मुद्रा उत्पन्न करनेको बाध्य होती है।

सरकार जब इस प्रकार युद्ध-व्ययको पूरा करने के लिए मुद्राका प्रसार करती है, तब उसको अर्थ-शास्त्री 'फुलाव' या 'फुगाव' या इनफ्लेशन कहते हैं। लड़ाईके दिनोंमें युद्धसामग्री, गोलाबारूद, सेनाके वस्त्रों, खाद्यपदार्थों आदिकी मांग अत्यधिक बढ़ जाती है। इस मांगको साधारण उत्पन्न और बड़ी उत्पन्न मात्रासे पूरा करनेका यत्न किया जाता है। किन्तु पूर्ति सीमित रहती है। जहाजोंकी कमीके कारण कुछ चीजें प्राग् युद्ध-कालकी दर पर नहीं दी जा सकतीं। फलतः राशनिंग किया जाता है। नाग-रिकोंके लिए आटा दालकी मात्रा निश्चित कर दी जाती है। जब राज्य नये सिक्के ढालता या छापता है, और अपनी खरीदका मूल्य इस नये धनसे चुकाता है, तब नये सिक्के ढालने या नोट छापनेसे पहलेकी अपेक्षा बाजारमें जितनी मुद्राका चलन था उससे अब चलनमें मुद्राकी मात्रा बढ़ जाती है। यह प्रसृत मुद्रा जब जनताके हाथमें पहुँचती है तब सीमित

माल और सर्विसों पर और अधिक दबाव बढ़ता है और भाव और अधिक ऊंचे चढ़ जाते हैं। अतः हम 'फुलाव' की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं—

मुद्राके अनुचित प्रसारके फलस्वरूप जब कि उसी अनुपातमें समाजके पास उपभोगके लिए माल और सर्विसें नहीं बढ़तीं, कीमतोंकी आम सतह असाधारण रीतिसे ऊपर चढ़ सकती है। उस समय समझना चाहिए कि 'फुलाव' या इन्फ्लेशन मौजूद है। डा० गोल्डन वेजरने इसको इस रीतिसे स्पष्ट किया है— फुलाव उस समय उत्पन्न होता है जब कि प्राप्त पूर्ति—सप्लाई—की अपेक्षा उपभोगके माल और सर्विसोंके लिए मुद्राकी मात्रा सक्रिय रूपसे तेजीसे बोलने लगती है और जब कि राष्ट्रकी आमदनी मुद्रा इकाइयोंमें भौतिक इकाइयोंमें उत्पन्न की अपेक्षा अधिक बढ़ जाती है।

परन्तु युद्ध-कालमें भाव सदा 'फुलाव' के कारण नहीं चढ़ते। मुद्राका कोई दोष न होने पर भी कीमतें बढ़ जाती हैं। अनिश्चित और अस्थिर अवस्थाका लाभ उठा कर सटोरिये सट्टा करके भाव चढ़ा देते हैं, मुनाफेखोर व्यापारी माल न बेच कर और अधिक नफा पानेकी आशासे मालको रोके रखते हैं। यदि मांग और पूर्तिकी शक्तियोंको कायम करनेके लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय, तब भी कीमतें चढ़ जायेंगी। क्योंकि पूर्ति सीमित होती है और मांग निरन्तर युद्ध-कालमें बढ़ती जाती है। लड़ाईके प्रारम्भमें दाम जो चढ़ते हैं उसका कारण मुद्रा नहीं होती। परन्तु जब दाम चढ़ने लगते हैं, तो नौकरीपेशा लोग अधिक वेतन की मांग करते हैं। प्रायःकर के वे सफल होते हैं। गवर्नमेण्ट इस बात के लिए उत्सुक रहती है कि जनता कमसे कम चीजोंसे अपना जीवन निर्वाह कर ले और इस प्रकार वह जनताके उपभोगके स्रोतोंको एक एक करके अपने हाथमें लेनेके लिए नई मुद्रा छाप कर या ढालकर बाजारमें भेज देती है। क्रय-शक्तिकी इस वृद्धिसे दाम और अधिक चढ़ जाते हैं। इस प्रकार 'फुलाव' का दूषित चक्र चल पड़ता है। इसमें चढ़ता मूल्य ऊँची मुद्रा आयका अनुसरण करता है। जिससे कि मूल्य और ऊँचा चढ़ जाता है। यदि इन दो प्रवृत्तियोंको— मूल्यके चढ़ने और बढ़ी क्रय-शक्तिको बेरोकटोक छोड़ दिया जाय— तो एक उभाड़से और दूसरी गतिके कारण ये बराबर ऊँचे ही ऊँचे चढ़ते जाते हैं। पिछली लड़ाईके बाद जर्मनी में यही हुआ था। कागजी मार्कका मूल्य उसके स्वर्ण मूल्यके दस खरबका एक हिस्सा रह गया था; १९२४ में १००,००,००,००,००,०० कागजी मार्कके बदले नवीन एक रीश मार्क मिलता था।

उपर्युक्त परिभाषाको दृष्टिमें रख कर विचार करना चाहिए कि भारतमें फुगाव या फुलाव है या नहीं। सितम्बर १९३९ में लड़ाई आरम्भ हुई, मगर इसका असली प्रभाव जापान द्वारा युद्ध-घोषणा करने के बादसे विशेष रूपसे प्रतीत होने लगा। लड़ाई छिड़ने पर बाजारमें एक बार घबड़ाहट होने पर व्यापारियोंने चीजोंका भाव चढ़ा दिया। परन्तु यह वृद्धि टिकी नहीं रही। विदेशसे मालके बन्द हो जाने और देशमें युद्ध कार्यके लिए मालकी मांग बढ़नेसे अपरिहार्य रूपसे जो वृद्धि होनी थी, वह उस समय टिकी रही। और इससे आगे भी बाजार-भाव थोड़ा थोड़ा बढ़ता रहा। परन्तु १९४१ के अन्त भाग से बाजार-भाव तेजीसे चढ़ने लगा वह बराबर बढ़ता गया, और उसमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आई। इसका कारण यही है कि कागजी चलनी नोटोंकी संख्या बढ़ने लगी और रुपएका मूल्य गिर गया। कागजी चलनी नोटोंमें हुई वृद्धि दर्शनीय है—

		चलनी नोटोंकी संख्या
अगस्त १९३९	....	१७९ करोड़ रु०
मार्च १९४०	....	२०८ करोड़ रु०
मार्च १९४१	...	२४१ ,,
जुलाई १९४१	....	२७७ ,,
मार्च १९४२	....	३०८ ,,
जुलाई १९४२	....	४५० ,,

२५ सितम्बर १६४२	५१४·१६ करोड़ रु०	
१३ नवम्बर १६४२	५३५	,,
दिसम्बर १६४२	५७०	,,
१५ जनवरी १६४३	५८६	,,
५ फरवरी १६४३	६०२	,,

कागजी मुद्रामें कितना विस्तार हुआ है यह उपर्युक्त अङ्कोंसे स्पष्ट है। २० फरवरी १६४२ से २६ फरवरी १६४३ के एक वर्षके अन्तरमें साढ़े तीन करोड़ रु० अधिकके चलनी नोट निकले हैं—

(अङ्क हजारोंमें)

	१६४२ २० फरवरी	१६४३ १६ फरवरी	१६४३ २६ फरवरी
नोट बैङ्कोंमें	१०४६४३	१२२४१४	११८७३०
नोट चलनमें चालू	३५०१६२६	६११७१६१	६१४३५६८
कुल योग	३६०६८६६	६२३६६०५	६२६२२६८

इस प्रकार एक वर्ष और एक सप्ताहके अन्दर नोटोंकी संख्या ३६५५४२६०००रु०की बढ़ गई। प्रश्न यह है क्या इनका बाजार पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा? इस प्रसङ्गमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इस अर्से में उत्पादनमें वृद्धि केवल २० से ३० प्रतिशत हुई है। मुद्रा और उत्पादनके इस अन्तरको हम फिर क्या कहें? क्या यह 'फुलाव' या 'फुगाव' नहीं है।

पीठ बल

चलनी नोट धड़ाधड़ छापे जा रहे हैं। प्रश्न यह है कि आज अकस्मात् रुपयोंकी वर्षा कैसे होने लगी? इससे पहले क्यों नहीं होती थी? इसके पीछे कोई नियम काम कर रहा है या नहीं? इसका उत्तर एक मात्र यही है कि चलनी नोटोंकी वृद्धिके लिए पहले जो नियम थे उनको सरकारने शिथिल कर दिया है।

भारतमें रिजर्व बैङ्क चलनी नोट निकालता है। रिजर्व बैङ्क एक्टके अनुसार चलनी नोटोंके पीछे (१) स्वर्ण, (२) स्टर्लिङ्ग सिक्यूरिटीज, (३) रूपी सिक्यूरिटीज—भारत सरकारकी हुण्डियां, (४) चान्दी मिश्रित धात्वीय रुपया और एक रुपएके कागजी नोट रक्खे जाते हैं। न्यूनतम स्वर्ण पृष्ठबल ४०करोड़ रु० नियत किया गया है। सम्पूर्ण पृष्ठबलका ४० प्रतिशत स्टर्लिङ्ग और सोनेका होना चाहिए। भारत सरकारके रूपी-सिक्युरिटीज २५ प्रतिशत या ५० करोड़ रु० से— इनमेंसे जो कोई अधिक हो— बढ़ना नहीं चाहिए।

१० फरवरीको ६०४ करोड़ रु० के नोट निकले हुए थे। इनमेंसे ११ करोड़ रु० के रिजर्व बैंकके बैंकिंग डिपार्टमेंटके पास थे; ३४३ करोड़ रुपयेके नोट वस्तुतः चलनमें थे; और इनको ४४ करोड़ रु० के स्वर्ण, ३५५ करोड़ रु० की स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीज भारत सरकारके १८६ करोड़ रु० के ऋणपत्रों और १४ करोड़ रु० रौप्य मुद्राका पृष्ठबल प्राप्त था। स्टर्लिंग और स्वर्ण पूंजी मिलाकर कुल पूंजीका ६६ प्रतिशत है। किन्तु स्वर्णका मूल्य २१ रु० ३ आना १० पाईके हिसाब से लगाया गया है, जब कि आज उसका मूल्य ७० रु० तोला है। इसलिए स्वर्ण पीठ बलका वास्तविक मूल्य १३३ करोड़ रु० है, अतः स्वर्ण और स्टर्लिङ्ग पूंजी मिलकर कुल पूंजी का ८१ प्रतिशत है। स्वर्णका बढ़ा मूल्य होनेसे ६० करोड़ रु० का अधिक सोना है, यह बात स्मरण करने योग्य है, साथ ही यह भी ख्याल रखनेकी बात है कि स्टर्लिङ्गका मूल्य सदा यही नहीं बना रहेगा।

रूपी सिक्युरिटीज कुल पूंजीका ३१ प्रतिशत है, और फरवरी १६४१ के आर्डिनेन्सके अनुसार निश्चय किया गया है और २५ प्रतिशतकी सीमा दूर कर दी गई है। यदि स्वर्ण मूल्य-वृद्धिके कारण स्वर्ण ६० करोड़ रु० का अधिक है, अतः रूपी सिक्यु-रिटीज केवल ६६ करोड़ रु० के लिए पीठबल हैं, जोकि कुल का २५ प्रतिशत की जगह १६॥ प्रतिशत है। अगस्त १६३६ के बादसे नोटोंमें ४१४ करोड़ रु० या २३२ प्रतिशतकी वृद्धि हुई है। इस कालमें स्टर्लिङ्ग सिक्युरिटीजमें वृद्धि ५६ करोड़ से ३३५ करोड़ रु० की हुई है। भारत में चलनी नोट इसी स्टर्लिङ्गके

पीछे निकाले गये हैं, जिनका मूल्य अनिश्चित और अस्थिर है।

वृद्धिका कारण

स्टर्लिंग सिक्युरिटीजमें वृद्धि होनेके निम्न कारण हैं—(१) भारतमें विदेशोंसे आयात होनेवाले माल की अपेक्षा भारतसे विदेशोंको माल अधिक निर्यात होता है; (२) ब्रिटिश राष्ट्र व उसके मित्रराष्ट्रोंके लिए भारत सरकार भारतमें युद्धोपयोगी वस्तुओंका क्रय करती है और (३) ब्रिटिश और अमरीकन सरकारकी ओरसे ब्रिटिश और अमरीकी सेनाके लिए भारतमें बड़े प्रमाणमें व्यय हो रहा है। इस व्यय का मूल्य विलायतमें स्टर्लिङ्ग हुण्डियोंके रूपमें भारत सरकारको मिलता है। इस प्रकार आई हुई स्टर्लिंग निधिमेंसे पहले सरकारने विलायतमें लिए गए स्टर्लिङ्ग-ऋणको वापस किया। मगर ब्रिटिश और अमरीकन सरकारका व्यय भारतमें चालू होनेके कारण भारत सरकारको विलायतमें मिलनेवाली स्टर्लिङ्ग हुण्डियोंका परिमाण निरन्तर बढ़ता जाता है। उसमेंसे ब्रिटिश सरकारकी सिक्युरिटीज क्रय करके उसके पृष्ठबल पर भारत सरकार यहां कागजी चलनी नोट निकाल रही है। ये नोट दे कर सरकार भारतमें मित्रराष्ट्रोंके लिए माल क्रय कर रही है। इस प्रकार चलनी नोटोंमें वृद्धि होने पर भी भारत में ब्रिटिश और अमरीकन सरकार द्वारा क्रय की जाने वाली मात्रा निश्चित है, उसकी एक मर्यादा है, परन्तु भारत सरकार अपने तात्कालिक रूपी सिक्युरिटीज दे कर उसके पीठबल पर जो चलनी नोट निकाल रही है, उस पर मानसिक मर्यादाके सिवाय और कोई बन्धन नहीं रहा है।

मूल्य क्यों बढ़ा है ?

सरकारी पक्ष और कुछ व्यवसायी नेताओंका मत है कि भारतमें मूल्योंके बढ़नेका कारण फुलाव या फुगाव नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि अभी इस देशमें फुलाव या फुगावकी स्थिति नहीं आई है। रिजर्व बैंकके गवर्नर स्व० सर जेम्स टेलरका कहना था :— मूल्योंके बढ़नेका कारण मुद्रा-प्रसार नहीं है, बल्कि इन दोनोंका कारण ब्रिटिश गवर्नमेण्ट द्वारा भारतमें बड़ी मात्रामें की गई माल और सर्विसों की खरीद है, जिसके लिए कि वे हमें स्टर्लिंग देते हैं और जिसको हम फिर रुपयेमें बदल देते हैं। परन्तु इसके आगे ही चल कर वे अपनी बात काटते हुए कहते हैं—जब तक क्रय शक्तिमें हुई वृद्धिकी पूर्ति इसी परिमाणमें सब वस्तुओंकी वृद्धिसे नहीं होती देशके अन्दर चीजोंकी कीमतें अनिवार्य रूप से बढ़ेंगी। हम पूछना चाहते हैं क्या इसीको मुद्रा में कृत्रिम वृद्धि या 'इन्फ्लेशन' नहीं कहते ?

जो लोग कहते हैं कि मूल्योंमें वृद्धि मुद्राप्रसारके कारण नहीं बल्कि दुर्लभताके कारण है, उनका कहना है कि लड़ाई आरम्भ होनेके बादसे २५ दिसम्बर १९४२ तक चलनसार सिक्कोंका मूल्य ३ अरब ८८ करोड़ बढ़ गया। ६२ करोड़के तो केवल चांदीके सिक्के ढलकर बाजारमें पहुँच गए। कुल ४॥ अरबके सिक्के ढले। यह सारी राशि तो काम नहीं आ रही ? बैंकोंमें जमा रकम २। करोड़ बढ़ गई। १ करोड़ ३ लाखकी रकम रक्षा-विभाग के ऋणपत्रों द्वारा वापस ले ली। १९३९ की तुलनामें खजानेकी हुण्डियोंकी कीमत ६५ करोड़ अधिक है। इस तरह ४॥ अरबके जो नये सिक्के ढले थे उनमें-से ४ अरब १० करोड़का हिसाब सरलतासे किया जा सकता है। केवल ४० करोड़के बच रहते हैं, जो तिजोरियोंमें या जमीनके अन्दर पहुँच गए होंगे या माल जायदाद खरीदनेमें लगे होंगे। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इस अवधिके अन्दर उत्पादनमें कितनी वृद्धि हुई है ? मुद्रा और मालके बीचकी खाईका अधिकाधिक बढ़ना ही तो मुद्रामें कृत्रिम वृद्धिका सूचक है। ये लोग यह भी भूल जाते हैं कि संयुक्त राष्ट्र और ब्रिटेनमें खाद्य-पदार्थोंकी कीमतें २१ प्रतिशत बढ़ी है और भारतमें २०० से २१८ प्रतिशत बढ़ी है।

इस अवधिमें बैंकोंमें जमा रकमकी मात्रा बढ़ी है, मगर उसका उपयोग नहीं हुआ है और वह

बेकार पड़ी है। यदि वह उत्पादनमें लगती तो यह अवस्था नहीं आती। बैंकोंके चालू खातेमें जहाँ रकम १६३६-४० में १४० करोड़ रु० थी, वहाँ नवम्बर १६४२ में वह बढ़कर ३३३ करोड़ हो गई। मगर इस अवधिमें स्थिर खातेमें रकम लगभग १०५ करोड़ रु० ही रही। रिजर्वबैंकका देय १० से १७.५ प्रतिशत बढ़ गया। मुद्रा बेकार थी यह क्लियरिङ्ग हाउसकी रिपोर्टसे भी स्पष्ट है। १६३६-४० में जहाँ २३०८ करोड़ रु० का हुआ था वहाँ १६४२ में वह घटकर १६३५ करोड़ रु० का ही रह गया। बैंकोंमें जमा इस रकमके मूल्योंकी सतह पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। इससे क्या इन्कार किया जा सकता है ? दूसरे बैंकोंमें जमा रकमसे चलनकी राशिका अनुमान करना गलत है। क्योंकि भारतमें बैंकोंमें रुपया जमा करनेवालोंकी संख्या ५ प्रतिशतसे अधिक नहीं है।

मुद्राप्रसारके साथ किस प्रकार मूल्य बढ़े हैं यह निम्न तालिकासे स्पष्ट हो जायगा:—

	अक्टूबर १६३६ रु.आ.पा.	अक्टूबर १६४० रु.आ.पा.	अक्टूबर १६४१ रु.आ.पा.	अक्टूबर १६४२ रु.आ.पा.
गेहूं	२-६-६	३ २-३	४-३-२	५-१-०
चावल	५-२-०	५-०-०	७-०-०	१०-६-०
खाण्ड	१०-१४-०	६-५-०	६-१०-६	१२-३-६
मूंगफली	३--२-०	२४-४-०	२२-४-०	४६-१५-०
मूँ०कीखली	२-५-०	१-८-०	१-८-०	२-८-०
कपास भड़ौंच	१८६-०-०	१६७-०-०	२३२-०-०	१८८-०-०
लट्टा	०-६-५	०-६-५	१-२-१०	१-१०-६
जूट(फ़िस्टरु)	५०-८-०	३३-०-०	६२-०-०	५५-०-०
किरासीन वि०	५-१०-६	६-६-६	६-१४-६	६-१३-०
खाल बकरी	१३५-०-०	६५-०-०	१३०-०-०	१२०-०-०
चलनी नोट (करोड़ोंमें)	२१०	२२६	२६३	५११

इससे स्पष्ट है कि कीमतोंमें वृद्धि लड़ाईके कारण उत्पन्न अस्थिरता और तज्जन्य मनोवैज्ञानिक अवस्थाके कारण नहीं हुई है, यह अक्तूबर १६३६ और अक्तूबर १६४० के भावोंका मिलान करनेसे स्पष्ट हो जाता है।

क्या सरकार उत्तरदायी नहीं ?

अर्थ सदस्य सर जेरमी रैंजमैनका कहना है कि मुद्राका अत्यधिक विस्तार और कीमतोंका बढ़ना इन दोनों बातोंकी सह-स्थिति फुलाव या इन्फ्लेशन को सिद्ध नहीं करती। गवर्नमेण्ट इसके लिए दोषी है या नहीं इसकी एक मात्र कसौटी यह है कि उसने अपनी साखका मुद्रा-विस्तार करनेमें उपभोग किया है या नहीं। चूँकि भारत सरकारने रिजर्व बैंकसे कर्ज नहीं लिया है, या रिजर्व बैंकने 'एडहाक' सिक्युरिटीज (मियादी कर्ज) के विरुद्ध मुद्रा नहीं चलाई अतः सरकारकी नीति मुद्रा-फुलावकी नहीं है। मगर यह सचाई नहीं है। जैसे ईश्वरको पहुँचनेके अनेक मार्ग हैं, उसी प्रकार गवर्नमेंटके पास अपनी साख का उपभोग करनेके अनेक मार्ग हैं। अर्थ सदस्यने स्वतः अपने भाषणमें इसकी सामग्री दी है। अर्थसदस्यने बताया है कि स्टर्लिङ्ग प्रत्यावर्तनकी योजना जबसे आरम्भ हुई है; तबसे इस देशमें लगभग ४०० करोड़ रु० कर्ज द्वारा जमा किया गया है। इस आंकड़ेमें विविध रक्षा-ऋण, प्रत्यावर्त्तनका ऋण, प्रान्तीय ऋण आदि शामिल हैं। अर्थ सदस्यने कहा है कि इन कर्जोंसे जमा की गई रकमका किस किस तरह विनियोग किया गया यह बताना कठिन है। मगर एक बात स्पष्ट है कि पिछले दो सालका १०८ करोड़ रुपएका बजटका घाटा इसमेंसे पूरा किया गया। यह सारा धन जनताने नहीं दिया है, क्योंकि ४०० करोड़ रु० जमा ऋणमेंसे १६० करोड़ रु० रिजर्व बैंकने दिये हैं। भारतमें फुलाव या फुगावकी स्थिति है इसका यह एक निर्णयात्मक प्रमाण है। क्योंकि मुद्राका उचित विस्तार वही है जो कि मुद्राका व्यवहार करने वाले वर्गकी मांग पर किया जाता है। इसको ठीक ठीक बताने वाले ट्रेड बिल (हुण्डियां) हैं। क्योंकि ये माने हुए द्वार-अवरोधक हैं। मगर रिजर्व बैंकका बिल विभाग बराबर

बेकार पड़ी है। यदि वह उत्पादनमें लगती तो यह के कारण नहीं ...

नाम एवं पता: श्री ... प्रसाद मिश्र

3/4/138 122

नई खाता संख्या
सेवा क्रमांक
शुल्क दर संकेत भार (Connected load)

बिल का महिना	वितरण तिथि		
	भुगतान तिथि		हस्ताक्षर, अधिशाषी/सहायक अभियन्ता राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल
बैंक द्वारा	नकद राशि द्वारा	कार्यालय	ह० बिल बनाने वाले के / ह० चै० करने वाले के

राष्ट्र हित के लिये अल्प बचत योजना में धन लगाइये

राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल
(बिजली उपभोग विपत्र)
आर एस. ई बी./ए-3 (a)

मीटर पठन तिथि		इकाई संख्या	विद्युत खर्च	मीटर किराया	विद्युत कर	अतिरिक्त	नियत दिवस के बाद भुगतान की राशि	छूट (Rebate)	नियत दिवस तक भुगतान की राशि
वर्तमान पठन	5057								
गत पठन	4979								
उपभोग	78	78	35.10	4.00	4.68	-	43.78	3.90	39.88

बोर्ड/बैंक की मोहर के लिए स्थान

बकाया	मंडल राशि / विद्युत कर	
अन्य दायित्व-नाम खाता	मंडल राशि / विद्युत कर	
सत्ता-जमा खाता	मंडल राशि / विद्युत कर	
कुल देय रकम अंकों में		
कुल देय रकम शब्दों में (रुपया		

इस बिल का भुगतान बिल में अंकित भुगतान तिथि के पश्चात् एक सप्ताह के अन्दर न हुआ तो भारतीय विद्युत अधिनियम १९१० की धारा २४ (i) के अन्तर्गत बिना अन्य सूचना के विद्युत संबंध विच्छेद किया जा सकता है। (विभागीय सूचनाओं के लिए पीछे देखें) भूलचूक लेनी देनी

१९३९ और ...करनेसे स्पष्ट ... ?

...कहना है कि ...तोंका बढ़ना ...। इन्फ्लेशन ...के लिए दोषी ...है कि उसने ...उपभोग किया ...रिजर्व बैंकसे ...ाक' सिक्यु- ...नहीं चलाई ...ीं है। मगर ...नेके अनेक ...अपनी साख ...र्थ सदस्यने ...है। अर्थ- ...की योजना ...में लगभग ...गया है। ...यावर्त्तनका ...र्थ सदस्यने ...मका किस ...ना कठिन ...दो सालका ...समेंसे पूरा ...ीं दिया है, ...१६० करोड़ ...फुलाव या ...निर्णयात्मक ...स्तार वही है ...की मांग पर ...बताने वाले ट्रेड

...विश्वयुद्ध लड़ाईके कारण उत्पन्न अस्थिरता और तजन्य मनोवैज्ञानिक अवस्था

बिल (हुण्डियां) हैं। क्योंकि ये माने हुए द्वार-अवरोधक हैं। मगर रिजर्व बैंकका बिल विभाग बराबर

घट रहा है और चलनी कागजी मुद्राका विस्तार तेजीसे हो रहा है। इस लिए फुलावकी जिम्मेदारीसे सरकार मुक्त नहीं हो सकती।

दूषित चक्र

यह माना जा सकता है कि बजटको संतुलित करनेके लिए सरकारने चलनी कागजी मुद्राका विस्तार नहीं किया है। मगर मित्रराष्ट्रों और ब्रिटेन के लिए भारत सरकार द्वारा खरीदे गए मालका मूल्य चलनी कागजी मुद्राका विस्तार करके चुकाया गया है। वह ऐसे कल्पना कीजिए कि सरकारने इस सप्ताह करोड़ों रुपयेका माल खरीदा और उसका मूल्य नये चलनी नोट छाप कर चुकाया। इससे विद्यमान मालके स्टाकमें कमी उस सीमा तक हो जाती है, जिस सीमा तक कि खरीदे गए मालकी मात्रामें इस अवधिके अन्दर और उत्पादन नहीं बढ़ता। खरीदे मालकी जितने अंशोंमें नये उत्पन्न मालसे पूर्ति नहीं होती, उतनी मात्रामें दुर्लभता बढ़ जाती है। इस दुर्लभताके कारण पहलेसे कीमत और चढ़ जाती है। क्योंकि दुर्लभ वस्तुओंका विनिमय जनताके हाथमें अधिक मात्रामें आई चलनी कागजी मुद्रासे होता है। फलतः चीजों के दाम और बढ़ जाते हैं। अगले सप्ताह जब गवर्नमेण्ट पुनः बाजारमें वही माल खरीदने जाती है, तो वह कीमतें चढ़ी पाती है और उसी मात्राके माल के लिए और अधिक मात्रामें नोट छापनेके लिए बाध्य होती है। यह प्रक्रिया इस प्रकार बार-बार दुहराई जाती है। अन्तर बढ़ता जाता है, मालकी दुर्लभता निरन्तर बढ़ती जाती है और मालकी घटी राशिके विरुद्ध चलनमें मुद्राका विस्तार बढ़ता जाता है, फलतः कीमतोंकी सतह ऊँची होती जाती है। यह दूषित चक्र है! फुलाव राजस्वसे (इन्फ्लेशनरी फाइनान्स) से दुर्लभता आती है, दुर्लभता से कीमतें चढ़ती हैं, ऊंची कीमतें होनेसे मुद्राप्रसार की और आवश्यकता होती है। इसलिए इस दूषित चक्रकी हरेक कुण्डली पहलेसे और अधिक ऊँची होती है। इसलिए ऊँची कीमतोंके कारणोंमें फुलाव और दुर्लभतामें भेद करना ठीक नहीं है, जैसा कि नियन्त्रण विरोधी कुछ व्यवसाइयों और सरकारने किया है। क्योंकि ये तीनों चीजें एक साथ कार्य-कारण हैं, वे एक चक्र बनाती हैं और इसकी प्रेरक शक्ति समय २ पर अधिकाधिक चलनी कागजी मुद्रा का छापना है।

प्रतिकार

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि आजकी कागजी समृद्धि भ्रमात्मक और कृत्रिम है। मगर प्रश्न तो यह है कि इसका प्रतिकार कैसे किया जाय? पहली बात तो यह है कि भारत सरकार स्वतः मित्रराष्ट्रों और ब्रिटेनके लिए भारतके बाजारमें माल खरीदना बन्द कर दे। वे स्वतः इस देशमें माल खरीदें और खरीदे मालका मूल्य चुकानेके लिए इस देशमें कर्ज लें। भारत इससे पहले लन्दनमें यह करता रहा है। इससे चलनी कागजी नोटोंको छापनेकी सरकारको जरूरत न रहेगी। क्योंकि आज ब्रिटेन और अमरीका द्वारा भारतमें खरीदे मालका मूल्य व सैनिक-व्यय स्टर्लिङ्ग बिलोंमें चुकाते हैं, उसका रुपएमें रूपान्तर करनेके लिए सरकार नोट छापती है। यदि वे इस देशमें कर्ज लेकर मूल्य चुकायेंगे तो नोट छापनेकी इस मात्रामें जरूरत नहीं रहेगी। दूसरा लाभ इससे यह होगा कि युद्धजन्य लाभ-जनक उत्पादनके कारण लोगोंके हाथमें आया पैसा माल खरीदनेमें न लगकर सरकारी तिजोरीमें वापस चला जायगा। रिजर्व बैङ्क उनकी ओरसे कर्ज उभारेगा, अतः उसके पूरे होनेकी दुश्शङ्का नहीं करनी चाहिए।

अमरीका और ब्रिटेन भारतमें जो माल खरीदें उसका मूल्य स्वर्णमान परित्यक्त व घटस्फोट किये स्टर्लिङ्ग हुण्डियोंमें न दे कर स्वर्णमें या ऐसी मशीनरी या यन्त्रोंमें दें, जो कि भारतका उत्पादन बढ़ानेमें सहायक हो, सोनेमें मूल्य मिलनेसे लाभ यह होगा कि सोना न होनेसे जो लोग नाज जमा करने लगे हैं वे नाज जमा करना छोड़ देंगे और नाजकी

कीमतें गिर जावेंगी। तीसरा उपाय यह है कि विभिन्न उद्योग धन्धोंमें शेयरों या अन्य तरहसे जो ब्रिटिश पूँजी लगी हुई है, उसके बदलेमें ब्रिटेन भारतसे माल खरीदे, जैसा कि उसने संयुक्त राष्ट्र अमरीकासे माल खरीदते समय किया है।

मगर ब्रिटेन इन तीनोंमेंसे एक भी बात मानता हुआ नहीं दीखता। यहाँ ऋण लेनेमें उसको सम्मान का प्रश्न बाधक होता है। अपने पास जमा सोना छोड़नेके लिए वह तैयार नहीं और मैशीनरी दे कर वह भारतको अपना प्रतिस्पर्द्धी नहीं बनाना चाहता। यदि ब्रिटिश पूंजीपतियोंका मालमत्ता भारतीयोंके हाथ दे दिया गया, तो ब्रिटिश पूँजीपतियोंके हाथसे प्राप्तिका एक भाग छिन जायगा और भारतीय विधानमें संरक्षणोंकी जरूरत नहीं रहेगी। फलतः स्वतन्त्र राष्ट्र चलन विषयक जिन सिद्धान्तोंका अनुसरण करते हैं और जो कि अन्तर्राष्ट्रिय कानूनों द्वारा विहित हैं, उनको भारतमें अपनाया नहीं जा सकता, क्योंकि भारत स्वाधीन नहीं है और यहाँ राष्ट्रिय सरकार नहीं है।

ब्रिटेन और अमरीकामें ऐसी आर्थिक नीतिका अवलम्बन किया गया है जिससे बाजार भाव यथाशक्ति नीचा रहे। स्टर्लिङ्गका अन्तर्गत भाव उभरे नहीं और जीवनकी आवश्यक चीजोंका भाव चढ़े नहीं इसके लिए ग्रेट ब्रिटेनमें (१) कागजी मुद्राकी रकम मर्यादित रक्खी गई है, (२) धनियोंकी क्रयशक्ति बढ़े नहीं इसलिए आमदनी पर इस मात्रामें कर लगाया गया है कि किसीके पास छः हजार पौण्ड वार्षिकसे अधिक आमदनी न रहे; (३) निम्न और मध्यम वर्ग युद्धके कारण बढ़ी आमदनीका खर्च न करे, बल्कि उसको युद्धोत्तर कालके लिए बचा के रक्खे इसके लिए सारे देशमें प्रचार किया जाता है। भारतमें भी ये उपाय बरते जा सकते हैं।

विजयादशमी

वीरावलीहृदयसारसजागराय
मार्त्तण्डभैरववपुर्जगति प्रसिद्धा।
सम्प्रेरयेदखिलराष्ट्रजनाऽवनाय
सम्पादनाय विजया दशमी जयस्य ॥

वीर पुरुषोंके हृदयरूपी कमलोंको जगानेके लिए प्रचण्ड सृष्टि-स्थितिप्रलयकारी मार्त्तण्डका रूप धारण करनेवाली, संसारमें अति प्रसिद्ध, यह विजयादशमी सम्पूर्ण राष्ट्र और राष्ट्रिय लोगोंके रक्षणके लिए तथा संसारमें विजय सम्पादनके लिए भलीभांति प्रेरणा करे।

—अ० वा० आचार्य

दीपावली

दीनाऽवनीयदयनीयदशादिशाना-
मालोचनाय कमनीयदृशं दिशन्ती।
श्रीपूजनाय निजराष्ट्रसमृद्धिवृद्ध्यै
दीपावली दिशतु शाश्वतिकं प्रकाशम् ॥

दरिद्री भिखारी लोगोंकी दयनीय परिस्थितिकी दिशाओंको विचार पूर्वक देखनेके लिए, समुचित सुन्दर कामना पूर्ण करनेवाली दृष्टिको देनेवाली लक्ष्मीका पूजन करनेके लिए, अपने राष्ट्रकी समृद्धिकी वृद्धिके लिए यह दीपावली चिरस्थायी सनातन प्रकाशको देवे।

—अ० वा० आचार्य

त्रैमासिक महर्घ समर्घ (तेजी मन्दी) विचार

[लेखक—दैवज्ञरत्न श्री पं० आनन्दस्वरूपजी ज्यौतिषालङ्कार]

आज तक जितने अङ्कों में मैंने अपने विचार जनताके सामने रक्खे हैं अब की बार व्यापारिक वातावरण उससे बहुत कुछ विचित्र है। पहले जहाँ पर प्रत्येक मण्डीमें व्यापारी वर्ग बड़े बलके साथ व्यापारमें लगे हुए दिखाई देते थे और जहाँ पर वायदेके सौदे वाली मण्डियोंमें व्यापारियोंका मेला सा लगा रहता था, वहाँ आज सरकारी कण्ट्रोलके कारण मुर्दनीसी छाई हुई है। अपनी समझसे या व्यापारिक् अनुभवके आधारपर कार्य करनेवाले आज ज्ञान शून्य हो कर पड़े हुए हैं। इसका कारण है प्रति तृतीय मास गवर्नमेंटकी वक्रदृष्टि। परन्तु इतनेपर भी ज्यौतिष विद्याके अनुभवसे ज्ञात हुआ है कि यह सारी उथल पुथल ग्रहयोगानुसार ही होती है। जिन वस्तुओंकी भरपूर तेजी चल रही थी और जिन वस्तुओंकी स्वप्नमें भी यह आशा न थी कि यह वस्तुएं आधुनिक समर समाप्त होनेसे पहले मन्दी हो जावेंगी, ग्रहगतिने यह कर दिखाया। यानी शनि मार्गी होने पर वे समस्त वस्तुएं मन्दी हो गईं। अतः यह अनुभव सिद्ध बात है कि आजकलके उत्कट समयमें ज्यौतिषका सहारा ले कर कार्य करनेवाले व्यक्ति अवश्य लाभ उठाएंगे। अब सूक्ष्म रूपसे अपने विचार पाठकोंके सम्मुख रखता हूं। आशा है इसका आश्रय ले कर पाठक गण अवश्य लाभ उठावेंगे।

लम्बा चान्स

यह चान्स ता० ८ अक्टूबर ४३ से प्रारम्भ हो कर ८ दिसम्बर ४३ तक रहेगा। इसमें इमली, ईख, बाजरा, बारदाना, बिनौला, कोयला, धान, सब धातुएं तेज रहेंगी और हैशियन विशेष तेज रहेगा।

इन्हीं दिनोंमें घटा बढ़ीके विशेष दिन नीचे लिखे अनुसार हैं। १० अक्तूबरको बन्द बाजारमें खरीद करें। १४ अक्तूबरकी प्रातः तक अधिक तेज रहेगा। फिर लिया हुआ माल बेच दें परन्तु फालतू न बेचें। फिर ६ नवम्बर सायंकालसे १० नवम्बर तक तेज रहेगा। फिर १० नवम्बर सायंकालसे १३ नवम्बर तक तेज रहेंगे। इसमें ६ नवम्बरको माल खरीद कर १३ नवम्बरको सेटिल कर दें। बीचमें यदि कोई मन्देका उछाला आवे तो घबरावें नहीं। वह फिर ठीक हो जायेगा। इसी समय १३ नवम्बरको माल फालतू बेच दें। २३ की शाम तक बाजारमें जोरदार मन्दा आवेगा। इस दिन अपना बिका हुआ सब माल खरीद लें और कुछ फालतू खरीद करें। फिर २७ से २६ तक बाजार एक दम तेजीकी तरफ चल पड़ेगा और शनैः शनैः तेज होता जावेगा। ५ दिसम्बरकी रात्रि तक बाजार अच्छा तेज रहेगा। फिर १२ दिसम्बर तक बाजार कुछ मन्दा रहेगा। १३ दिसम्बरकी शामसे बाजारमें फिर तेजी चल पड़ेगी और वह ३० दिसम्बरकी शाम तक निरन्तर चलती रहेगी। यह लाइन खरीदवालोंको विशेष लाभदायक रहेगी। इसमें यदि बीचमें कुछ मन्दा आ जावे तो घबरानेकी आवश्यकता नहीं। क्योंकि यह मन्दा क्षणिक होगा।

नोट—ऊपर जो तेजीके विशेष चांस लिखे हैं, यह ऊपर लिखी हुई चीजोंके लिए ही हैं।

नं० २ इनके रुपये घटा-बढ़ीके अबकी बार नहीं लगाये गये हैं, वह व्यापारीवर्ग यदि चाहें तो हमसे पत्र द्वारा पूछ सकते हैं।

नं० ३ इन्हीं दिनोंमें जो ऊपर लिखे हुए हैं, रंग और चांदी पर भी विशेष प्रभाव पड़ेगा और रंग पर विवश हो कर शायद सरकार कण्ट्रोल भी कर देगी। आगे भगवान् जाने।

व्यापारिक तेजी मन्दी और ज्यौतिष

[लेखक—श्री प्रो० बी० सी० महता म्यूनिस्पल कमिश्नर]

इसके पहले कि मैं अपने लेखको प्रारम्भ करूँ, सुज्ञ पाठकोंका ध्यान मेरे गत उस लेखकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जिसका प्रकाशन 'श्रीस्वाध्याय' के हेमन्ताङ्कमें ८२ वें पृष्ठमें हुआ था जो आजसे प्रायः १० मास पूर्व निकला था। पाठकोंको सम्भव है उस लेखकी कुछ अन्तिम पंक्तियाँ अब भी स्मरण होंगी, जिसमें मैंने २४ मार्चसे २४ सितम्बर १९४३ तकका समय व्यापारिक क्षेत्रमें अनहोनी घटा-बढ़ीका बतला कर सावधान रहनेका अनुरोध किया था। मुझे पूर्ण आशा है कि 'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी पाठकोंने उस चेतावनीका ध्यान अवश्य रक्खा होगा और उक्त अवधिमें हुई रुई, चांदी, सोना, सूत आदिकी महान् उथल-पुथलके भयसे अपनेको अवश्य बचाया होगा।

अब २४ सितम्बर समाप्त प्राय है अतः मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं अपने नये लेखों द्वारा अपने स्नेही 'श्रीस्वाध्याय' के पाठकोंकी कुछ और सेवा करूँ।

यह लेख पाठकोंके पास ८ अक्टूबरके लगभग पहुँचेगा, उक्त तारीख तक कई ऐसे योग बने हैं कि जिसके फलस्वरूप सरकारको कई वस्तुओंके व्यापार परसे कण्ट्रोल हटा देनेके लिए बाध्य होना पड़ेगा। कण्ट्रोलकारक योग विशेषकर राहु गुरुकी युति समाप्त हो चुकी है और बृहस्पति स्वतन्त्र हो कर सिंहराशिमें प्रवेश करेगा। सिंहराशिमें बृहस्पतिका प्रवेश अर्वाचीन अयनांश द्वारा ठीक ता० १० अक्टूबरको होता है। और मेरा ख्याल है कि इस तारीख तक रुई, चांदी, सोना, अलसी, सींगदाना, हरड़, सूत आदि कन्ट्राक्ट व्यापारसे सरकारी कन्ट्रोल हट जावेगा। हाँ, कुछ रस्ट्रीकेशन सरकार इन सट्टेके व्यापार पर अवश्य रक्खेगी। परन्तु जो सहस्रों मनुष्य सट्टा बन्द होनेसे निठल्ले (वेकार) हो गये हैं उनकी शिकायत मिट जावेगी।

इस लेखमें आगामी तीन मास अर्थात् अक्टूबर, नवम्बर तथा दिसम्बर मासकी रुई, चांदी, सूत, सोना इन चार वस्तुओंकी तेजी-मन्दीका विवेचन भारतीय एवं पाश्चात्त्य ज्योतिषके अनुभवी सिद्धान्तोंके आधार पर किया जाता है। जो व्यापारियोंके लिये विशेष लाभदायक व सहायताप्रद सिद्ध होगा, ऐसी आशा है।

ता० ८ अक्टूबरको बुध ग्रहका केन्द्र Square) योग शनिसे बनता है यह योग रुई और सूतकी मन्दीका द्योतक है, किन्तु चांदी सोने पर इसका प्रभाव विशेष दृष्टिगोचर नहीं होगा। १० अक्टूबरको शनि वक्री मिथुनराशिमें हो रहा है। यह राजनैतिक वातावरणमें जागृति उत्पन्न करेगा, शनिका मिथुनराशिमें वक्री होना कलकत्ता और बङ्गालके लिए हानिप्रद है, क्योंकि कलकत्तेके धनुर्लग्नसे यह पूर्ण रूपसे प्रतियोग (Oppose) करेगा, जिससे इस ओर की स्थिति बड़ी सोचनीय हो जावेगी, इसका प्रभाव सोने चांदीमें अच्छी घटा-बढ़ी तथा रुई सूतमें तेजीका होगा। परन्तु रुई सूतकी तेजी ठहरेगी नहीं, क्योंकि ता० १२ अक्टूबरको शुक्र हरशलका फिर Squre योग बनता है। यह सब वस्तुओंमें मन्दी करेगा, इस दिन बुध भी सायन तुलाराशिमें प्रवेश करता है, ता० १३ को बुधका नेपचूनसे युति Con. करता है जो सूत और चांदीमें थोड़ी तेजीका द्योतक है।

इसके पश्चात् ता० १५ को और १८ को सूर्यका Trine त्रिकोण मङ्गलसे और सेक्स्टाईल बृहस्पतिसे होगा। ये दो दिन चांदी सोनेमें अच्छी मन्दीके द्योतक

हैं। यद्यपि सूतमें इन योगोंका उल्टा प्रभाव दिखाई देगा, चांदी सोनेकी यह कुछ समयके लिए अन्तिम मन्दी समझनी चाहिये, क्योंकि ता० २१ से बृहस्पतिका प्रवेश प्राचीन अयनांश द्वारा सिंहराशि निरयनमें हो रहा है तथा ता० २२ को बुध पे० शुक्र होगा और उसी दिन मङ्गल अपना नोड बदलेगा। यह सोना चांदी, सूत, कपड़ा रङ्ग आदि अन्य वस्तुओंमें तेजी का ट्रेन्ड उत्पन्न करता है, जिसका प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता जावेगा। बीच-बीचमें यद्यपि मन्दीके रीएक्शन आवेंगे किन्तु ता० २६ से बाजार इकतरफा चलेगा। ता० ३ नवम्बरसे शुक्र भी अपना पात (नोड) बदलता है यह चांदी और सोनेमें अनहोनी तेजी उत्पन्न करता है, इसलिए ता० २ नवम्बरसे चांदी सोनेमें तेजीके व्यापार करनेवालोंको विशेष लाभ हो सकता है। इसका विशेष विवरण हमारे आफिस ब्यावरसे पत्र-व्यवहार द्वारा मिल सकता है। नवम्बर मासमें आपके सामने जो पहली चीज होगी वह सोना चांदीकी अच्छी व जनरल ट्रेन्ड होगी। व्यापारियोंको अधिक सावधानीसे काम करना चाहिये, यह तेजी पहले जैसी नहीं होगी कि महीनों इकतरफ चले, इसकी समाप्ति अनायास ही हो सकती है।

६ नवम्बर को बुध पे० बृह० बना है यह सूतमें अच्छी तेजीका द्योतक है। ता० ८ को सूर्य बृह० का आपोजिशन हुआ है यह चांदी सोनेमें अच्छी घटा-बढ़ी और तेजीका द्योतक है। ता० १२ और १३ को शुक्र पेरेरल और Con. नेपच्यूनसे बना है। अतः रुई सूत कपड़ा आदिमें कहींसे भी तेजीके अच्छे कारण बनेंगे और तेजी आवेगी। इस सूतकी तेजीकी समाप्ति १५ को सायङ्काल तक वा १६ को दोपहर तक हो जावेगी तथा सूत रुईमें अनायास मन्दीके कारण उत्पन्न हो जावेंगे। ता० १७ को चांदीकी तेजीका कारण बना है। इस दिन शुक्र हरशल त्रिकोण तथा प्लूटोका सेक्स्टाईल बना है। जो मामूली तेजी करता है, यदि यहाँ सूत रुई चांदी सोनामें तेजी आ जावे तो डबल बेचना चाहिए, किन्तु तेजीका व्यापार नहीं करना चाहिये, क्योंकि ता० १९-२०-२१ और २३ ये दिन सब चीजोंकी मन्दीके द्योतक हैं। विशेषकर रुई सूत और चांदी आदिमें पर्याप्त मन्दी करनेकी सामर्थ्य रखते हैं।

ता० २४ से मन्दीका सब व्यापार बराबर कर तेजीमें पड़ जाना चाहिए, जो केवल तीन दिन तक तेजी रहेगी। फिर २८-२९-३० सूतमें मन्दी, लेकिन चांदी सोनेमें तेजी होगी सो ध्यान रहे।

दिसम्बर महीनेमें बुध मकरराशिमें प्रवेश करता है। तथा बृहस्पति वक्री भी ता० १४ को होता है। शनि मंगल और हरशल पूर्णतया वक्री हैं ही। इस प्रकार इस महीनेमें चार बड़े ग्रह वक्री हुए हैं जो निश्चयात्मक रूपसे महान् भयङ्कर घटा-बढ़ीके द्योतक हैं। इस महीनेमें भी बहुत सावधानीसे व्यवसाय करना चाहिए। चार ग्रहोंका वक्री होना व्यापारिक व राजनैतिक क्षेत्रमें पर्याप्त उथल-पुथल मचानेवाले हैं। यह भारतकी स्थितिको बहुत अशान्त बना देंगे, प्राकृतिक प्रकोपसे भी भारतको कष्ट उठाना पड़ेगा। खाद्य-पदार्थोंका अभाव भारतके प्रत्येक कोनेमें दृष्टिगोचर होगा। चांदी सोनाका मूल्य विशेष बढ़ेगा। कपड़ा भी अप्राप्य सा होगा। कहीं ऐसा न हो कि खाद्य-पदार्थ जैसे कपड़ेके लिए भी भारतको कठिनाइयोंका सामना करना पड़े। प्रथम सप्ताहमें ता० ४ को छोड़कर सब दिन तेजीके हैं। ता० ६ और ७ सूत सोना चांदीमें विशेष अच्छी तेजीके द्योतक हैं।

ता० १० को बुध Squre नेपचून रुई सूतमें मन्दी करता है, जो तेजीवालोंकी बेचवालीसे आवेगी। इसके बाद ता० १४ से फिर वही तेजीका योग बनता है, अर्थात् बृहस्पति वक्री होता है और ता० १५ को सूर्यका शनिके साथ प्रतियोग Opposition होता है, ता० १५ को शनि भी पुनः लौटकर वृषराशिमें प्रवेश होता है. सिंहराशिमें बृहस्पतिका वक्री होना सोना चांदी आदिमें और रुई सूतमें तेजीका द्योतक है। ता० २० तक बराबर इन चीजोंकी तेजीके ही योग बने हैं। फिर कुछ दिन बाजारमें विशेष घट-बढ़ दिखाई नहीं आवेगी। किन्तु ता० २६

त्रैमासिक व्यापार बिमर्श (तेजी मन्दी)

[लेखक—श्री पं० बिहारीलालजी शर्मा दैवज्ञ]

[विद्वान् लेखकने बम्बईमें रह कर सट्टेके व्यापार पर ग्रहोंके प्रभावका विशेष अनुभव प्राप्त किया है; अतः इस लेखमें भी उन्होंने जो भाव या विचार लिखे हैं वे सट्टेके व्यापारसे विशेष सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु इस समय भारत सरकार या प्रान्तीय सरकारोंने कई वस्तुओंके सट्टेका व्यापार बन्द कर दिया है, इस कारण निम्न लेखके निर्दिष्ट भावोंमें कुछ साधारण अन्तर पड़ सकता है। प्रेमी पाठक इसका अनुभव करके स्वयं लाभ उठावें और विद्वान् ज्यौतिषीजीके परिश्रमको भी सफल करें। व्यापारियोंके लाभार्थ व सुगमतार्थ हमने लेखकका प्रत्येक शब्द वैसे ही रक्खा है उसका परिवर्तन करके शुद्ध हिन्दी शब्दका रूप नहीं दिया है। —सम्पादक]

सौर कार्तिक मासका ब्यौरा

(ता० १७ अक्तूबरसे १५ नवम्बर तक)

इस मासमें बुधका पूर्वमें अस्त होना, गुरुका सिंह राशिमें आना, शनिका वक्रगत चरण बदलना, कृष्णपक्षमें तिथि वृद्धि, शुक्लपक्षमें तिथिक्षय, मंगलका वक्री होना, सूर्यबुध युति आदि २ कई महत्त्वके संयोग हुए हैं, अतः प्रत्येक वस्तुके भावोंमें जोरदार घटबढ़ चलेगी। पहले-पहल मन्दीवाले हल्ला मचायेंगे, पीछे-पीछे तेजीवाले बम्बाट करें। इन्हीं हल्ले-गुल्लेमें रुई ५०) ६०), चांदी शींगदाणा ५) ७), सोना बिनौला २) २॥), अलसी गेहूँ १) २) टकेकी तादाद में रंग दिखावेंगे। घटनेमें कम व बढ़नेमें गुञ्जायश अधिक है व्यापार सावधानीसे करें।

अब हम 'श्रीस्वाध्याय' के प्रेमी व्यापारीवर्गके लाभार्थ अर्धसाप्ताहिक और साप्ताहिक तेजी-मन्दी का विचार लिखते हैं। पाठक इसका अनुभव करें और लाभ उठावें।

ता० १७ अक्तूबर ६ बजे रातसे (३॥ दिनमें)

रुईमें १०) २०) सुवर्ण बिनौला ॥) ॥=) शींगदाना एरण्डा चांदी ४) ५) अलसी, गेहूं ।–) ।≡) की तादादमें तेज हों, ऐसा योग है। खासकर रुई के लिए अच्छी तेजीके संयोग चालू हैं।

ता० २१ अक्टूबर ७ बजे प्रातः से (३॥ दिन में)

मार्केटमें अच्छी घटबढ़ चलते रुईके भावमें भली प्रकार तेजी पाई जाती है यह योग परीक्षित है ! इस चान्सको अमलमें लानेके लिए ४-६ रोज पहले हीसे तैयारी कर लीजिये।

ता० २४ अक्तूबर ३ बजेसे (३॥ दिनमें)

यहां साधारण योग मन्दीके बनते हैं। पिछले उछालेमें माल बेचना या मन्दी लगाके घटे भाव नफासे सौदा सुलट लेना।

ता० २७ अक्तूबर १० बजे रातसे (३॥ दिनमें)

योगायोग घटबढ़ दोनों ओरके हुए हैं। रुई २०) ३०), सोना बिनौला १॥) २), चांदी एरण्डा ४) ५),

---

से पुनः बाजारमें थोड़ी मन्दी आवेगी। किसी प्रकार सरकारी कन्ट्रोल व अन्य प्रकारके रोलोंसे रुई सूतमें मन्दी आरम्भ होगी, किन्तु सोना चांदीमें विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। यहाँसे केवल एक दिन छोड़ अर्थात् २६ को छोड़ ३१ दिसम्बर तक उतनी ही मन्दी वापिस आ सकती है जितनी इसके पहले सप्ताहमें तेजी आई थी, सो पाठक सावधानीसे कार्य करें। लेख पर्याप्त बड़ा हो चुका है और स्थानाभावका ध्यान भी बना रहता है, इसलिए पाठकोंसे क्षमा चहाता हुआ अपनी लेखनीको यहाँ ही बन्द करता हूँ, आशा है यदि पाठक चाहेंगे तो फिर आगामी अङ्कमें विशेष रूपसे सेवा करूंगा।

अलसी गेहूं १) ।।।) टकेकी तादादमें घटाबढ़ी होते फौरन ही मजबूती पकड़ेंगे।

३१ अक्तूबर ७ बजे प्रातः से (३।। दिनमें)

रुई आदि वस्तुके लिए अच्छी तेजीके योग हैं। अधिक तेजीके संयोगोंमें थोड़े योग मन्दीके भी हो जाया करते हैं। अतः इस मौके आई हुई तेजीका उपयोग भली प्रकारसे करें। मतलबके आगे होने वाली ड्यूडेटका ख्याल रख किसी वस्तुकी तेजी लगा लीजिये और सुधरता सौदा सुलटाते जाइये।

ता० ४ नवम्बर २ बजे दिनसे (३।। दिन में)

रुई आदि वस्तुकी महंगाईमें प्रत्याघाती मन्दी आवे। ऐसे मौके झटसे माल खरीद कर उपयोगी चांस का उपयोग करें।

ता० ६ नवम्बर ११ बजे रातसे (३।। दिनमें)

प्रत्येक वस्तुके भावोंमें साधारणतया ढिलाई चलना प्रतीत होता है।

ता० १० नवम्बर ५ वजे प्रातः से (३।। दिनमें)

भाव कितने ही ऊँचे नीचे हो कर पुनः रहेंगे पूर्ववत् लेबिल पर ही। रुई सोना चांदी अलसी गेहूं एरण्डा मूङ्गफली और बिनौलोंके भावमें काफी चढ़ाव उतार होगा।

ता० १३ नवम्बर १ बजे दिनसे (३।। दिनमें)

मारकेटमें घटाबढ़ी खूब चलेगी आंकड़े चौकस नहीं लिख सकते।

सौर मार्गशीर्ष मासका ब्यौरा

(ता० १६ नवम्बरसे १५ दिसम्बर तक)

इस मासमें पापी ग्रहोंका वक्र चलना, शुभ ग्रहों का शीघ्रगामी होना, राहुका नक्षत्र परिवर्तन, बुधका पश्चिममें उदय होना, शुक्लपक्षकी तिथिक्षय, गुरुवक्री, क्रूरवारकी संक्रांति और अमावस पूर्णमासी इत्यादि योगोंसे "सृष्टि संहार कारकम्" वाक्य घटित होना प्रतीत होता है, ऐसी स्थितिमें जगत्में प्रत्येक वस्तुके भावोंमें तहलका मच जाया करता है।

ता० १६ नवम्बरसे एक सप्ताह तक (७ दिनमें)

घटाबढ़ी अधिक हो, पहले तेजी बाद मन्दी।

ता० २३ नवम्बरसे एक सप्ताहमें—

साधारण घटाबढ़ी, अधिकतर प्रत्येक वस्तुके भाव टिके रहेंगे।

ता० २६ नवम्बरसे एक सप्ताहमें—

बाजारमें घटाबढ़ी चलते रुख तेजीका होगा। रुई २०) ३०), सोना बिनौला १।।) २), चांदी मूंगफली एरण्डा ३) ४), अलसी गेहूँ ।।=) ।।।) घटबढ हो कर अन्तिम झुकाव तेजीकी ओर रहेगा।

ता० ६ दिसम्बरसे एक सप्ताहमें—

युद्धकी भयङ्कर खबरोंसे मारकेटका भाव अव्यवस्थित रहे। रुई और चान्दीके भावमें शिकस्त लगी है इनके साथ दूसरी वस्तुओंके भावमें भी घटबढ़ अवश्य होगी तेजीका तूफान आकर अन्तमें कुछ मन्दी दिखाई देगी। रुईमें २०) ३०), चान्दीमें ३) ४) और अलसी गेहूँमें ।।।) के लगभग तेजी हो सकती है।

ता० १३ दिसम्बरसे ३।। दिनमें—

भाव टिके रहें या साधारण मन्दी आवे।

सौर पौषमासका व्यौरा

(ता० १६ दिसम्बरसे १३ जनवरी तक)

इस मासमें कई महत्त्वके संयोग बने हैं, इन योगोंकी अधिकतम राय तेजीकी है और थोड़े अंशमें मन्दी। रुई ४०) ६०), सोना बिनौला ३) ४), चान्दी मूंगफली एरण्डा ८) १०), अलसी गेहूँ १।।) २) का उतार चढ़ाव लेते प्रथम मन्दी फिर तेजी, बाद मन्दी, पुनः तेजी क्रमसे मार्केटकी चाल रहेगी। प्रत्येक वस्तु के वायदेकी ड्यू डेटका ध्यान रख नजराणा लगा घटबढ़के चान्ससे सौदा सुधारते जावें।

ता० १६ दिसम्बरसे एक सप्ताहमें—

युद्धके भमङ्कर समाचारोंसे प्रत्येक वस्तुकी स्थिति डांवाडोल हो कर भाव तेजीकी ओर चलेंगे।

[शेष पृष्ठ ६२ पर देखिये]

शिक्षा-प्रद कहानी

कुमार्गसे सुमार्ग

[लेखक—श्री पं० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा कौशिक]

शामके ठीक छः बजे मिलमें छुट्टीकी सीटी हुई। सीटी होनेके पांच मिनट पश्चात् मिल-कर्मचारियोंकी भीड़की भीड़ निकलने लगी। तीन व्यक्ति, जो वेष-भूषासे साधारण मजदूर प्रतीत होते थे, परस्पर बातें करते हुए निकले। एक कह रहा था — सुनते हो भइया रामचरण! अब तो इस मिलकी नौकरीसे प्राण ऊब गये। अब तो भगवान् कहींसे छप्पर फाड़ के छप्पन-करोड़की चौथाई भेज दें तब तो जिन्दगी का मजा है।

जिसका नाम रामचरण था वह हँस कर बोला—हाँ सो भेजि हैं, आजै रातिका भेजि हैं। ऐसी ते एक सन्दूक लेत जायो।

तीसरा व्यक्ति—अरे, सन्दुकवा का होई ?

रामचरण—आज रातिका इनके घरमाँ रुपैवा बरसी कि नाहीं — सन्दुकिया न होई तो धरि हैं काहे माँ ?

तीसरा व्यक्ति—हाँ सो तो तुम ठीक कहत हौ। जागेसुर हो, सन्दुकवा लेत जायो!

जागेश्वर बोला—अरे पहले रुपया तो मिले, सन्दूक तो बहुत आ जायेंगे।

रामचरण—भयऊ, हमरे लोगनके करममाँ तो यह जेलखाना बदा है। सबेरे छः बजेसे धँधित है। शामका छः बजे छूटित है। रुपैवा मिलैका होत तो कौनो लखपती सारेके हियन जनम होत।

तीसरा व्यक्ति—अरे भइया, सो न कहो। मिलैका होत है तो हर सूरतसे मिलत है। हमरे काका रहे, ना! सो मँजूरी करके पेट जियावत रहे। तौन एक साल दिवारीमाँ जुआ खेले ना, भइया परमेसुरकै कुछ अस लीला भै कि तीन हजार रुपिया जीते। फिर का रहै, मालौ-माल होइगे।

रामचरण—उइ अबहीं जियत हैं ?

तीसरा व्यक्ति—हाँ जियत हैं। गांव माँ रहत हैं। दूकान किये हैं। देन-लेन करत हैं, बड़े मजेमां हैं। सो भइया भगवान्का देत देर नहीं लागत।

रामचरणने जागेसुरसे कहा—तब तो भइया, तुम हूं अबकी दिवारी जगाओ — देखो भगवान् का करत है।

जागेश्वर—भइया जुआ तो हम अभी तक कभी खेले नहीं। पारसाल मनमें आया था कि खेलें, सो हमारी घरवाली बहुत नाराज हुई।

रामचरण—वाह रे मरदवा, कहतौ सरम नाहीं लागत! मेहरारू डपट दिहिस तो जुआ नहीं खेलें!

इतना कह कर रामचरण खूब हँसा।

तीसरा व्यक्ति भी हँसते हुए बोला—काहे भइया जागेसुर, तुम सब काम मेहरारूते पूछके करत हो ?

जागेश्वर—सब काम तो क्या, हाँ कोई ऐसा वैसा काम होता है तो सलाह ले लेते हैं।

रामचरण—तब तो तुम्हार मेहरारू कौनो वकील बलिष्टर होई। काहे ना ? तू नहकै मरदके जामा माँ जनम लिहेऔ।

तीसरा व्यक्ति —हम बताई—सुनत हो जागेसुर! अबकी दिवारी माँ खेलौ, मेहरारुए न बताओ। जीत जायौ तौ सामने जायकै धरयौ। तब देख्यौ कैसे लुकायके धरत है।

जागेश्वर—धर चाहे ले, रुपया बड़ी चीज है, पर उसे जुएसे बड़ी चिढ़ है।

रामचरण—जुआसे चिढ़ है हारै खातिर। जीतै खातिर कौनौका चिढ़ नहीं होत।

जागेश्वर—अच्छा? जीत गया तब तो खैर, और जो हार गया तो?

तीसरा व्यक्ति—तब का, तब कुछ न कह्यौ।

जागेश्वर—हारनेके लिए रुपये कहाँसे आवेंगे? घरसे लेकर हारेंगे तो उसे पता लग जायगा।

तीसरा व्यक्ति—तू तो पूर मेहरारूके गुलाम हौ हो। तोहरे कीन्हे कुछौ न होई।

रामचरण—अच्छा सुनत हो! हमरे एक महाजन हैं। उनके हियाँसे हम तोहका दस रुपयाकी किस्त कराय देब। मुदा मेहरारूसे न बतायौ, नहीं छँड़ाय लेई। सुनत हौ? उनहीं दस रुपयासे खेल्यौ।

जागेश्वर—जो हार गये तो अदा कहाँसे करेंगे?

रामचरण—अरे तू तो महा पोंगा हौ बाम्हन हौ कि नाहीं। बाम्हन साठ बरस तक पोंगा रहत है, साठ बरस पीछे सठियाय जात है।

तीसरा व्यक्ति—हाँ बाम्हनका जनम पोंगेपन माँ बीतत है।

रामचरण—हाँ पूछत है कि अदा कैसे करब! अरे दुइ रुपया महीना करके अदा कर दीन्हेउ। कौन मुसकिल बात है? बीस रुपया महीना पावत हौ कि नाहीं? तौन दोइ रुपया महीना देब कौन मुसकिल है?

जागेश्वर—हमारे लिए तो दो रुपये महीना ही बहुत है।

रामचरण—अच्छा, तू इतना डिरात हौ तो जाओ, जीतेउ तो दे दीन्हेउ नहीं न दीन्हेउ, तोहरे बदले हम दै देब।

तीसरा व्यक्ति—लेओ! अब का चहत हौ? अब की दिवारी पर खेलौ।

जागेश्वर—अच्छा देखा जायगा, अभी दिवाली के आठ दिन हैं।

रामचरण—अरे कहा मानौ! परौं अतवार है, परौं हमारे साथ चलौ, तौ तोहका दश रुपया दिवाय देई।

जागेश्वर—परसोंकी परसों देखी जायगी।

तीसरा व्यक्ति—अबकी तौ हमहूँ खेलब, चाहे जौन होय।

रामचरण—तोहूं मेहरारूसे पूछिहौ का?

तीसरा व्यक्ति—कौन? हमार मेहरारू 'मेहरारू' है—हमार खसम नहीं होय। जादा टिर्र-पिर्र करै तो ले चैला जुट जाई और मारत-मारत हाड़-गोड़ तूर (तोड़) देई! हम होई मरद, जनाना न होई!!

जागेश्वर बोला - तुम्हारी मेहरारू ही ऐसी है जो मार खाती है। हमारी मेहरारू तो कभी भी मारखानेका काम करती ही नहीं।

तीसरा व्यक्ति—अब औरका तुम्हरी खोपरी पर मूती? जुआ का मना करत है कि नहीं?

जागेश्वर—यह तो अच्छी बात है—कोई बुरी बात तो है नहीं। जुआ बुरी चीज है, इसी वास्ते मना करती है।

तीसरा व्यक्ति—अच्छा होय चाहै बुरा, हमार मेहरारू मना करै ना, तो परान ले लेई। हम चहै नीक करी चहै नकारा, वह छिनार कहैवाली कौन होत है? मेहरारूका मेहरारूकी तना रहा चाही। मरदके मूँड़ पर चढ़ै वहौ कौनौ मेहरारू है?

जागेश्वरने मनमें सोचा—एक यह है, जो स्त्री को कोई चीज ही नहीं समझते और एक हम हैं जो स्त्रीकी आज्ञा बिना कुछ नहीं कर सकते। हम दोनों में कौन अच्छा, यह या हम?

उसी प्रकार ये तीनों एक चौराहे पर पहुंचे। उसी समय रामचरण बोला—अच्छा भइया, हमार रस्ता आयगा। अब तुम अपनी रस्ता जाओ, हम अपनी रस्ता। परौं हमरै साथ चलि हौ ना?

जागेश्वर—हाँ, कल जवाब देंगे।

तीसरा व्यक्ति—मेहरारूसे सलाह करिहौ काहे ना? अच्छा पाँय लागी!

रामचरण—पाँय-लागी !

जागेश्वर—आनन्द रहो।

दोनों अपने अपने रास्ते पर चले गये। इधर जागेश्वर दीपावली पर जुआ खेल कर भाग्यकी परीक्षा करनेके प्रश्न पर विचार करता हुआ अपने घरकी ओर चला।

[२]

जागेश्वरप्रसाद गरीब ब्राह्मण है। एक कपड़ेके मिलमें बीस रुपये मासिक पर काम करता है। उसके परिवारमें केवल तीन प्राणी हैं। एक तो वह स्वयं, दूसरी उसकी पत्नी और तीसरी उसकी एक पञ्च-वर्षीया कन्या। यद्यपि जागेश्वर निर्धन है तथापि वह अनेक ऐसे लोगोंकी अपेक्षा, जो धनी कहे जाते हैं, सुखी है। उसके सुखका मूलाधार उसकी लक्ष्मीरूपा पत्नी है। उसकी पत्नी एक विद्वान् ब्राह्मणकी कन्या है। जागेश्वरके श्वसुर बड़े विद्वान् तथा धर्मात्मा-ब्राह्मण हैं। इसी कारणसे जागेश्वरकी पत्नी सुशीला तथा पतिव्रता है। पढ़ी-लिखी भी है, हिन्दी भली-भांति लिख-पढ़ लेती है। जागेश्वरप्रसाद यद्यपि पढ़ा-लिखा अधिक नहीं है तथापि बड़ा सच्चरित्र है। वंश कुलीन होनेके कारण तथा प्राचीन मान-मर्यादा का सिक्का जमा रहनेके कारण जागेश्वरप्रसादको ऐसी अच्छी पत्नी मिल गयी। जागेश्वरके श्वसुर पण्डिताईका व्यवसाय करके अपने परिवारका पालन पोषण करते हैं; इस कारण उन्हें अपनी कन्याके लिए कोई धनी वर नहीं मिला। जागेश्वरप्रसाद न धनी है और न विद्वान्, परन्तु फिर भी उसकी पत्नी और उसकी ससुरालके लोग उससे परम सन्तुष्ट हैं।

अपनी पत्नीको अपनी अपेक्षा अधिक चतुर तथा बुद्धिमान् समझनेके कारण जागेश्वर बिना पत्नी के परामर्शके कोई काम नहीं करता। जिस कामके करनेके लिए उसकी पत्नी परामर्श नहीं देती उसे वह कदापि नहीं करता और जिस कामके लिए वह परामर्श देती है उसे अवश्य करता है। इसी कारण उसके इष्टमित्र उसे "जोरूका गुलाम" "जनाना" इत्यादि उपाधियोंसे अलंकृत किया करते हैं।

जागेश्वर रामचरणकी बातों पर विचार करता हुआ घर पहुँचा। घर पहुँच कर पहले वह नित्यक्रिया से निवृत्त हुआ, तत्पश्चात् भोजन करके अपनी चार-पाई पर लेट कर विचारमें डूब गया।

जागेश्वरप्रसादकी पत्नी भी गृह-कार्यसे निवृत्त हो कर अपनी चारपाई पर आ गई। जागेश्वरकी कन्या कई बार पिताके पास आई और उसने अनेक प्रकार से पिताका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहा, परन्तु जब जागेश्वरने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया तो वह म्लानमुख हो कर अपनी माताके पास चली गई और उसके कानमें धीरेसे बोली— अम्माँ, आज पिताजीका जी अच्छा नहीं है।

माता भी पतिकी इस उन्मनस्कताको देख रही थी, कन्याकी बातसे उसका ध्यान इस ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुआ। उसने पतिसे पूछा – आज किस सोचमें पड़े हो ?

जागेश्वरप्रसादने चौंक कर कहा— नहीं, सोच तो कोई नहीं है।

पत्नी—कुछ तो अवश्य है। इतने गुम-सुम तो आप कभी बैठते नहीं थे।

जागेश्वरप्रसाद—बात और कुछ नहीं केवल यह है, कि मिलकी नौकरीसे जी ऊब गया। मिलकी नौकरी जेलखानेके बराबर है। यही सोच रहा था कि कोई दूसरी नौकरी मिल जाती तो अच्छा था, या फिर इतना रुपया मिल जाता जिससे कोई छोटा-मोटा रोजगार कर लेते।

पत्नी—हाँ, यह तो मैं भी सोचा करती हूँ। किसी महाजनके यहाँ नौकरी मिल जाय तो अच्छा है।

जागेश्वर—हाँ, कई लोगोंसे कह तो रक्खा है। पर, इन सबसे अच्छा तो यह है कि कहींसे थोड़ा रुपया मिल जाता तो स्वतंत्र हो जाते। पत्नी एक दीर्घ-निश्वास ले कर बोली—रुपया तो जब भगवान ही दें तब मिल सकता है।

जागेश्वर—भगवान् कोई ऐसे घर बैठे थोड़ा ही दे देते हैं। मनुष्यको उद्योग करना चाहिए। जब उद्योग ही न किया जायगा तो भगवान् कहांसे और कैसे दे देंगे ?

पत्नी—यह न कहो, भगवान्‌की इच्छा होती है तो हर तरहसे मिल जाता है।

जागेश्वर—कुछ बहाना तो होता ही है यह तो मानना ही पड़ेगा।

पत्नी—हाँ, बहाना क्यों नहीं होता।

जागेश्वर—हमारे साथ एक अहीर काम करता है उसके काका दिवाली पर जुआ खेले, उसमें उन्हों ने कई हजार रुपए जीते। ऐसा ही बहाना हो जाता है। अब यदि वह जुआ न खेलते तो कैसे मिलता ?

पत्नी—जुएमें मिला तो कौन बड़ा अच्छा मिला। ऐसा धन किस कामका ?

जागेश्वर—यह कोई बात नहीं। ईश्वरकी देन है। किसीको किसी प्रकार देता है और किसीको किसी प्रकार !

पत्नी—हम तो जुएका पैसा कभी न लें। हमें पापका पैसा नहीं चाहिए।

जागेश्वर—इसमें पाप काहेका ?

पत्नी—क्यों ? पाप क्यों नहीं। दूसरोंका पैसा ही तो जीता जाता है ?

जागेश्वर—जीता जाता है, कोई छीन तो लाता नहीं !

पत्नी—जो हारता है उसकी आत्माको कष्ट तो होता ही है।

जागेश्वर—यह कोई बात नहीं। रोजगारमें हानि होती है तब क्या कष्ट नहीं होता ? हानि-लाभ तो हर व्यवसायमें लगा हुआ है।

पत्नी—व्यवसायकी बात दूसरी है। जुएको सब बुरा कहते हैं। जुएमें मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, नियत बिगड़ जाती है। जुआरी सदा यही सोचा करता है कि फलानेका धन मुझे मिल जाय।

जागेश्वर—यह तो उनकी दशा होती है जो पक्के जुआरी हैं, जिन्होंने जुआ खेलना अपना व्यवसाय बना रक्खा है। भाग्यकी परीक्षा के लिए कभी कभी खेलना बुरा नहीं होता।

पत्नी—बुरा काम बुरा ही है, चाहे सदा किया जाय और चाहे एक बेर किया जाय।

जागेश्वर—यही तो तुम समझती नहीं।

पत्नी—शास्त्र-पुराणोंमें जुएकी कितनी निन्दा लिखी है।

जागेश्वर—निन्दा चाहे जितनी लिखी हो पर खेलते सब थे। युधिष्ठिर जो धर्मराज कहलाते थे इतना खेले कि द्रौपदी तकको हार गये। राजा नल खेले और भी सभी राजे महाराजे खेलते रहे।

पत्नी—युधिष्ठिर खेले तो फल भी तो भोगा। उसीके पीछे महाभारत हुआ, सारा वंशक्षय हो गया और अबतक उनके नाम पर यह कलङ्क लगा चला जाता है। राजा नल खेले, उन्होंने भी दुःख उठाये।

जागेश्वर—दुःख उन्हीं लोगोंने उठाये जो पक्के जुआरी थे, कभी-कभी खेलनेवालोंने कभी दुःख नहीं उठाये।

पत्नी—यह कुछ नहीं। जुआ बड़ी बुरी चीज है, भले आदमीको उसके पास भी न फटकना चाहिए।

जागेश्वर चाहते थे, कि उनकी पत्नी कभी-कभी के खेलनेको बुरा न समझना स्वीकार कर ले, तो यह दीपावली पर अपने भाग्यकी परीक्षा करनेके निमित्त जुआ खेलनेका प्रस्ताव करें। परन्तु, जब उनकी पत्नी ने जुएका समर्थन किसी भी रूपमें न किया तब उनका यह साहस न हुआ कि वह उक्त प्रस्ताव करें। उनकी पत्नी बुद्धिमान् तो थी ही। उसने जो पतिके वार्त्तालाप तथा दीपावलीके आगमन इत्यादिका तारतम्य मिलाया

तो उसे यह सन्देह हो गया कि पति महोदयकी इच्छा है कि दीपावली पर जुआ खेलें। अत एव यह समझ कर उसने कहा—चाहे जो हो, आप किसीके कहे सुनेमें आ कर दीपावली पर न खेलना। यदि आपने ऐसा किया तो मुझे बड़ा दुःख होगा। हमें सूखे चने मिलें वह गौ है; पर ऐसा निषिद्ध पैसा नहीं चाहिए।

जागेश्वर—नहीं, मैं भला क्या खेलूंगा? और खेलूंगा भी तो तुमसे कह दूँगा।

इस प्रकार जागेश्वरप्रसादने वार्त्तालापका अन्त किया।

(३)

परन्तु पत्नीके मना करने पर भी जागेश्वरका जी न माना। इसका कारण यह था कि वह मिलकी नौकरीसे इतना ऊब गया था कि वह उससे मुक्ति पानेके लिए अधीरसा हो रहा था। यह ऐसी स्थिति है जिस स्थितिमें पड़कर मनुष्य बहुधा वे काम कर बैठता है जिनको करनेसे साधारणतया उसकी आत्मा पीछे हटती है। इसके साथ ही उसके दो एक सहकारी उसे आवश्यकतासे अधिक प्रोत्साहन दे रहे थे।

इतवारके दिन रामचरण जागेश्वरके घर पहुंचा और उसे एकान्तमें बुलाकर बोला—काहे चलते हो? जागेश्वर—हाँ चलते हैं, चलो।

दोनों चले। रास्तेमें रामचरणने पूछा—काहे, महराजिनसे तो नहीं बतायो?

जागेश्वर—नहीं बताया। वह तो जुएके नामसे चिढ़ती है। कहती थी कि सूखे चने मिलें सो अच्छा है; पर जुएका पैसा अच्छा नहीं।

रामचरण—ओहका का जान परै ऊकातो मजेमाँ घरमाँ बैठी रहत है ना? मिलवा सारेमें तूही धंधत हौ। तौहरे ऊपर जौन बीतत है वह तौहार महराजिन का जानें? जागेश्वरप्रसादने मनमें सोचा—कहता तो ठीक है। मिलकी नौकरीसे हमें जो कष्ट होता है उसका अनुमान हमारी पत्नी नहीं लगा सकती; यही कारण है कि वह इतनी अधीर तथा व्याकुल नहीं है जितना कि मैं हूँ।

जागेश्वरप्रसाद बोले—हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो।

रामचरण—हम बेठीक तो कबहूँ कहतै नहीं हन। अबकी हमहूँ खेलब और तौहूँ खेलौ। अपन-अपन तकदीर अजमाओ। दाँव लागि गा तो मालौ-माल होइ जइबे-न भइया, मालो-माल?

जागेश्वर—पर यह एक खराबी है। यदि जीत गये तो रुपये घरमें क्या कहकर देंगे? यदि यह कहेंगे कि जुएमें जीते हैं तब तो ठीक न होगा।

रामचरण—तू तो महाराज बहुतै सीध हौ। जब रुपैया हाथ मां धरि हौ तब महराजिन चुप्पै धै लहै। ऊ वखत न पूछि है कि कहाँसे लाये हो। ना भइया? रुपया ऐसिनै चीज है।

जागेश्वरने सोचा—यह भी ठीक है। जब सामने रुपये पहुँचेंगे तब कोई कुछ न पूछेगा।

इसी प्रकारकी बातें सोचता हुआ जागेश्वरप्रसाद रामचरणके साथ गया और दस रुपये किस्त पर ले आया।

दीपमालिका भाग्यचक्रकी भांति आ धमकी। जागेश्वर भी सब संकोच छोड़ कर दो रात तथा एक दिन बराबर जुआ खेला। पास दस ही रुपये थे। अत एव, पहले तो वह छोटे जुएमें अपने सहकारियों के साथ खेलता रहा। अन्तमें जब उसने दो सौके लगभग जीत लिए तब वह बड़े जुएमें पहुंचा। इसी प्रकार खेलते खेलते अन्तिम दिन जब वह उठा तब उसके पास ढाई हजारके लगभग रुपये बचे थे। जीत तो वह चार हजारके लगभग गया था परन्तु जुएके धर्मके अनुसार उसने खेलना न छोड़ा। अत-एव, डेढ़ सहस्रके लगभग पुनः हार गया।

रुपये ले कर जागेश्वर घरकी ओर चला। इस समय उसकी प्रसन्नताका पारावार न था। सोचता जाता था— बस अब मिलकी नौकरी छोड़ देंगे

और आनन्दसे कोई व्यापार करेंगे। इसमेंसे कुछ थोड़ा रामचरणको भी दे देंगे। उसी बेचारेने तो हमें उकसा-उकसा कर खेलनेके लिए उद्यत किया। यदि इतना जोर न डालता तो हम न खेलते और न इतना रुपया मिलता। सच पूछो तो उसीकी बदौलत इतने रुपये मिले ऐसी दशामें उसे कुछ न देना कृतघ्नता होगी।

इसी प्रकारकी बातें सोचते-सोचते जागेश्वरप्रसाद घर पहुँचे और जाते ही बड़ी प्रसन्नता तथा अभिमान के साथ रुपये पत्नीके सामने रख दिए।

पत्नी पहले यह समझ नहीं सकी कि क्या मामला है।

उसने पूछा—ये रुपये कैसे हैं?

जागेश्वर—हमारे हैं और कैसे हैं।

जागेश्वरने सोचा था, कि इतना सुनते ही उसकी पत्नी आनन्दसे फूल जायगी। परन्तु ऐसी कोई बात न हुई। उसकी पत्नीने उसी प्रकार गम्भीरतासे पुनः प्रश्न किया—कहाँ मिले?

जागेश्वर—सच बताऊँ?

पत्नी—हाँ, सच बताओ।

जागेश्वर—जुएमें जीते हैं।

पत्नीने विस्मित हो कर कहा-एं जुएमें? आखिर आप न माने, जुआ खेले ही?

जागेश्वर—न खेलता तो इतना रुपया कहांसे मिलता? बस, अब कभी न खेलूंगा—भाग्यकी परीक्षा हो गयी।

पत्नीने शुष्कभावसे कहा—अच्छा जैसी आपकी इच्छा। आपने जीते हैं, आप ही इन्हें खर्च करना, मैं तो इसमेंकी एक कौड़ी भी न छुऊंगी।

पत्नीके ये वाक्य सुनकर जागेश्वरका सारा आनन्द लुप्त हो गया। म्लानमुखसे उसने कहा—क्यों, आखिर इनमें कौन ऐब है?

पत्नी—यह पापका धन मुझे नहीं चाहिए। मुझे आपकी कमाईकी सूखी रोटी इससे कहीं अधिक प्यारी है।

जागेश्वरने मनमें सोचा—बड़ी मूर्खा तथा हठी स्त्री है।

यह पहला अवसर था कि जागेश्वरने अपनी पत्नीको मूर्खा तथा हठी समझा। उसने कुछ क्रोधमें आकर कहा—ऐसा धर्मात्मा बननेसे काम नहीं चलता। बड़े-बड़े लोग खेलते हैं-मैंने खेला तो कौन पाप किया?

पत्नी—बड़े लोग करें, उनको समाई है। बड़े लोग पाप करते हैं तो पुण्य भी तो करते हैं? एक-एक महाजन हजारों रुपये दान कर देता है। हम किस बिरते पर पाप करें?

जागेश्वर—अच्छा खैर, इस बेर जो हुआ सो हुआ, अब आगे ऐसा न होगा।

पत्नी—हो चाहे न हो, पर मैं इस रुपयेको हाथ न लगाऊँगी।

जागेश्वर पत्नीकी यह प्रतिज्ञा सुनकर सन्नाटेमें आ गया। चुपचाप बैठा पत्नीका मुंह ताकता रहा। अन्तमें बोला—तो इसे क्या करूं?

पत्नी—मैं क्या बताऊँ, जिस वास्ते लाए हो, वह करो!

जागेश्वर दुःखी हो कर बोला—लाया तुम्हारे वास्ते और किसके वास्ते लाऊँगा?

पत्नी—मेरे वास्ते नहीं लाये। मैंने पहले ही कह दिया था कि मुझे ऐसा धन नहीं चाहिए।

जागेश्वर—मैंने समझा कि तुम यों ही कहती हो।

पत्नी—यह मेरा खोटा भाग्य है कि आपने अभी तक मेरा स्वभाव न जाना। मैं अपने जीको क्या करूं? मुझे बाल्यकालसे ही इसी प्रकारकी शिक्षा मिली है। मुझे ये बातें कभी अच्छी लग ही नहीं सकतीं। मेरे पिता गरीब हैं, पर उन्होंने आज तक पापका पैसा नहीं कमाया। पूजा पाठ करके जो मिला सदा उसीमें सन्तोष किया। मुझे भी उन्होंने यही शिक्षा दी। इसीलिए मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं।

ये बातें पत्नीने कुछ इस भोलेपन तथा कपट-शून्यताके साथ कहीं कि जागेश्वरके हृदय पर इन बातोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने लज्जासे शिर झुका कर कहा—खैर यह मेरी गलती हुई कि मैंने तुम्हारे भावको नहीं समझा। परन्तु, आखिर ये रुपये क्या हों ?

पत्नी—मैं क्या बताऊँ। मिलकी नौकरीमें आपको कष्ट होता है, इस कारण यदि इन रुपयोंसे वह कष्ट दूर हो सके तो इन्हें काममें लाओ।

यह बात कहते-कहते जागेश्वरकी पत्नीके नेत्रों में आँसू भर आए।

जागेश्वरने विकल हो कर कहा—नहीं, नहीं मुझे कष्ट-वष्ट कुछ नहीं होता और जो थोड़ा बहुत कुछ होता भी है वह शामको तुम्हारा सुन्दर मुख देखनेसे दूर हो जाता है। अब ये रुपये तुम्हारे ही हैं—तुम इन्हें जो चाहो सो करो।

पत्नी—मैं क्या करूँ। मैं तो इन्हें हाथ भी नहीं लगाऊँगी।

जागेश्वर—अच्छा हो, जो बताओ सो करूँ—अब तो भूल हो ही गई। इस भूलका कोई प्रायश्चित्त है या नहीं ?

पत्नी—यदि प्रायश्चित्त करना चाहते हो तो इसे किसी धर्मके काममें लगा दो।

जागेश्वर प्रसन्न हो कर बोले—अब एक समझकी बात तुमने कही है। कहो तो नगरके अनाथालयको दे दूँ ?

पत्नी—हाँ, दे दो।

जागेश्वरप्रसादने चुपचाप रुपये उठाए और सीधे अनाथालयमें पहुँचे। अनाथालयके मैनेजरको रुपये दे कर उन्होंने सब वृत्तान्त कह दिया। मैनेजरको पहिले तो विश्वास न हुआ कि एक गरीब मनुष्य इतना बड़ा काम कर सकता है। अन्तमें जब उनको पूर्ण-रूपसे विश्वास करना पड़ा तब उन्होंने जागेश्वर की ओर उनकी पत्नीकी बड़ी प्रशंसा की। साथ ही मैनेजरने यह भी कहा कि आपको मिलकी नौकरीमें कष्ट होता है तो आप अनाथालयमें काम कीजिए। आपको हम अभी ४०) रु० मासिक देंगे। इसके पश्चात् जैसे-जैसे अनाथालयकी दशा सुधरती जायगी वैसे-वैसे आपका वेतन भी बढ़ता जायगा।

जागेश्वरने इस बातको हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन स्थानीय समाचार-पत्रोंमें यह सारा समाचार निकला। कुछ लोगोंने जागेश्वरको मूर्ख समझा और कुछने बुद्धिमान्। उसके कुछ मित्र तो अब तक यह कहते हैं कि जागेश्वरके बराबर पाजी संसारमें कोई नहीं। इतने रुपये हाथमें पाकर गवाँ दिये।

कुछ लोग उसकी प्रशंसा मुक्त कण्ठसे करते हैं। जुआरी लोग शिर हिलाकर गम्भीरता-पूर्वक कहते हैं—कुछ हो यह जुएका ही प्रताप है जो जागेश्वरको ऐसी अच्छी नौकरी मिली। न वह जुएमें इतने रुपये जीतता, न उसे ऐसी नौकरी मिलती, न उसका इतना नाम होता।

परन्तु, जागेश्वरका अन्तःकरण इस बातको स्वीकार करता है कि उसने जुआ खेलकर बड़ी भारी भूल की थी। ऐसे बुरे कामका इतना अच्छा परिणाम हुआ, यह केवल उसकी पत्नीकी सदिच्छा तथा धर्मबुद्धिका फल है।

[पृष्ठ ८४ के तेजी मन्दी का शेष]

ता० २२ दिसम्बरसे एक सप्ताहमें—

रुई २०) ३०), सुवर्ण विनौला १॥) २), चान्दी एरण्डा मूंगफली ३) ४), अलसी गेहूँ ।–) ।≡) की संख्यामें चढ़ाव उतार होते समय पूरा होगा, यहाँ बाजारका झुकाव कुछ मन्दीकी ओर रहेगा अतः उछालेमें माल बेचते या मन्दी लगाते व्यापार करना ठीक है।

ता० २९ दिसम्बरसे एक सप्ताहमें—

युद्धके भयङ्कर समाचारोंसे बाजारमें अनवस्था, रुख तेजीकी ओर। आई हुई तेजीमें एक बार मन्दी का रियेक्शन आकर अन्तमें पुनः तेजी, रुई १५) २०) चान्दी २) २॥) के लगभग ऊपर नीचे अवश्य होगी।

ता० ४ जनवरीसे एक सप्ताहमें—

यहां टेम्परेरी मन्दी मानते तेजीका तमञ्चा छूटने वाला है सौदा खरीदीका करें भाव मिल जाएँगे। अगले सप्ताहमें अच्छी तेजी होगी।

❀ भ्रान्त पथिक ❀

[लेखक—श्री पं० गौतम जी शर्मा शास्त्री]

ओ भ्रान्त पथिक किस धुनमें तू, क्या सोच रहा करना क्या है ?

[१]

जिस पथमें तूने चलनेका, दुस्साहस है मनमें ठाना।
उसमें तो तेरे पद-पदमें, हैं विघ्न बाधनाएँ नाना ॥
उस पथ पर चल दुर्लभ तुझको, वह ध्येय जन्म-भरमें पाना।
कुछ समय पूर्व था तूने जिसको, सुगम कार्य मनमें माना ॥
सोच लिया था धरा धामको, पदाक्रान्त बलसे करना।
था मानो यह भीषण नदको, जीर्णतर तरिसे तरना ॥
अब आँख उठाकर देख तनिक, तू जीना या मरना क्या है ?
ओ भ्रान्त पथिक किस धुनमें तू, क्या सोच रहा करना क्या है ?

[२]

इस लीलाधरकी लीलाको, क्यों उथल पुथल करने जाता।
निज उद्धतताका इतिहासमें, क्यों चित्रण भरने जाता ॥
जलती ज्वालमें बन पतङ्ग, क्यों जीवन-धन हरने जाता।
मृगतृष्णा ले मरुभूमिमें, क्यों नर-कुरङ्ग मरने जाता ॥
क्या इस अनन्त संसृतिमें, कोई आ कर है रहने पाता।
विश्वनियन्ताके नियमोंमें, कोई हस्तक्षेप करने पाता ॥
रे मूढ़, न जान सका कुछ भी, इस जीवनमें करना क्या है ?
ओ भ्रान्त पथिक किस धुनमें तू, क्या सोच रहा करना क्या है ?

[३]

क्या ईश्वरकी इस सृष्टिमें सब जीवन जीवन सम रखता।
उसके धन प्राण हरण कर तू, फिर क्यों जीवन अपना रखता ॥
आत्ममग्न हो सोच तनिक, क्यों मनमानी डींगें भरता।
दुष्कर्मोंका फल भी बुरा है, क्यों बात न यह जीमें धरता ॥
अब समदर्शी बन छोड़ दुराग्रह, नर क्यों हिंसावादी बनता।
उभय लोक सध जाएँ तेरे, यश गावेगी सारी जनता ॥
इस जीवनका है चरम-लक्ष्य, क्या सोच कि अब करना क्या है ?
ओ भ्रान्त पथिक किस धुनमें तू, क्या सोच रहा करना क्या है ?

कुछ अनुभूत प्रयोग

[लेखक—कविराज श्री विद्याधरजी विद्यालङ्कार आयुर्वेदशास्त्री भिषगाचार्य]

(१) गूंगापन या हकलापन—

हल्दी, बच, काश्मीरी कुठ, पिप्पली, सोंठ, काला जीरा, अजवायन, मुलट्ठी, और सेंधा नमक। इन सबको एक एक तोला ले कर कूट पीस छान कर रक्खें। छोटे बालकको २-३ रत्ती और युवकको एक माशा मात्रा कोसे घीसे दिनमें दो बार चटावें। इसका नाम "कल्याणावलेह" है। इसे धैर्य पूर्वक निरन्तर प्रयोग करानेसे गूंगापन हकलापन आदि जीभ और तँदुएके रोग निश्चय ही दूर हो जाते हैं। हमने इसको जिन-जिन रोगियों पर बरता है उनको सदा ही इससे लाभ हुआ है। यदि इसके साथ प्रातःकाल स्वर्ण-भस्म भी उचित मात्रामें मधुके साथ खिलाई जावे तो इसका गुण शीघ्र प्रकट होता है।

(२) गर्भस्राव पर अचूक योग—

जिस स्त्रीको तीसरे चौथे महीने गर्भस्राव हो जाता हो उसे ब्राह्मीका चूर्ण दो भाग, शुद्ध गेरु एक भाग, दोनोंकी जलसे मटरके दानेके तुल्य गोली बनाकर दो गोली नित्य ताजे पानीके साथ निगल जानी चाहिए, अथवा ३ माशे सूखी ब्राह्मी या १ तोला ताजी ब्राह्मीको २-३ काली मिर्चें डालकर १ पाव पानीमें घोटकर पिलाना चाहिए। इससे निश्चित ही गर्भ-स्राव रुककर सन्तान पूर्णायु उत्पन्न होती है। यह योग हमारा अनेक बारका अनुभूत है।

(३) सब प्रकारका मलेरिया—

यदि मलेरिया ज्वर हो अथवा सब प्रकारका विषम-ज्वर हो तो प्रथम त्रिफला, सनाय आदिका मृदु विरेचन दे कर बादमें सुदर्शन चूर्ण गरम जल या शीतल जलसे खिलावें। इसके अतिरिक्त "मालती" (इस नामकी औषधि अमृत औषधालय पटियालासे मिलती है, जिसका रंग-रूप क्युनीन जैसा सफेद है परन्तु कड़वी नहीं है और न गर्म खुश्क है। इससे कानोंमें साँ साँ और सिरमें चक्कर आदि कुनीनके समान कुछ भी उपद्रव नहीं होते। यह क्युनीनकी अपेक्षा बहुत सस्ती है) गर्म पानी या अर्क गाजबाँसे खानेसे सब प्रकारका मलेरिया नाश हो जाता है। इसे हम २०-२२ सालसे अनुभव कर रहे हैं।

(४) सूखी तर खाँसी और राजयक्ष्मा पर उत्कृष्ट औषधि—

छोटी कटेलीका पञ्चाङ्ग ५ सेर, ३२ सेर पानीमें डाल रात्रिको भिगो दें, प्रातःकाल १०० बड़ी हरड़ें एक पोटलीमें बांध कर इसे दोला-यन्त्रसे लटका देवें. और अग्नि पर पकावें। जब पकते-पकते जल ८ सेर शेष रह जावे तो उसे उतार कर दो बार भली प्रकार छान लें। फिर इसमें दो साल पुराना गुड़ ५ सेर डाल कर घोल लेवें फिर छन लेवें। फिर पोटलीमेंसे निकाली हुई हरड़ोंको धो कर इसमें डाल देवें और मन्द-मन्द अग्नि पर लोहेकी कड़ाहीमें पकावें, जब गाढ़ा होनेको आये तो उतार लेवें और शीतल होने पर सोंठ, मिर्च, पीपलका समभाग चूर्ण १ पाव और दालचीनी, तेजपात, अलसी, नागकेसर व छोटी इलायचीके बीजोंका समभाग चूर्ण ३ तोला ले कर डालें और शुद्ध शहद १ पावभर डालें। सबको एकत्र मिलाकर किसी चीनी या शीशेके बरतनमें रक्खें।

इसमेंसे १-१ माशा मात्रा दिनमें कई बार चाटे।

अर्श (बवासीर)

[लेखक—कविराज श्री पं० दयानन्दजी शर्मा भिषगाचार्य धन्वन्तरि]

प्राणी चौरासी लाख योनियोंमें उत्पन्न हो कर सबके अनन्तर मनुष्य-योनि प्राप्त करता है। यही एक योनि है जिसमें प्राणी मोक्ष प्राप्त करनेका प्रयत्न कर सकता है। यदि इस योनिमें उत्पन्न हो कर कुछ भी साधन न कर सका तो उसका मनुष्य-योनिमें जन्म लेना व्यर्थ है। मोक्ष प्राप्तिके लिए स्वस्थ रहना अत्यावश्यक है, जो मनुष्य अस्वस्थ हैं वे ईश्वर भजन करनेमें असमर्थ हैं। आजकल भारतवर्षमें अर्शने अपना आधिपत्य स्थापित कर बहुत सारे लोगोंको पीड़ित कर रक्खा है। वे पीड़ित लोग दिन रात किसी कार्य करनेकी अपेक्षा चारपाई पर पड़े हुए त्राहि २ करते रहते हैं। यहां तक कि उन्हें अन्नपान करना कठिन मालूम पड़ता है, कुटुम्बी भी उन्हें मन ही मन कोसा करते हैं।

अर्श (बवासीर) ६ प्रकारका होता है—१ वातसे, २ पित्तसे, ३ कफसे, ४ रक्तसे, ५ सन्निपातसे (सब दोषोंके मेलसे), ६ जन्मसे।

सम्प्राप्ति तथा रूप

वातादि दोष, त्वचा, मांस, मेद तथा मांसाश्रित रक्तको दूषित कर गुदाकी शिराओंको फुला देते हैं; वे फूली हुई शिराएं मस्सों तुल्य दिखाई पड़ती हैं, उन्हें मस्से ही कहा जाता है। उन मस्सोंको अर्श या बवासीर कहते हैं।

कारण

किसी एक रसकी अधिकता, थोड़ा अथवा असमय भोजन करना, अति मदिरापान, अति मैथुन करना, अति शीत और अति उष्णताका सेवन करना, अति व्यायाम, शोकका करना, कठिन वस्तु पर बैठना, घोड़े आदिकी अधिक सवारी करना। अधिक समय तक अतिसार (दस्त) या कोष्ठबद्धता (कब्जीयत) रहना।

लक्षण

वातार्श:—

सूखे लाल और काले वर्णके, बीचमें कुछ मुड़े हुए टेढ़े, कदम्बके पुष्पके तुल्य सुई मुख वाले मस्से होते हैं। रोगी शूल सहित पतला मल (दस्त) का त्याग करता है। कमर पीठ नाभि आदिमें वायुजनित पीड़ा तथा वायुके रोग होते हैं। नख नेत्र दांत आदि काले पड़ जाते हैं।

पित्तार्श:—

नीले चमकदार और पीले वर्णके छोटे छोटे मस्से होते हैं। अर्थात् जलोकाके मुखके सदृश गीले और झरने वाले होते हैं; इसमें रोगी दाहयुक्त रक्त मिला मलका त्याग करता है और मूर्च्छादि पित्तजनित उपद्रव होते हैं। नख नेत्र दांतादि पीले पड़ जाते हैं।

इससे सब प्रकारकी खाँसी, राजयक्ष्मा दूर हो जाते हैं। हम इसके द्वारा बहुतसे रोगियोंको लाभ पहुँचा चुके हैं।

(५) सूखे बच्चों पर—

गाजबाँ, गुले गाजबाँ, मुलट्ठी, मकोय, प्रसौशाँ, प्रत्येक १-१ माशा और खतमी ३ माशा डाल कर २ छटांक पानीमें भिगो कर पकायें। आधी छटांक बचे तो छान कर मिश्री मिला कर दो बार प्रातः सायं पिलाओ, ३ मासमें बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो जाएगा। इसके अतिरिक्त एक प्राचीन अप्रकाशित सुदुर्लभ संस्कृतके आयुर्वैदिक ग्रन्थका 'कुमार कल्याणसुधा' का हम प्रयोग करते हैं। जो सूखे बच्चोंको बहुत जल्दी स्वस्थ और मोटा ताजा कर देता है।

कफ़ार्शः—

श्वेत, मूलमें मोटे, स्थिर, गोल, चिकने धुंधले और मुनक्काके आकारके होते हैं। इसमें रोगी मांस धोवनके समान मल त्यागता है। शोथ, शीतज्वर आदि कफके उपद्रव होते हैं।

रक्तार्शः—

बड़की कोंपल अथवा मूंगेके रंगके समान लाल मस्से होते हैं। इसके लक्षण पित्तार्शके लक्षणसे मिलते हैं। जब रक्त अधिक निकल जाता है तो मूर्च्छादि उपद्रव हो जाते हैं।

सन्निपातार्शः—

इसमें सब दोषोंके लक्षण पाए जाते हैं।

साध्यासाध्यः—

गुदामें ३ वलियां होती हैं; यदि यह अर्श बाहर की वलीमें होवे तो साध्य, मध्यकी वलीकी कष्टसाध्य और अन्दरकी वलीकी असाध्य होती है।

सन्निपातकी यदि थोड़े लक्षणोंयुक्त होवे तो याप्य (चिकित्सा करते रहने पर शान्त रहे) और पूर्ण लक्षणों युक्त असाध्य होती है। एक वर्षसे अधिककी कष्टसाध्य और जन्मकी असाध्य होती है।

चिकित्साः—

अर्श शमनके चार उपाय हैं। १ औषध, २ क्षार, ३ अग्नि और ४ शस्त्र।

विस्तारके भयसे यहां औषध चिकित्साका ही वर्णन किया जाता है।

(१) नीमकी गिरी, वकायनकी गिरी, हरड़, प्रत्येक ५ तोले और हींग ३ तोले ले कर घीमें भून लेवें, फिर ५ तोले मुनक्का डाल कर झाड़ीके बेरके बराबर गोली बना लेवें। एक एक गोली प्रातः और सायं गौ दूधके साथ खावें। सब प्रकारकी अर्शको लाभ करता है।

(२) सौंठ ३ पल, कालीमिर्च एक पल, पीपल २ पल, चव्य १ पल, तालिशपत्र १ पल, नागकेशर आधा पल, पीपलामूल २ पल, तेजपात १ तोला, इलायची २ तो०, दालचीनी २ तो०, खस २ तो०, इन सब औषधियोंको महीन कर ३० पल गुड़में ६-६ माशेकी गोली बना लेवें। पित्तार्शमें चार गुणा चीनीमें ले कर उसकी चाशनीमें गोली बना लेवें। प्रातः सायं १-१ गोली गर्म दुग्धसे लेवें। यह सब प्रकारकी अर्शके लिए लाभप्रद है।

(३) अभयारिष्टः— हरड़ ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, वायविडंग ४० तो०, महुवेके फूल ४० तोले इन सबको जौकुट कर ४०६६ तोले जलमें क्वाथ बनावें। जब जल कर चौथाई पानी रह जावे, तब ठंडा होने पर ५ सेर गुड़, गोखरू, निसोथ, धनिया, धायके फूल, इन्द्रायणकी जड़, चव्य, सौंफ, सौंठ, दन्तीमूल, मोचरस प्रत्येक ८-८ तोला डाल कर, मुख मुद्रा कर १ मास तक रहने देना चाहिए। पीछे छान कर १। तो० भोजनके पश्चात् जल मिला कर लेवें, यह अर्शको लाभ करता है। जब अर्शके साथ संग्रहणी, उदररोग, पाण्डु, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, शोथ होता है, उस समय भी लाभ करता है। वृद्धावस्था तथा पुराने रोगोंमें भी लाभप्रद है।

(४) नागकेशर और मिश्री दोनोंको समान भाग ले कर ६ माशे प्रातः, ६ माशे सायं खानेसे रक्तार्शमें अद्भुत लाभ दिखाती है।

उपद्रव चिकित्सा

(१) आकाशबेल (अमरबेल) की टिकिया बना कर बांधनेसे दाह और चीसको लाभ करता है।

(२) गेंदेके पत्तियोंकी टिकिया दाह और तोद (चीस) को लाभ पहुँचाती है। और रक्तको बंद करती है।

(३) मस्सों पर कुचला घिस कर लेप करनेसे पीड़ामें लाभ करता है।

नोटः—नं० १ व २ मेंसे एक औषधि लेवें और अभयारिष्ट भोजनके अनन्तर दोनों समय लेनेसे कुछ दिनोंके अनन्तर अच्छा लाभ पहुंचाती है।

वर्जनीय (अपथ्य)

मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, स्त्री-सहवास, घोड़ा ऊंट हाथी साइकिल आदिकी सवारी करना, अनुचित तथा विकट भावसे बैठना तथा अर्शवृद्धिकारक दोषयुक्त आहार अर्शके रोगीके लिए वर्जनीय हैं।

अन्वेषणा

प्यारे पाठकों! आप यह तो जानते ही हैं कि भूत-मात्र सुखाभिलाषी हैं। फिर यदि मनुष्य सुखकी इच्छा करे तो क्या आश्चर्य है? यह आश्चर्यका विषय नहीं, किन्तु उसका यह स्वभाव ही है। स्वभावको छोड़ कर वस्तुसत्ता प्रतीत ही नहीं हो सकती। वस्तु-सत्ता एक-मात्र स्वभावके ही आधीन है, यह सर्व-मान्य सिद्धान्त है, अस्तु।

उस सुखकी प्राप्ति तथा उसकी अन्तिम पराकाष्ठा पर्यन्त उन्नति करना ही मनुष्य मात्रका स्वभाव है। क्योंकि मनुष्य-योनि कर्मप्रधान योनि है। अनुकूल कर्म करने पर ही उन्नति हो सकती है। सुखप्राप्ति या उन्नतिका साधन तदनुकूल क्रिया ही है, यह बात ठीक है, किन्तु क्रियामें प्रवृत्ति होनेके लिए उसके इष्ट-साधनता ज्ञानकी आवश्यकता हुआ करती है। इष्ट साधनको ही उपाय कहते हैं। उपायका निर्णय प्रमाणके बिना नहीं हो सकता। फलमें व्यभिचार होनेसे उपाय अनुपाय हो जाता है। अतः प्रमाणित उपाय ही उपाय हो सकता है। कुल जाति देश तथा राष्ट्र आदिकी उन्नतिमें इतिहासका अध्ययन एक प्रमाणित उपाय कहा जा सकता है। कारण इतिहास के अध्ययन पर ही इनकी उन्नति निर्भर है। जिस राष्ट्र या कुल जाति देशका इतिहास जितना सुन्दर होता है वे उतने ही उन्नत कहलाते हैं। समष्टिकी उन्नति होनेसे व्यष्टि अवश्य उन्नत हो सकती है। व्यष्टिकी उन्नतिके लिए समष्टिकी उपेक्षा करना व्यष्टि की भी मृत्युसाधक बन जायगी। श्रीराष्ट्रालोकमें इस विषयमें कितना सुन्दर लिखा है—

स्वमङ्गल समाशंसी यः स्वराष्ट्रमुपेक्षते।
स बुभुक्षानिवृत्त्यर्थं विषमेवात्ति केवलम्॥

[जो पुरुष अपने मङ्गलकी कामनासे प्रेरित हो कर उसके साधनके लिए राष्ट्रके मङ्गलकी ओर ध्यान दिए बिना ही अपना मङ्गल सिद्ध करना चाहता है वह भूख शान्त करनेके लिए विष खा रहा है ऐसा समझना चाहिए। जिस प्रकार विष खानेसे बुभुक्षित पुरुषकी बुभुक्षा शान्तिके पहले ही मृत्यु हो जाती है उसी प्रकार राष्ट्रकी उपेक्षा व्यक्ति की उन्नतिके पहले ही उस व्यक्तिका विनाश कर देती है।]

अतः मनुष्यमात्रका स्वाभाविक प्रधान कर्तव्य है कि अपने इतिहासकी अन्वेषणा करे तथा उसका स्वाध्याय करे। भारतीय प्राचीन महर्षियोंने इतिहास के महत्त्वको जितना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था उतना आज भी यदि भारतीय उसे महत्त्व दें तथा उसका स्वाध्याय करें तो भारत पुनः अपनी पतित दशाको सुधार नहीं सकता ऐसा नहीं कहा जा सकता, अपितु यही कहना पड़ेगा कि भारतीय अपना पुनरुद्धार अपने इतिहासके स्वाध्यायसे ही कर सकते हैं। भारतीय ग्रन्थोंको देख कर यह विवश हो कर कहना पड़ता है कि भारतीयोंने इतिहासका महत्त्व जितना निश्चित किया था, उतना किसी भी देशान्तर ने इतिहासका महत्त्व नहीं जाना था। भारतीयोंने इतिहासको पाँचवाँ वेद कहा है; देखिये छान्दोग्योप-निषद् सनत्कुमार नारद संवाद। भारतीयोंने इतिहास के दैनिक स्वाध्यायको पञ्चमहायज्ञोंमें स्थान दिया है। प्रतिदिनके तर्पणमें भी इसको स्थान दिया है। व्रत उत्सव जयन्तियां तथा श्राद्धादि क्रियाएं भी इति-हास ज्ञानको जीवित रखनेका साधन है। इतिहास का अनध्ययन देश जाति कुल तथा राष्ट्रका विनाश कर देता है। महाभारतादि बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें आपको इतिहासका महत्त्व सहस्रों वाक्योंसे मिल सकता है। वहाँ स्थान स्थान पर ऐसा वाक्य मिलेगा—

"हन्त ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्।"

जिनको सुनते ही इतिहासके स्वाध्यायकी ओर स्वाभाविक उत्कण्ठा उत्पन्न हो जाती है। भारत-

वर्षमें किसी समय अठासी-सहस्र (८८०००) ऋषि केवल नेमिषारण्यमें सूतसे इतिहास तथा पुराणोंका श्रवण करते थे और आज उसके स्थानमें अठासी-सौ भी सारे भारतमें नहीं मिलेंगे, यह कितने दुःखकी बात है। जब हम भारतेतर देशवासियोंके "भारतीय तो इतिहासका महत्त्व ही नहीं जानते" ऐसे-ऐसे आक्षेपोंको सुनते हैं, तब हृदय विदीर्ण हो जाता है। परन्तु क्या किया जाय, परतन्त्र राष्ट्रको सब कुछ सहना पड़ता है, क्योंकि वह परतन्त्र है, उसका कोई संरक्षक ही नहीं। कारण वह स्वयं ही साहस हारे बैठा है। अपने आपके बिना संरक्षण दूसरा कौन कर सकता है ? जो स्वयं अपने आपके लिए मरना मारना नहीं जानता या नहीं मरता मारता उसके लिए पराधीनता ही पारितोषिक है।

श्री राष्ट्रालोकमें इस विषय पर कितना सुन्दर लिखा है देखिये—

पारतन्त्र्यस्य निगड़ं दृढी कुर्वन्ति ते नराः।
ये राष्ट्रार्थं न जानन्ति मर्तुमात्मविरोधिनः॥

[अपने आपका वैर करनेवाले राष्ट्रके लिए जो मरना नहीं जानते वे पारतन्त्र्यकी बेड़ियोंको सुदृढ़ करते रहते हैं। वे पुरुष अज्ञानी हैं।]

"उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानम्" इत्यादि वाक्योंसे श्री मद्भगवद्गीतामें स्वयं श्रीकृष्ण भगवान्ने यही बात कही है। आज जैसे कई विद्याओंका भारतसे लोप हो गया तथा हो रहा है वैसे हो इतिहासका भी हो गया और हुआ जा रहा है। यदि इसकी ओर सम्यक्तया ध्यान न दिया गया तो भारतके सुधरनेकी आशा करना वृथा है। "इतिहास" शब्दका अर्थ तो इतना ही है कि "ऐसा था" उसको बतानेवाले ग्रन्थोंको इसीलिए इतिहास कहा जाता है। स्वतन्त्र भारतका इतिहास पढ़नेसे स्वतन्त्र होनेकी इच्छा होगी तथा परतन्त्रका इतिहास पढ़नेसे मन दुःखी होगा और शिर नीचा करना पड़ेगा, अतः अग्रिम भारतीय इतिहास परतन्त्रताका इतिहास न होने पावे, इसके लिए प्रयत्न करना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है, अस्तु।

इतिहास यदि अप्रमाण होगा तो अत्यधिक हानि होगी, अतः इतिहासमें किसी भी बातको बिना प्रमाणके कांटेसे तौले नहीं लिखना चाहिए। इतिहास लेखक पर महान् प्रतिभूत्वका भार रहता है, इस बातको समझ कर ही इतिहास ग्रन्थोंका प्रणयन करना श्रेयस्कर हो सकता है। इतिहास लेखक ही इतिहासका संजीवन तथा विनाशन करनेका सामर्थ्य रखता है। इतिहासका भलीभांति सप्रमाण स्वाध्याय तथा अनुशीलन न करते हुए इतिहास लिखनेवाले इतिहासके हत्याकारी हैं, हत्यारोंको दण्ड मिलना चाहिए। इतिहास लेखकको अत्यन्त सावधानी, निस्पृहता, अनेक ग्रन्थोंका अवलोकन, अनेक भाषाओं तथा लिपियोंका ज्ञान आवश्यक है। दो-चार अंग्रेजी पुस्तकें पढ़कर भारतीय इतिहास पर रेखाएं खेंच देना तथा अपने आपको इतिहासज्ञ मनवा लेना इस प्रकारकी दूषित मनोवृत्ति आजकल अधिक प्रथित हो रही है। इसका एकमात्र कारण विशुद्ध भारतीय शिक्षाके अभावके अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? शिक्षा संस्थाओंमें विशुद्ध भारतीय शिक्षाका प्रारम्भ से ही यावत्पर्यन्त व्यवस्थापन नहीं होता तावत्पर्यन्त भारतकी उन्नतिकी आशा करना शशविषाणसे अधिक कुछ नहीं। इतिहास लिखनेवालोंको यह सर्वदा ध्यानमें रखना चाहिए कि यथावृत्त (जैसा हो चुका है वैसा) ही जो लिखा जाय वही इतिहास नामके योग्य है। उसमें अन्यथा करना महान् पाप होगा, उसके लिखनेवाले भी दण्डके योग्य हैं, कारण ऐसे अशुद्ध इतिहास पढ़नेवालोंकी बड़ी हानि होती है। इतिहास अच्छी बातोंका हो, अथवा दुष्ट बातोंका, जैसाका तैसा ही कहा लिखा जाना चाहिए, उसमें फेरफार करनेकी आवश्यकता नहीं होती। इतिहास निष्पक्षपात हो कर ही लिखना चाहिए। इतिहास लेखनमें प्रियताको कोई स्थान नहीं, उसमें केवल सत्यान्वेषण तथा सत्य लेखनकी ही आवश्यकता है। इतिहासमें कोई भी बात हो वह नितान्त साधारण ही क्यों न हो, वह सत्य प्रमाणित ही

उपनिषद् और डुईसन साहब

[लेखक—श्री पं० चन्द्रभूषणजी शुक्ल वेदाचार्य]

[विद्वान् लेखक श्री राधाकृष्ण संस्कृत महाविद्यालय खुर्जाके योग्य अध्यापक हैं। पाश्चात्त्य लोक भारतीय वर्ण-व्यवस्थाका विनाश करनेके लिए वथा भारतीय लोगोंमें आपसमें विद्वेष उत्पन्न करनेके लिए किन-किन हथकण्डोंसे काम लेते हैं, इस रहस्यका इस लेखके मननसे भली-भांति भण्डाफोड़ हो सकता है। पाठक भली-भांति इस लेखका स्वाध्याय करें —सम्पादक]

हम यहाँ पर डुईसन साहबके उपनिषद् विषयक लेखकी समालोचना 'श्रीस्वाध्याय' के पाठकोंके सामने उपस्थित करते हैं, जिससे पाठकोंको पाश्चात्त्य विद्वानों के संस्कृत-साहित्य विषयक भ्रमका किञ्चित परिचय होगा। डुईसन साहब उपनिषद् शब्दका अर्थ इस प्रकार करते हैं कि— "यह शब्द उप उपसर्ग सद् धातुसे बनता है, जिसका प्रयोग शिक्षाके लिए गुरुके पास जानेमें होता है। अत एव इसका प्रयोग पहले उस रहस्य सभामें होता था, जिसमें विशेष व्यक्ति ही सम्मिलित होते थे। इस प्रकार उपनिषद् संसद् परिषद्, इनमें अन्तिम दो सभाएँ तो साधारण होती थीं, परन्तु उपनिषद् यह रहस्य सभा थी और शनैः शनैः इस शब्दका अर्थ रहस्य-विद्या हुआ जिसकी चर्चा इस सभामें की जाती थी।" इन महाशयके कथनानुसार यह सभा क्षत्रियोंकी थी जिसका विषय ब्राह्मणोंसे गुप्त रक्खा जाता था। जिनका प्रवेश इस सभामें नहीं होता था। अत एव इस विद्याका नाम उपनिषद् या रहस्य विद्या पड़ा। इसका विरोध कर्म-काण्डसे स्पष्ट है, क्योंकि कर्मकाण्डके लिए आवश्यक वर्णाश्रमादि धर्मोंको यह विद्या व्यर्थ बतलाती है। तात्पर्य यह है कि जब क्षत्रिय लोग ब्राह्मण ग्रन्थोंमें प्रतिपादित यज्ञोंके करनेसे दुःखित हो गये तब उन्होंने इस विद्याका संग्रह किया और सिद्धान्त माना कि सब मनुष्य ब्रह्म स्वरूप हैं, जगत् मिथ्या है। इस सिद्धान्तको पुष्ट करनेके लिए डुईसन महाशय यह युक्ति देते हैं कि उपनिषद् विद्या तथा उसके आचार्यों को ब्राह्मण लोग ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखते थे, क्योंकि इससे उनके यज्ञ तथा दक्षिणामें बाधा पड़ती थी। परन्तु यज्ञके बन्धनोंसे बचनेकी सभा न होनेके कारण क्षत्रिय लोग अधिक सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। यह भाव बृहदारण्यक उपनिषद्के ३ तथा ४ अध्यायसे जिनमें याज्ञवल्क्यके प्रति ऋषियोंका प्रश्न तथा जनकका आदर है निकल सकता है। इस प्रकार यद्यपि इस सिद्धान्तका अन्वेषण चाहे किसी ब्राह्मणने किया हो परन्तु इस विद्याका प्रचार तथा

लिखनी चाहिए, अन्यथा उसका न लिखना ही अच्छा। इतिहासको कोई कलङ्कित न कर सके, इसके लिए विद्वानोंको निरन्तर सुदृढ़ प्रयत्न करना चाहिए। इतिहासके अध्यापनके लिए इतिहास विषय के आचार्योंको राष्ट्रकी ओरसे नियुक्त करना चाहिए। अपने राष्ट्रका इतिहास आप स्वयं ढूँढें और लिखें, अनन्तर राष्ट्रिय इतिहासाचार्यों से संशोधित सुसम्पादित कराकर उसे प्रकाशित किया जाय। अराष्ट्रियों के प्रणयन किये हुए इतिहास प्रायः प्रामाणिक नहीं हो सकते। अप्रामाणिक इतिहास राष्ट्रका कल्याण नहीं कर सकता। आजकल प्रायः षड्विकारोंसे वशीभूत पुरुष इतिहास लिखने बैठ जाते हैं, उनके लिखे हुए उस इतिहाससे हानिके अतिरिक्त क्या लाभ हो सकता है? इतिहासका स्वाध्याय करनेके लिए स्थान स्थान पर इतिहास-संशोधक-मण्डल स्थापित करनेकी आवश्यकता है। राष्ट्रके इतिहासको राष्ट्रवादसे विरोध रखनेवाले तथा परराष्ट्रिय कलङ्कित ही करनेका प्रयत्न करते रहते हैं। परराष्ट्रियों की शिक्षासे शिक्षित भी प्रायः यथावत् इतिहास नहीं लिख सकते, अस्तु । —अ० बा० आचार्य।

गौरव क्षत्रियोंमें था; यहां तक कि छान्दोग्यके १०-२४ तकके खण्डोंको देखनेसे विदित होता है कि ५ ब्राह्मण विद्यासे सम्पन्न ब्रह्मविद्या सीखनेके लिए उद्दालक ऋषिके पास गए और उसने अपनी विद्या में त्रुटि देख कर केकयके राजा अश्वपतिके पास उन्हें भेज दिया। उसने उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया। बृहदारण्यक तथा कौषीतकीमें यह कथा मिलती है। गार्ग्यबालाकि घूमते घूमते काशीके राजा अजातशत्रु के पास गये और कहा कि राजन्! हम तुम्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश करेंगे। राजाने यह स्वीकार किया तब इन महात्माने ब्रह्मके विषयमें अनेक व्याख्याएँ कीं। तब राजाने उन व्याख्यानोंमें त्रुटि दिखलाई। तब वह बोले कि राजन्! आप ही हमें ब्रह्मका उपदेश कीजिए। इस पर राजाने कहा यह तो उल्टी बात है कि ब्राह्मणको ब्रह्मका उपदेश क्षत्रिय करे, इस भूमिकाके साथ राजाने ब्रह्मका उपदेश किया। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि गार्ग्यबालाकि जैसे प्रसिद्ध ब्राह्मण विद्वान्को यह विद्या नहीं आती थी और उसको क्षत्रियसे सीखनी पड़ी। छान्दोग्यके प्रथम अध्यायके पढ़नेसे पता चलता है कि प्रवाहण जैवाली नामक राजाने दो ब्राह्मणोंको आकाशका उपदेश दिया। छान्दोग्यके ७वें अध्यायमें युद्धके देवता सनत्कुमारने ब्राह्मण नारदसे कहा कि जो तुमने पढ़ा वह नाममात्र ही है। इसी प्रकार प्रवहण जैवलिने छान्दोग्यमें ५ अध्यायके ३-१० तकके खण्डोंमें और बृहदारण्यकके ५वें अध्यायके द्वितीय खण्डमें गौतमको उपदेश करते हुए यह स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि अभी तक यह विद्या ब्राह्मणोंमें नहीं थी, पहले मैं ही तुमको उपदेश करता हूँ, यह विद्या क्षत्रियोंमें थी इस लिए उनका सम्पूर्ण जगत्में प्रशासन हुआ। उपर्युक्त लेख से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि इस विद्याको पहले क्षत्रियोंने पुष्ट तथा उन्नत किया, बादमें अन्य विद्याओं की भांति यह विद्या भी ब्राह्मणोंने अपने हाथमें ली होगी। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि पहले उपनिषद्का अभिप्राय एक गुप्त सभासे होगा और धीरे धीरे वह विद्याके नामसे प्रसिद्ध हुई।' डुईसन साहबके लेखानुसार यह विद्या यज्ञोंके प्रति द्वेष भावसे उत्पन्न हुई। अब विचारणीय यह है कि जिसमें शान्ति प्रधान है तथा बिना शुद्धान्तःकरणके समझना अत्यन्त कठिन है वह विद्या विद्वेष बुद्धिको ले कर उत्पन्न हुई। उक्त महाशय इस विषयमें उपर्युक्त ही उत्तर दे सकते हैं कि यज्ञोंके प्रति विद्वेष बुद्धिसे उत्पन्न हुई। परन्तु उपनिषदोंकी उत्पत्तिका कारण यदि यही होता तो उपनिषद् विद्याके प्रचारक यज्ञको घृणाकी दृष्टिसे देखते और उपनिषदोंमें यज्ञकी चर्चा न होती। परन्तु उपनिषदोंके अध्ययनसे प्रतीत होता है कि उपनिषद् विद्याके धुरन्धर विद्वान् तथा जिज्ञासु ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों ही थे, जिनको यज्ञोंसे तङ्ग आ कर उपनिषद्का प्रचारक बताया जाता है—उन्होंने बड़े बड़े यज्ञ किये जिनमें देश देशान्तरोंके विद्वान् ब्रह्मवेत्ता लोग यज्ञ सम्पादनको उपस्थित होते थे; यह बृहदारण्यकमें स्पष्ट लिखा है—

"जनको ह वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे तत्र ह कुरुपाञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमवेता बभुवुः।"

अर्थात् विदेहके राजा जनकने यज्ञ किया और उसमें उसने ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी। कुरु तथा पाञ्चालके ब्राह्मण उसमें उपस्थित हुए। जनक जैसे ब्रह्मविद्याके जिज्ञासु तथा आचार्यका यज्ञ करना तथा याज्ञवल्क्य जैसे ब्रह्मविद्याके विद्वान्का उपस्थित होना सिद्ध करता है कि उपनिषद् विद्याके विद्वान् कर्मकाण्डमें उतनी ही तत्परता रखते थे कि जितनी कर्मकाण्डी लोग। बृहदारण्यकके तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायसे यह भाव निकालना कि 'उपनिषदोंका यज्ञ से विद्वेष होनेके कारण उपनिषद् वेत्ताओंसे ब्राह्मणों का विद्वेष और क्षत्रियोंका आदर रहा' अत्यन्त अयुक्त और अनुचित है, ब्राह्मणोंने जो इन अध्यायों में प्रश्न किये हैं उनका कारण विद्वेष नहीं किन्तु स्पर्द्धा थी, जो प्रायः समान विद्या वालोंमें होती है। जनकको यह जाननेकी इच्छा हुई कि इन विद्वानोंमें ब्रह्मविद्याका कौन कुशल विद्वान् है। उस पदके योग्य अपनेको सिद्ध करते हुए याज्ञवल्क्यको देख कर अन्य ब्राह्मणोंका स्पर्द्धा हुई और याज्ञवल्क्यके साथ

शास्त्रार्थ हुआ। यदि वह ब्राह्मण ब्रह्मविद्याके विद्वान् न होते तो शास्त्रार्थ कैसे करते? अपितु केवल यज्ञकी प्रशंसा और ब्रह्मविद्याकी निन्दा करते। इससे सिद्ध होता है कि यज्ञमें उपस्थित ब्राह्मणोंने अपनी ब्रह्मविद्या विषयक कुशलता दिखलाई और यह भी सिद्ध होता है कि ब्रह्म वेत्ताओंको यज्ञसे कोई द्वेष नहीं था और क्षत्रियोंने यज्ञसे द्वेष रख कर इस विद्याका आविर्भाव नहीं किया था। इस प्रकरणमें जनकका शिष्य बुद्धिसे याज्ञवल्क्यके प्रति आदर तथा समान विद्यावालोंकी स्पर्द्धा होनी स्वभाविक है। इससे उपनिषद् या यज्ञके प्रति ब्राह्मणों या क्षत्रियोंका विद्वेष या प्रेम सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार अश्वपतिकी कथासे यह सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मण क्षत्रियोंसे ही उपनिषद् सीखते थे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जब पाँचों ब्राह्मण उद्दालक अरुणिके पास गये और उसको अपनी विद्यामें त्रुटि प्रतीत हुई तब उसने उनको अश्वपतिके पास भेजा, जब वे अश्वपतिके पास गये तो उसने उनका सत्कार करके कहा—

"स प्रातः संजिहान उवाच —

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ॥

नानाहिताग्निर्नाऽविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।

यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु मे भगवन्तः (छा० अ० ५ खं० ११) हे महात्माओं मेरे राज्यमें न कोई चोर है, न कृपण, न मद्यपी ही है, और न कोई व्यभिचारी पुरुष ही है फिर व्यभिचारिणी स्त्रीकी तो सम्भावना ही कहाँ है? ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो पण्डित तथा अग्निहोत्री न हो; मैं याज्ञिक हूँ; जितना और ऋत्विजोंको धन दूँगा उतना ही आपको भी दूँगा। अश्वपतिके इस वचनसे स्पष्ट है कि राजा यज्ञका विरोधी हो कर उपनिषद्का प्रचारक नहीं था प्रत्युत याज्ञिक था, इसलिए आये हुए ब्राह्मणमें ऋत्विग् बुद्धि हुई। यदि डुईसन साहबके कथनानुसार यज्ञका विरोधी होता हुआ उपनिषद्का प्रचारक होता तो उन ब्राह्मणोंमें प्रतिद्वन्द्वीकी बुद्धि या शिष्यकी बुद्धि होती। राजा ब्रह्म विद्याका विशेषज्ञ था, परन्तु यह नहीं कि उसके समान ब्राह्मणोंमें कोई विद्वान् न था, या ब्राह्मणोंने सर्वथा यह विद्या क्षत्रियोंसे सीखी। हाँ, उस समय क्षत्रिय भी ब्राह्मणोंके समान विद्वान् होते थे, इसमें सन्देह नहीं। इसका पता जैविलीकी कथासे लगता है कि 'क्षत्रियकुमारोंने अपने सहपाठी ब्राह्मणोंसे अधिक कुशलता प्राप्त की थी। जैविलीने ब्राह्मणोंको आकाश विद्याका उपदेश किया है। यद्यपि जैविली क्षत्रिय था और अपने सहपाठियोंमें निपुण था, तथापि उसने यह स्वीकार किया है कि इस विद्याके मूल आचार्य अति-धन्वा शौनक थे।' डुईसन साहबको 'धन्वा' शब्दसे भ्रम हुआ कि शौनक भी क्षत्रिय थे, परन्तु पुराणोंमें "ऋषयः शौनकादयः" शब्दसे शौनकको ऋषि कहा है। उक्त महाशयने अपने पक्षको पुष्ट करते हुए नारद तथा सनत्कुमारकी कथासे अपने विज्ञानका पूर्ण परिचय दिया है कि सनत्कुमार युद्धके देवता थे। सनत्कुमार तो योगी थे; और उनका सम्बन्ध युद्धसे कुछ भी नहीं था। युद्धके देवता अश्विनीकुमार हैं, उभयत्र कुमार शब्दके होनेसे उक्त महाशयको यह भ्रम हुआ ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि जिनकी बुद्धि तनिक सादृश्यमें चकरा गई उनकी समझमें उपनिषदोंका गह्वर विज्ञान कैसे आया होगा? उपर्युक्त लेखसे यह सिद्ध हो गया है कि डुईसन साहबका लेख युक्ति-युक्त नहीं है। दूसरे शब्दोंमें यह सिद्धान्त कि क्षत्रियों द्वारा उपनिषदोंकी उत्पत्ति हुई यथार्थ नहीं है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इस सिद्धान्तके माननेमें हमें या किसी अन्य ब्राह्मणको लाघव है। पर वास्तवमें यह बात ठीक होती तो इससे बढ़कर भारतके लिए और क्या गौरव होता कि इस देशमें युद्धमें रत योद्धा लोग भी इतने विद्वान् होते थे, कि जिन्होंने ऐसे गम्भीर विज्ञानका आविष्कार किया। हाँ, इतना अवश्य सच है कि राज्य-भारको सम्भालनेमें तत्पर क्षत्रिय लोगोंने

प्राचीन भारतीय विद्वान् और इतिहास

[लेखक—श्री पं० बलजिन्नाथजी शास्त्री बी० ए०]

भारतीय विद्वानों पर सभी लोग यह आक्षेप करते हैं कि इन्होंने अपने देशका इतिहास नहीं लिखा। है तो यह आक्षेप वस्तुतः सत्य ही परन्तु सूक्ष्म विचारसे देखा जाए तो ज्ञात होगा कि इस आक्षेपमें जितना अतिशय हम करते हैं उतना सारा ठीक नहीं। भारतके विद्वानोंने वस्तुतः अपने देशका उतना इतिहास अवश्य लिखा है जितना लिखनेकी देशको आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त भारतके धर्मग्रन्थों को पढ़नेसे भी हमें इतिहासका बहुत ज्ञान हो सकता है। इतिहासका मुख्य प्रयोजन तो यही है कि हम भूतपूर्व राजाओंका इतिहास पढ़ कर यह सीख लें कि हमारा उत्कर्ष पहले कितना था, हमारे पूर्वजोंमें कौन गुण थे, किस प्रकार उन्होंने उन्नति की थी, उन्होंने किस प्रकार राजनैतिक प्रमाद किये। किन किन राजनैतिक प्रमादोंके कारण भारतवर्षकी यह दशा हो गई जो आज दीख पड़ती है। किन किन उपायोंसे परतन्त्र देशोंने स्वतन्त्रता प्राप्त की, कैसे स्वतन्त्रताकी रक्षा विविध देशोंने की। इतिहास पढ़ कर इन बातोंको समझ कर हमें अपने जीवन और देशकी उन्नतिका लक्ष्य स्थिर करके और उन्नतिकारक गुणोंका आदान तथा अवनतिकारक दोषोंका त्याग करके देशकी उन्नतिके लिए सफल प्रयत्न करना चाहिए। यही बातें मुख्य हैं, जो कि मनुष्य इतिहास से सीख सकता है। यह सभी बातें हम अपने प्राचीन इतिहास रामायण, महाभारत और पुराणों से यथेष्ट मात्रामें सीख सकते हैं। अतः इतिहासका प्रयोजन उनसे ही सिद्ध होता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि हमको हमारे पूर्वजोंने अपने इतिहास से वञ्चित नहीं रक्खा है। ऐतिहासिक विद्वान् इन ग्रन्थोंके विषयमें यही कहते हैं कि इनमें क्रमबद्ध इतिहास नहीं लिखा गया है। दूसरे इनमें अनेकों बातें ऐसी हैं जो कि संसारमें सम्भव नहीं, जो केवल कवि-कल्पित ही हैं। पुराणोंकी तो बात ही नहीं, राजतरङ्गिणी जैसे क्रमबद्ध इतिहास भी इन दोषोंसे मुक्त नहीं। राजतरङ्गिणीको भी लोग इतिहास की अपेक्षा काव्यमें ही गिनना उचित समझते हैं। कल्हणको वे 'कवि' कहते हैं, उसे 'ऐतिहासिक' नहीं कहते। परन्तु विचारपूर्वक देखा जाए तो काव्यके

ऐसे कई अन्वेषण ब्रह्मविद्यामें किये कि जो अभी ब्राह्मणोंको विदित नहीं थे, यह गौतम और जैविलीके सम्वादसे स्पष्ट प्रतीत होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ब्राह्मण सर्वथा क्षत्रियोंसे ही ब्रह्मविद्या पढ़ते थे। अजातशत्रुके इस बचनसे कि (प्रतिलोम वै तत् यद् ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयात् ब्रह्म मे वक्षति) स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्राह्मणके पास जाकर क्षत्रिय यही कहता था कि मुझे ब्रह्मका उपदेश कीजिए, यह सामान्य प्रथा थी। उपनिषद् शास्त्रके अध्ययनसे प्रतीत होता है कि अजातशत्रु आदिकका एक दो ही प्रतिलोम दृष्टान्त है जिसके कारण उपनिषद् शब्दका अर्थ गुप्तसभा जिसको क्षत्रियोंने स्थापित किया था मान लिया जाय, ठीक नहीं और न कहीं संस्कृत साहित्यमें उपनिषद् शब्दका अर्थ सभा उपलब्ध ही होता है। इसका अर्थ जो श्री शंकराचार्यजीने कठोपनिषद्के भाष्यमें किया है वही ठीक है। श्रीमान् शंकराचार्यजी महाराजका अभिप्राय उपनिषद् शब्दसे उस विद्याका है जिसकी प्राप्तिसे संसार वृक्षके बीज नष्ट हो जाते हैं, यह अर्थ षद् धातुके मूल अर्थके आधार पर किया गया है। इस लेखसे पाठक स्वयं समझ लेंगे कि उक्त महाशयका लेख हिन्दू जातिमें कितना विद्वेष उत्पन्न कर सकता है तथा हिन्दू समाजके लिए कितना घातक सिद्ध हो सकता है।

रङ्गमें रंगा हुआ इतिहास शुद्ध इतिहाससे कहीं बढ़ कर मूल्य रखता है। आप जरा विचारिए कि यदि आधुनिक रीतिके अनुसार भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्त तथा देशीय राज्यका इतिहास हम लिखने लगें, कविताकी उसमें गन्ध भी न रक्खें और इसी प्रकार से विस्तृत रूपमें समस्त भारतवर्षका इतिहास केवल दश-सहस्र वर्षों तक लिखते जाएँ, तो दश-सहस्र वर्षोंके अनन्तरके विद्यार्थीकी आप कल्पना करें — क्या वह इतने लम्बे चौड़े नीरस इतिहासको कभी पढ़ेगा ? कभी नहीं। वह तो यही कहेगा कि इतने बड़े नीरस इतिहास-समुद्रको पढ़ना तो अपने सारे जीवनको व्यर्थ नष्ट करना है। दश-सहस्र क्या, मैं तो यह समझता हूँ कि दो-तीन-सहस्र वर्षोंके भी सुविस्तृत इतिहासको कोई नहीं पढ़ेगा। फिर होगा क्या ? तो मेरे विचारमें पांच-पांच छै-छै शताब्दियों के अनन्तर विद्वान् लोग इन पूर्व शताब्दियोंके इतिहासोंके संक्षेप बनाया करेंगे। इन संक्षेपोंमें प्रधान प्रधान व्यक्तियोंका वर्णन होगा और शेष व्यक्तियोंके केवल नाम ही दिये जाएंगे। परन्तु जब समय बहुत बीत जाएगा तो ये संक्षेप भी बहुत विस्तृत प्रतीत होंगे। उस समय कोई भी ऐसे नीरस संक्षेपोंको पढ़नेके लिए उद्यत नहीं होगा। तब विद्वान् लोग इन संक्षेपोंके भी अतिसंक्षेप बना कर प्रधान-प्रधान पुरुषों के इतिहासको काव्योंमें लिखेंगे और शेष व्यक्तियोंके केवल नाम और जीवन काल अथवा शासनकाल को लिखेंगे। काव्यमें लिखनेसे ये इतिहास सरस बन जाएंगे। तब लोगोंको इनके पढ़नेमें रुचि होगी। ये काव्य ग्रन्थ लगभग हमारे पुराण और महाभारत जैसे ही बनेंगे। इनको तो लोग औत्सुक्यसे पढ़ेंगे, और जैसे इतिहासोंको हम इतिहास कहते हैं उनको कोई नहीं पढ़ेगा। उसका फल यह होगा कि ये ग्रन्थ तो प्रथित हो जायेंगे और असली इतिहास अंधकार में पड़ कर धीरे धीरे नष्ट हो ही जाएंगे। केवल राजकीय प्राचीन पुस्तकालयोंमें ही वे मिलेंगे। परन्तु यदि कभी राजविप्लवके कारण किसी अनार्य जाति के हाथ शासन आ जाएगा तो वे पुस्तकालय भी न हो जायेंगे। परन्तु काव्यरूप इतिहास लोकप्रिय होनेके कारण लोगों द्वारा प्रयत्नसे सुरक्षित रक्खे जायेंगे। तब इतिहासकी ठीक वही दशा हो जाएगी जो आजकल है।

वस्तुतः भारतवर्षमें भी यही हुआ है। भारतीय विद्वान् अति प्राचीन समयसे इतिहास लिखते थे। यह बात प्राचीन ग्रन्थोंसे प्रमाणित हो जाती है। यास्क मुनिने ई० पू० द्वादश शताब्दीमें (यास्कका यह समय हमने 'श्रीस्वाध्याय'के ही पूर्व अङ्कमें सिद्ध किया है) अपने निरुक्तमें अनेक स्थानों पर इतिहास और ऐतिहासिकोंके मतको उद्धृत किया है। उदाहरणार्थ—वृत्रके विषयमें 'त्वाष्ट्रो असुर इत्यैतिहासिकाः" ऐसा कहा हुआ है। इसी प्रकारसे कुरुवंश के राजा शान्तनु और उसके भाई देवापिका भी इतिहास "अत्रेतिहासमाचक्षते" इस वाक्यसे प्रारम्भ किया है। इसी प्रकार विश्वामित्र, उर्वशी, वसिष्ठ, सुदास आदिके इतिहासोंको भी यास्कमुनिने उद्धृत किया है। उन्होंने तो वेदके विषयमें भी यह कहा है कि "तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रम्"। इससे यह स्पष्ट रूपसे सिद्ध होता है कि ईसासे पहले द्वादश शतकमें भारतवर्षमें इतिहास और ऐतिहासिक बहुत उन्नति पर थे। इससे भी पूर्व ई० पू० ३००० वर्षके लगभग शतपथ ब्राह्मणके समयमें भी इतिहासको एक विद्या माना जाता था (शतपथ ब्राह्मणका यह समय गणितके द्वारा श्रीमान् दीक्षितजीने सिद्ध किया है) अतः उस समय भी इतिहास बहुत उन्नति पर था। इससे यह सिद्ध हुआ कि भारतीय विद्वानोंने आदि कालसे इतिहास लिखे थे। परन्तु सहस्रों वर्षोंके बीत जाने पर वे इतिहास अन्धकारकी भयङ्कर गुफामें पड़ कर अज्ञात जैसे हो गये। लोगोंने उनको पढ़ना छोड़ दिया। इसी कारण विद्वानोंने फिर इतिहासको काव्यके रङ्गमें रङ्ग कर महाभारत रामायणादिके रूपमें तथा राजतरङ्गिणी जैसे काव्योंके रूपमें लिखा। फल यह हुआ कि रसिकोंने सरस इतिहासकी और धार्मिकोंने धार्मिक इतिहासकी प्रयत्नसे रक्षा की। इसे कालके वश होने नहीं दिया। इसी कारण कल्हणने ऐतिहा-

सिकके कर्मकी प्रशंसा नहीं की। उसने तो "तस्मै नमः कविकर्मणे" तथा 'भ्रातः सत्कविकर्म किं स्तुतिशतैरन्धं जगत् त्वां विना" ऐसे ऐसे वाक्यों द्वारा कविके ही कर्मकी स्तुति की है। उस समय प्राचीन इतिहास केवल राजकीय पुस्तकालयोंमें ही रह गये। परन्तु ई० द्वादश शतकमें भारतवर्षके दुर्भाग्य के कारण तथा भारतीयोंकी अनीतिके कारण भारतवर्षमें एक ऐसी जाति घुस आई जिसका व्रत ही यह था कि दूसरोंकी सभ्यताको नष्ट करके अपनी असभ्यताका स्थापन करना जिन्होंने मिसर और फारस की सभ्यताको सर्वथा नष्ट किया था और जिन्होंने भारतकी सभ्यताको नष्ट करनेके सहस्रों उपाय किये, परन्तु इस सुदृढ़ सभ्यताको नष्ट न कर सके। भारतीयोंकी अनीतिके ही कारण इसी जातिका राज्य भारतवर्षमें स्थापित हो गया और वह राज्य अनेक शताब्दियों तक रहा। इन शताब्दियोंमें कुछ इने-गिने दो चार राजाओंको छोड़ कर प्रायः सभी राजाओंने यही प्रयत्न किया कि भारतीय सभ्यताको नष्ट किया जाए। सभ्यताका एक प्रधान अङ्ग साहित्य होता है इस कारण इन्होंने ऐसा प्रयत्न किया कि जो भी संस्कृत या किसी दूसरी आर्यभाषामें या आर्य लिपिमें लिखी हुई पुस्तक खोज करने पर इनको मिली उसको इन्होंने जला डाला। अनेकों पुस्तकालय क्षण भरमें भस्मसात् हो गये। इनको अपने धर्मग्रन्थके विषयमें यह मिथ्या श्रद्धा थी कि "यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्"। जब ये लोग अलेग्जांड्रिया (मिसर) की लाइब्रेरीमें पहुँचे, तो उस लाइब्रेरीके संरक्षक विद्वानोंने इनसे प्रार्थना की कि इन पुस्तकों में ज्ञान है, अतः इनको नष्ट न किया जाए। तो इस का भी उत्तर उन्होंने यही दिया था कि इन पुस्तकों में जो कुछ ज्ञानकी बातें कही हैं वे सब हमारे धर्मग्रन्थमें वर्तमान हैं। जब एक ग्रन्थसे ही काम चल सकता है तो इतने बड़े पुस्तकालयकी क्या आवश्यकता। यदि इन असंख्य पुस्तकोंमें कोई बात ऐसी कही हुई है जो कि हमारे कुरानमें नहीं मिल सकती, तो वह बात सच नहीं है। क्योंकि सत्य बातें सभी हमारे कुरानमें हैं। जो इसमें नहीं हैं वे कभी सत्य नहीं हो सकती हैं। इस कारण ऐसी असत्य बातोंका प्रतिपादन करने वाला यह पुस्तक-भाण्डार शीघ्र ही नष्ट हो जाना चाहिए।' बस यह कह कर सारे पुस्तकालयको अग्निके अर्पण कर दिया गया। इसी सिद्धान्तसे इन्होंने भारतवर्षके साहित्यको बहुत नष्ट किया। इस कारण भारतवर्षके साहित्यका एक प्रतिशत भी कठिनतासे ही बच सका होगा। यदि भारतवर्षका साहित्य इस प्रकारसे नष्ट न हुआ होता तो इस समय कोई भी यह नहीं कह सकता कि प्राचीन भारतीयोंने इतिहास लिखनेकी ओर ध्यान नहीं दिया। अनेकों इतिहास नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। शासन शक्तिका विरोध प्रजा कितना कर सकती है? शासन-शक्तिने हमारे साहित्यको नष्ट किया तो प्रजा ने प्रयत्न द्वारा अपने कुछ प्रियतम पुस्तकोंको छिपा रक्खा। यही कारण है कि सामवेदकी १००० शाखाओं मेंसे इस समय केवल एक शाखापूर्ण मिलती है। यजुर्वेदकी १०० शाखाओंमेंसे भी केवल ४ शाखाएं उपलब्ध हुई हैं। यही दशा समस्त शास्त्रोंकी है। अनेकों ग्रन्थोंके अनुवाद इस समय भी चीन और तिब्बतमें मिलते हैं, परन्तु उनका मूल संस्कृत कहीं नहीं मिलता। इतिहास भी जो मुसलमानोंसे पहले यहाँ मिलते थे उनमेंसे बहुत नष्ट हो गये हैं। संस्कृत साहित्यमें कल्हण ही ऐतिहासिकोंमें सबसे प्रसिद्ध है। वह अपनी राजतरङ्गिणीमें लिखता है (१) सुव्रत की सुव्रतभारती (२) क्षेमेन्द्रकी नृपावली (३) तथा 'नीलमतम्' के अतिरिक्त ग्यारह इतिहासोंके ग्रन्थ मैंने देखे हैं जिनके आधार पर मैं इस ग्रन्थको लिख रहा हूं। इन ग्यारह ऐतिहासिकोंमेंसे दो के नाम भी दिये हैं (१) पूर्वमिहिर (अथवा पद्ममिहिर) (२) श्रीच्छविल्लाकर। इनके अतिरिक्त एक और प्राचीन ग्रन्थका उल्लेख उसने किया है जिसको वह स्वयं भी प्राप्त नहीं कर सका। वह इतिहास है हेलाराज की पार्थिवावलिः। यह इतिहास अति प्राचीन तथा अतिविस्तृत था। इस प्रकारसे कल्हणके समयमेंभी हेलाराजके ग्रन्थको छोड़कर १४ चौदह ऐतिहासिक ग्रन्थ

विद्यमान थे जिनमें केवल काश्मीर देशका इतिहास था। इन ग्रन्थोंमेंसे केवल एक ग्रन्थ 'नीलमतम्' धार्मिक ग्रन्थ होनेके कारण बचा है। शेष सभी नष्ट किये गये हैं। इसी प्रकारसे प्रत्येक प्रान्तके इतिहास पर क्रूर अन्याय हुआ है। यदि सुव्रतभारती और नृपावलीका भी ग्रहण ग्यारह ग्रन्थोंमें ही किया जाय तो भी कल्हणके समयमें हेलाराजके ग्रन्थके अतिरिक्त काश्मीरके इतिहासके १२ बारह ग्रन्थ विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त कल्हण ही लिखता है कि शङ्कुक कवि ने 'भुवनाभ्युदय' नामक ग्रन्थमें एक युद्धका वर्णन किया है। यह ग्रन्थ भी आजकल नहीं मिलता। इस समय भी भारतवर्षमें इतिहासके संस्कृत और प्राकृत के जो ग्रन्थ मिलते हैं वे ये हैं :—

कवि	पुस्तक
१ वाक्पतिराज	गौड़वहो (महाराष्ट्री प्राकृत)
२ पद्मगुप्त अथवा परिमाल	नवसाहसाङ्कचरित
३ बिल्हण	विक्रमाङ्कदेवचरित, कर्णसुन्दरी
४ कल्हण	राजतरङ्गिणी
५ जौनराज (जोन)	राजतरङ्गिणी परिशिष्ट नं० १ पृथ्वीराज विजय टीका।
६ श्रीवर	राजतरङ्गिणी परिशिष्ट नं० २ (अर्थात् जैनराज तरङ्गिणी)।
७ प्राज्यभट्ट व शुक	राजतरङ्गिणी परिशिष्ट नं० ३ (राजावली पताका)।
८ जल्हण	सोमपाल विलास
९ हेमचन्द्र	कुमारपाल चरित।
१० अज्ञात नाम काश्मीरी कवि,	पृथ्वीराज विजय
११ सोमेश्वरदत्त	कीर्तिकौमुदी, सुरथोत्सव।
१२ अरिसिंह	सुकृतसंकीर्तन।
१३ सर्वानन्द	फगडू चरित।
१४ सन्ध्याकरनन्दिन्	रामपाल चरित।
१५ शम्भु	राजेन्द्र कर्णपूर।
१६ श्रीहर्ष	नवसाहसाङ्क चरित।
१७ हरिश्चन्द्र	धर्मशर्माभ्युदय।
१८ चरित्र सुन्दरगणिन्	महीपाल चरित।
१९ शिव स्वामी	कप्फणाभ्युदय।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त अनेकों शिलालेख, दानपत्र आदि मिलते हैं। बौद्धोंके अवदान ग्रन्थों और जातकों तथा "त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरितम्" "बुद्धचरितम्" "यशोधराचरितम्" "नेमिनिर्वाण" आदि ग्रन्थोंसे भी इतिहासके विषयमें बहुत ज्ञान होता है। पुराण रामायण महाभारत आदि तो प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं ही। इनमेंसे यदि हम धार्मिक, औपदेशिक तथा काव्य सम्बन्धी विषयोंको पृथक् करें तो शेष शुद्ध इतिहास रह जाता है। अति प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों और वेदमन्त्रोंसे भी हमें इतिहासका बहुत ज्ञान प्राप्त हो सकता है (इतिहास प्रदर्शनसे वेदकी कोई क्षति नहीं होती है, इस बातको फिर कभी किसी लेखमें लिखेंगे)। सारांश यह कि यदि कोई चाहे तो प्राचीन संस्कृत साहित्यमें से खोज करने पर भारतवर्षके अति प्राचीन इतिहास को भी निकाल सकता है। अर्वाचीन इतिहास तो पर्याप्त मात्रामें मिलता है। अतः यह कहना ठीक नहीं कि भारतवर्षका प्राचीन इतिहास मिलता ही नहीं है। इतिहास क्षेत्रमें भी भारतवर्षके विद्वानोंने पर्याप्त काम किया है। यद्यपि वह अधिकांश नष्ट हो गया है, तो भी जितने इतिहासके पढ़ने वालोंको आवश्यकता है उससे कहीं अधिक ही इतिहास मिलेगा, थोड़ा नहीं। दक्षिणकी द्रविड़ भाषाओंके साहित्यकी खोज अभी अधिक नहीं की गई है। यदि यह काम भी अधिक मात्रामें किया जाय तो सम्भव है समस्त भारतवर्ष का क्रमबद्ध सत्य इतिहास प्रकट हो जायेगा। परन्तु भारतवर्षका सत्य इतिहास तब तक पूरा प्रकट नहीं हो सकता और प्रकट हो कर भी उसका प्रचार नहीं हो सकता जब तक भारतवर्ष पारतन्त्र्यसे कुचला जाता रहे। क्योंकि किसी राष्ट्रके सत्य और उज्ज्वल इतिहासका प्रचार राष्ट्रियोंका काम होता है, विदेशियोंका नहीं। और राष्ट्रिय तब तक कुछ नहीं कर सकते जब तक राष्ट्रका शासन उनके हाथमें न आ जावे। अतः इस विषयमें इस समय केवल भावी शुभकी आशासे ही मनको शान्ति देनी पड़ती है। परन्तु ऐसी व्यवस्थामें भी ऐतिहासिक विद्वानोंको चुप

❀ ग्रन्थागार ❀

[लेखक—श्री पं० भूपेन्द्रनाथजी वन्द्योपाध्याय ए० ए०]

वर्तमान समयमें भारतवर्ष और अन्य देशोंमें ग्रन्थागारोंका आधिक्य दृष्टिगोचर होता है। बड़ेसे बड़े नगरोंसे ले कर छोटे-छोटे गांवों तकमें एक-न-एक ग्रन्थागार अवश्य है। सरकारी ग्रन्थागारोंके अतिरिक्त, म्युनिसिपैल्टियों और डस्ट्रिक्ट बोर्डोंके ग्रन्थागार और जनसाधारणके ग्रन्थागार भी होते हैं।

प्राचीन समयमें जब मुद्रण-यन्त्रका प्रचार नहीं था, पुस्तकें सब हाथसे ही लिखी जाती थीं, उस समय भिन्न-भिन्न देशोंमें किस प्रकारके ग्रन्थागार थे, उनका धारावाहिक इतिहास जाननेका कौतूहल सभीको होता है। उस कौतूहलको चरितार्थ करना ही इस लेखका उद्देश है।

सभ्यताके आदिसे ही ज्ञान और विद्यासे सभीको प्रेम रहा है। लेखन-कलाका ज्ञान सृष्टिके आरम्भसे ही लोगोंको था अथवा नहीं, यह कहना बहुत ही कठिन है। परन्तु भारतवर्षमें वैदिककालसे ही ऋषि लोग लिखना जानते थे। इससे पाश्चात्य पण्डित सहमत नहीं हैं। परन्तु महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपनी "प्राचीन लिपिमाला" पुस्तकमें इसको प्रमाणित कर दिया है।

पाश्चात्य पंडितोंका मत है कि बहुत प्राचीन समयमें मनुष्योंको अक्षर ज्ञान नहीं था। वे अपनी चिन्ताओं और भावनाओंको चित्रों तथा अन्य विविध प्रकारकी रेखाओंसे दर्शाया करते थे। यही अङ्कित चिह्न उस समयकी भाषा थी। जिन वस्तुओं पर ये चित्र बनाये जाते थे वही वस्तुएँ उस समयकी पुस्तकें थीं। ऐसी भाषा-मयी पुस्तकोंकी स्थिति अति प्राचीन समयसे है।

पण्डितोंने यह बात स्वीकार की है कि उपरोक्त प्रकारकी पुस्तकोंका ग्रन्थागार बहुत प्राचीन समयमें किसी देशमें था। पत्थरों पर जीव जन्तु, वृक्ष-लतादि अंकित रहते थे। जिससे लोग अपने मनो-भाव प्रकाशित करते थे। ये पत्थर नियमानुसार किसी किसी स्थानमें एकत्रित किये जाते थे और वह स्थान पुस्तकालय कहलाता था। इसके पश्चात् भूर्जपत्र और ताड़पत्र लिखनेके काममें लाये जाते थे।

इस बातका भी प्रमाण मिलता है कि बहुत प्राचीन समयमें देशके राजा ग्रन्थागारोंकी रक्षा तथा प्रबन्धके लिए पर्याप्त धन देते थे। पुस्तकागार पुरोहितों (Priests) की देख-भालमें रहता था जो लोगोंके घरों पर जाकर उनको पुस्तक पढ़नेके लिए प्रोत्साहित करते थे।

सन् १८५० ई० में 'लेयार्ड' (Leyard) जिस समय 'निनेभा' (Ninevah) में खनन कर

नहीं रहना चाहिए। उन्हें पाश्चात्य प्रभावसे स्वतन्त्र हो जाना चाहिए। अपनी बुद्धिको स्वतन्त्र बनाकर फिर उन्होंने भारतीय साहित्यमें गवेषणा करनी चाहिए। परन्तु गवेषणा करते समय पाश्चात्य समा-लोचनाओंको बुद्धिमें तिल मात्र भी स्थान नहीं देना चाहिए। इस प्रकारसे गवेषणा करके समस्त भारतीय ऐतिहासिकोंको एक दो सम्मेलनोंमें एक दूसरेके अन्वेषित तत्त्वोंको विचारना चाहिए। पूर्ण विचारके अनन्तर भारतवर्षके वास्तविक इतिहासका निर्माण करके उसके प्रचारके लिए प्रयत्न करना चाहिए। सम्भव है कि भारतवर्षके वास्तविक इतिहासके प्रचारका प्रभाव भारतवर्षके निवासियों पर ऐसा पड़े कि वे सभी कटिबद्ध हो कर यथोचित तथा नीतिके अनुकूल किसी विधि द्वारा भारतवर्षको स्वतन्त्र करनेमें समर्थ हो जाएँ। शिवम्॥

रहा था उस समय मिट्टीके नीचे एक बड़ा भारी आगार मिला। उसमें लगभग दस सहस्र पत्थरके टुकड़े थे जिन पर नाना प्रकारके चित्र बने हुए थे और ये टुकड़े एक नियमसे रक्खे हुए थे। विद्वानोंका मत है कि यह असीरियाके शासक असुरबानीपालका ग्रन्थागार था। 'बैबीलोन' में असीरियाके ग्रन्थागारसे भी प्राचीन एक ग्रन्थागार था। पंडितोंने यह भी पता लगाया है कि छः सहस्र वर्ष पूर्व अर्थात् 'पिरामिड' बननेके पहले मिश्र (Egypt) देशमें पत्थर-पुस्तकोंका एक ग्रन्थागार था। मिश्र देशमें न केवल मन्दिरोंमें अपितु श्मशानोंमें भी ग्रन्थागार बनाये जाते थे। इस बातका भी पता लगा है कि मिश्रमें खृष्ट पूर्वार्द्ध १४वीं शतीसे 'असीम्यान डियास' (Osymandyas) के राज्यकालमें एक बहुत बड़ा ग्रन्थागार था। इन पुस्तकोंकी लेखन शैलीका पता अभी तक नहीं चला है। साधारणतया मत यह है कि भूमध्यसागरके उत्तरी प्रदेशोंमें पहले पहल लिपिकी आविष्कृति हुई। यह कहा जाता है कि सर्व प्रथम लिखनेकी भाषा 'चालडियन' (Chaldean) है।

पुराने ग्रीस (Greece) देशमें बहुत बड़े-बड़े पुस्तकागार थे। इस देशके प्रथम पुस्तकागारका प्रतिष्ठाता 'पिसिस्ट्रेटस' (Pisistratus) था। प्लैटो (Plato), अरिस्टोटल (Aristotle, और यूक्लिड (Euclid) इन लोगोंके अपने (निजी) ग्रन्थागार थे। रोम देशमें भी अच्छे ग्रन्थागार थे। रोम देशका राजा 'आगस्टस' (Augustus) साधारण पुस्तकागार (Public Library) का जन्मदाता कहा जाता है। कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) के उन्नति कालमें कुछ अच्छे पुस्तकागार खोले गये थे। इनमें से कुछ ग्रंथागारों में एक-एक लाखसे भी अधिक पुस्तकें थीं। रोम राज्यके पतनके पश्चात् वहांके धर्मयाजकों (Popes) ने अच्छे २ ग्रन्थागार खोले थे। प्राचीन समयमें मठों और मन्दिरों (Monasteries and Churches) में पुस्तकोंका संग्रह रहता था। रोम राज्यके पतनके पश्चात् जिस समय ग्रंथागार) धर्मयाजकोंके हाथमें थे, पुस्तकें साधारण मनुष्योंको पढ़नेके लिए उधार दी जाती थीं। उसी समयसे यह प्रथा आज तक चली आ रही है।

प्राचीन समयमें 'एलेक्जैन्ड्रिया'(Alexandria) के ग्रन्थागार बहुत प्रसिद्ध थे। वहां एक ग्रंथागार में ४६०,००० पुस्तकें थीं। टोलेनी (Ptolany) जो कि सिकन्दर (Alexander) के सात शरीर रक्षकोंमें से था। उसने उस समय जब कि पुस्तकें भुर्जपत्रों पर लिखी जाती थीं, एक बहुत बड़े पुस्तकागारकी स्थापना की थी।

मिश्र, ग्रीस, रोम इत्यादि देशों ही में प्राचीन समयमें पुस्तकालयोंका कुछ २ इतिहास मिलता है। इनके अतिरिक्त पश्चिमके अन्यान्य देशोंके पुस्तकालय बहुत प्राचीन नहीं हैं। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय (Cambridge University) का ग्रंथागार १५वीं शतीमें स्थापित हुआ था। अमरीका देशमें ५०-६० वर्ष पूर्व लगभग ३०० ग्रंथागार थे।

पुराने समयमें पुरोहित, पादरी और मठाधीश क्या भारत क्या अन्य देशोंमें ग्रंथागारिकका काम करते थे। प्रत्येक मन्दिर, मठ तथा गिरजेमें पुस्तकोंका संग्रह रहता था। पुरोहितोंका काम केवल पुस्तकोंकी देख-भाल करना ही नहीं होता था वरन् उनको पढ़ना तथा लोगोंको पढ़ाना और पढ़नेकी रुचि उत्पन्न करना भी होता था।

चीन महादेशमें पुस्तकोंका बहुत आदर था। इसका प्रधान कारण केवल यही नहीं था कि लोगोंको पढ़नेसे प्रेम था, वरन् वहाँके लोग पुस्तक संग्रह करना अपना धर्म समझते थे। इसलिए वहांके अपढ़ लोगोंके घरोंमें भी पुस्तकोंका बड़ा संग्रह रहता था। चीनके लोग साहित्य तथा काव्यानुरागी होते थे। प्राचीन समयमें चीनमें साधारण पुस्तकागार तो सम्भवतः नहीं थे, परन्तु राजाओं और प्रतिष्ठित लोगोंके अपने ग्रन्थागार थे। इतिहाससे यह पता चलता है कि चीनका सर्वप्राचीन पुस्तकालय राजकीयवंश चाऊ (Impereal Chau Dynasty) का था जिसकी राजधानी होनान (Honan) प्रान्त

में लोयांग (Loyang) में थी। एक समय ऐसा था कि चीनी लोग मन्दिरों और गुफाओंमें पुस्तकें रखते थे और उनको शत्रुओंसे बचानेके लिए गुफाओं को पत्थरों से ढके रखते थे। चीनियोंको संस्कृत और प्राकृत साहित्यसे बहुत प्रेम था। हान राज्य में लोयरा (loyara) विहारमें इन भाषाओंकी शिक्षा दी जाती थी। इस समय चीन देशमें जो संस्कृत और प्राकृत भाषाओंकी पुस्तकें हैं वे सम्भवतः हान राज्यकालमें भारतसे ले गये होंगे। इसका प्रमाण है कि संस्कृत भाषाके अनुवादसे ही चीनी भाषाकी उन्नति हुई थी। इतिहाससे यह भी ज्ञात होता है कि 'धर्म-फल' नामक एक भारतीय कुछ पुस्तकें ले कर चीन देशको गया था। भारतीय भाषाओंके अनुवाद का केन्द्र स्थान दक्षिण चीनकी राजधानी 'कियेन रे' (Kiyen Ray) थी। लगभग १४०० भारतीय पुस्तकोंका अनुवाद चीनी भाषामें हुआ था। अनुवादकोंमें एक चीनी भी था जिसका नाम "चा चियेन" था। उसने अवदानशतक, मातंगीसूत्र, सुखवती अथवा आर्यातन्त्र पुस्तकोंका सम्पादन किया था। दूसरा अनुवादक कुमारजीव था जो भारतसे गया था।

अति प्राचीन पुस्तकोंमें इसका निदर्शन नहीं है कि प्राचीन भारतमें पुस्तकागार थे या नहीं। परन्तु पुस्तकोंकी वर्गीकरण पद्धति और विद्याका विभाग इत्यादि जैसा कि आजकल ग्रन्थागार-विज्ञानमें है, उस प्रकारका हमारे बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंमें पाया जाता है। इससे यह सुविदित है कि प्राचीन भारतमें ग्रन्थागार अवश्य थे। भारत जैसे देशमें जहाँ वेदादि ग्रन्थोंकी रचना हुई, जो विद्या, सभ्यता और संस्कृतिका प्राचीनतम केन्द्र रहा है, वहाँ पुस्तकागारोंका न होना विश्वसनीय नहीं है। जो कुछ प्रमाण मिले हैं और प्राचीन पुस्तकोंमें ग्रन्थागारोंका जो इतिवृत्त है उससे प्रमाणित होता है कि भारतमें पुस्तकागारोंका अभाव नहीं था।

श्रुतिमें विद्या दो भागोंमें विभक्त है:—परा और अपरा ('द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवाऽपरा च) कणाद तीन वर्ग बतलाते हैं, यथा—धर्म अर्थ और काम। कालिदासने कुमारसम्भवमें तीनोंको पृथ्वीमें रहनेका उपाय बतलाया है। इसके अनन्तर एक चौथा वर्ग मोक्ष भी बतलाया गया है। हमारे प्राचीन साहित्यों में चतुर्वर्गोंका उल्लेख है। यह एक प्रकारका वर्गीकरण है जिसके आधार पर पुस्तकोंका वर्गीकरण होता है।

दूसरे प्रकारका वर्गीकरण स्मृति और नीतिशास्त्रों में पाया जाता है। पहलेमें १४ वर्गोंका उल्लेख है और दूसरेमें ३२ का। अर्थशास्त्रमें ४ वर्ग (भाग) बतलाये गये हैं और पशुपताचार्यमें पांच। साधारणतया पुस्तकोंके विषयोंका वर्गीकरण चार भागों (वर्गों) का ही है। वात्सायन तथा दूसरे ऋषियोंने कलाके ६४ भाग बतलाये हैं। कुल मिला कर ५२८ कला हैं। ग्रन्थोंके पारायण करनेसे और भी विविध प्रकारके वर्गीकरण ज्ञात होते हैं। नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला, उदन्तपुरी आदि विश्वविद्यालयोंके ग्रन्थागारोंकी पुस्तकें और मन्दिरों और पीठोंकी पुस्तकें वर्गीकृत रूपसे ही रक्खी जाती थीं। पुराने पण्डितोंकी पुस्तकें संग्रह-नियमके ही अनुसार रक्खी हुई पाई जाती हैं।

प्राचीन समयमें भारतवर्षमें कई विश्वविद्यालय थे, उनके अपने अलग अलग पुस्तकागार भी थे। नालन्दा-विश्वविद्यालयका बहुत बड़ा ग्रन्थागार था, जिसमें विवध विषयोंकी पुस्तकें थीं। चीन देशके पण्डित वर्षों नालन्दामें रह कर अध्ययन करते थे। यहां रह कर वे बौद्ध ग्रन्थोंका अध्ययन करते थे। ईत्सिंगने नालन्दामें रह कर ४०० संस्कृत ग्रन्थोंकी जिसमें लगभग ५००,००० श्लोक थे, नकल करवाई थी। यहाँका ग्रन्थागार धर्मगञ्जके नामसे प्रसिद्ध था। यह ग्रन्थागार तीन बड़े बड़े प्रासादोंमें विभक्त था, एकका नाम 'रत्नसागर', दूसरेका नाम 'महोदधि' और तीसरेका नाम 'रत्नरञ्जक' था। दूसरा प्रासाद नौ भौम (मंजिला) था। धर्मपालका शिष्य शीलभद्र इस ग्रन्थागारका अध्यक्ष था। ३०० खृष्टाब्दमें 'हुएनस्वांग' यहाँ प्राचीन भारतीय साहित्य पढ़नेके लिये कुछ समय तक रहा था।

वलभी विहार— इस विहारमें एक बड़ा ग्रन्थागार था, जिसकी प्रतिष्ठात्री राजकुमारी दद्दा थी। यह राजा धारासेन प्रथमकी मौसीकी लड़की थी। गुहसेन (५५६) इस ग्रन्थागारकी पुस्तकोंके लिए रुपया देते थे। दक्षिण भारतके Inscriptions No. 604, 667, 671, 695 जिनकी तारीख खृष्टाब्द १२१६ पाई जाती है उसमें लिखा है कि यहाँके शिक्षकोंके वेतन और छात्रोंके व्ययके लिए समुचित प्रबन्ध होता था। अन्त Inscription में यहां पाया गया है कि टिन्नावली जिलेके सरस्वती-भवनके लिए एक बड़ा चन्दा दिया गया है।

प्राचीन समयमें मुद्रणयन्त्रालयोंके न होनेके कारण यह आवश्यक था कि राजे महाराजे और धनी लोग पुस्तकोंकी प्रतिलिपि करवानेके लिए पर्याप्त धन दें। इसी कारण हमारे शास्त्रोंमें पुस्तक-दानका महाफल लिखा है। विश्वचराचरका भाग्य बुद्धि और विद्या पर ही निर्धारित है। इस लिए नन्दीपुराणमें लिखा है कि धर्मात्मा मनुष्यको पुस्तक-दान देनेका व्रत ग्रहण करना चाहिए। पुराणोंमें भिन्न-भिन्न पुराणोंके दान देनेका अलग अलग फल लिखा है। उनमें यह भी बतलाया गया है कि किस महीनेमें कौनसा पुराण दान देना उपयुक्त है। शास्त्रों, पुराणों आदि धर्मग्रन्थोंके इन्हीं उपदेशोंके कारण हमारे देशमें बड़े बड़े ग्रन्थागार हिन्दुओं तथा बौद्धों के थे। 'देवपाल' ने नालन्दा विश्वविद्यालयको पांच गांव दानमें दिये थे। इसके फलस्वरूप 'रत्नसागर' ग्रन्थागारका निर्माण हुआ था। बंगालके प्रसिद्ध व्यापारी अविधाकरने नवीं शताब्दीमें पश्चिमी भारत के कौवेरी विहारके पुस्तकालयकी पुस्तकोंको मोल लेनेके लिए बहुत-सा धन दिया था।

खृष्टपूर्वाब्द ६वीं शताब्दीमें तक्षशिला-विश्वविद्यालयमें एक बड़ा ग्रन्थागार था। वैयाकरण पाणिनी और चन्द्रगुप्तके कूटराजनीतिज्ञ मंत्री चाणक्य दोनों यहां पढ़ते थे।

इतिहाससे यह ज्ञात होता है कि मुसलमानी राज्यके प्रारम्भसे भारतके बहुतसे ग्रन्थागार नष्ट हो गए। ८०० खृष्टाब्दमें 'बख्तियार खिलजी' ने राजा लोकपालका एक सुन्दर ग्रन्थागार जला दिया था। जिसमें ब्राह्मणों और बौद्धोंके अच्छे अच्छे ग्रन्थ थे। मुसलमानोंने 'लोकपाल' के पुत्र 'धर्मपाल' द्वारा प्रतिष्ठित एक और ग्रन्थागारको भस्मीभूत किया था।

प्राचीन समयमें एक साधुने वाराणसीमें एक बहुत बड़ा ग्रन्थागार स्थापित किया था। बंगालके सेन राजाओंके समय एक मिथिला, दूसरा नवद्वीपमें दो बड़े ग्रन्थागार थे। नवद्वीपके ग्रन्थागारकी पुस्तकों का उपयोग रघुनाथ, रघुनन्दन और श्रीचैतन्यदेवने किया था। राजा बल्लालसेनका एक अपना ग्रन्थागार था। बंगालके जगद्दल विहारमें एक ग्रन्थागार था जो कि जला दिया गया था।

नैपाल राज्यमें नेवार राजा लोगोंका अच्छा पुस्तक संग्रह था जिनको गोरखोंने जला दिया था। आज तक नैपालके राजकीय ग्रन्थागारमें बहुत प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंका संग्रह है। भारतीय इतिहाससे पता चलता है कि इस देशके समस्त हिन्दू राजे विद्यानुरागी थे और अपने राज्यमें पुस्तकों का संग्रह करते थे। इनमें गुजरात, ट्रावनकोर और राजपूताना विशेष उल्लेखनीय हैं। देशी राज्योंमें अभी तक हस्तलिखित पुस्तकोंका बड़ा संग्रह है; इस से ज्ञात होता है कि प्राचीन कालसे ही इनको पुस्तकों के संग्रह करनेकी रुचि है। यद्यपि विजेता मुसलमान शासकोंको देश जीतनेके लिए कुछ ग्रन्थागारोंको जलाना पड़ा था, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उनको विद्यासे प्रेम नहीं था। प्रायः सभी मुसलमान बादशाहोंके अपने ग्रन्थागार थे, जिनमें न केवल अरबी और फारसी भाषा ही की पुस्तकें थीं वरन् संस्कृत और अन्यान्य भाषाओंकी पुस्तकें भी रक्खी जाती थीं। दिल्लीका शाही ग्रन्थागार, हुमायूं बादशाह और गुलबदन बेगमके ग्रन्थागार उल्लेख करने योग्य हैं। नादिरशाह द्वारा यह ग्रन्थागार भी जलवा दिये गये थे।

यह वही देश है जहाँ पर एक रचनाके प्रत्येक अक्षरके लिए राजा लोग एक एक लाख रुपया देते थे। जहांके कवि कहते हैं—

अटूट विश्वास

[लेखक—विद्यारत्न श्री पं० देवीदत्तजी शर्मा ज्यौतिषी टकसालिये]

सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुगमें भी ऐसे महानुभाव भक्त हो चुके हैं, जो अपना कल्याण करते हुए हमारे लिए भी आदर्श उदाहरण छोड़ गये हैं। जिनका हम लोग स्मरण करते करते आनन्दमें मग्न हो कर प्रेमाश्रुओंसे भक्त और भगवान्के चरणारविन्दोंको धोते हुए, अपने दुष्कर्मोंको भी धो डालनेका प्रयत्न करते हैं, अस्तु। जिस महानुभावके अटूट विश्वासकी मैं अपनी नूतन और छोटी सी लेखनीसे महिमा वर्णन करने जा रहा हूँ, वे शिमला प्रान्तमें अर्की राज्यके निवासी थे। अर्की राज्यके विशेषकर लोग बोहरे (वैश्य) हैं। वे प्रायः सब श्रीशालिग्रामजी के शुभ विग्रहके पूजक हैं। यह घटना उस समयकी है, जबकि भारतमें अंग्रेजी शासन वृद्धिको प्राप्त हो रहा था। शिमला प्रान्तके सब राज्य (रियासतें) स्वतन्त्र (रूलिङ्ग चीफ) हैं। अफीम आदि यहाँ सब कृषक लोग लगाते हैं। पहिले समयमें अफीम खाने की परिपाटी भी बहुत थी, और इनके घरोंमें अफीम की पेड़ियाँ बनाकर मिट्टीके बर्तन यानी चाट्टीमें रक्खी रहती थीं, अस्तु।

शरद् ऋतु थी, उक्त वैश्य महोदयने श्रीशालिग्राम जीके भोगके लिए पिन्नियें (नैवेद्य) बनाया हुआ था, और चाट्टी हीमें रक्खा हुआ था। नित्य नियमानुसार ब्राह्म-मुहूर्तमें उठ कर शय्या पर ही इष्टदेव हरि-स्मरणादि कर शौचादिसे निवृत्त हो, स्नान सन्ध्यादि कृत्य सम्पन्न कर अपने इष्टदेव श्रीशालिग्रामजीके श्री विग्रहका विधिवत्पूजन कर, मिट्टीकी चाट्टीमेंसे पिन्नी निकाल कर भगवान्को भोग लगाया। भोग लगाकर प्रेमसे नमस्कार की और प्रार्थना करके विष्णु-सहस्रनाम, श्रीमद्भगवद्गीता, गजेन्द्र-मोक्ष गायत्रीका जाप कर अर्घमें पुष्प जल अक्षतादि ले कर कर्मसाक्षी श्रीसूर्यनारायणजीको अर्घ दे कर जब चरणामृत लिया और भोगके लिए हाथ बढ़ाया, तो आश्चर्यका कोई ठिकाना न रहा, जब देखा कि पिन्नी (नैवेद्य) के स्थानमें भूल वा भ्रमसे अफीमकी चाट्टीमें हाथ पड़ गया, और तीन या ३॥ साढ़े तीन छटांक अफीमकी पेड़ीका भगवान्को भोग लग गया।

हा! यह मुझसे क्या हो गया, कितना अनर्थ और अपराध हो गया, कि अपने ही हाथों अपने इष्टदेव परमेश्वरको विष अफीमका भोग लगा दिया। हा! दैव! इस अपराधके लिए कौनसा दण्ड होगा? इत्यादि बहुत कुछ पश्चात्ताप कर साथ ही विचार हुआ कि भोग अब मुझे भी खाना चाहिए, जब मेरे इष्टने ही विषका भोग कर लिया तो मुझे भी इनका प्रसाद पाना चाहिए। फिर साथ ही विचार हुआ कि अफीमकी पेड़ी ३ या ३॥ छटाँककी है, फिर क्या करूँ, किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो कर अपनी स्त्रीको जो कि बड़ी विदुषी व साध्वी थी बुलाया और कहा कि—"देखो प्रिये! मुझसे आज कितना अपराध होगया है, मेरी आत्मा शान्त नहीं होती, दुःख समुद्रमें डूबा जा रहा हूँ, यदि कोई इस अगाध दुःखसे निकालनेका उपाय तुम्हारी समझमें आवे तो जल्दी बतलाओ। देखो आज भूलसे श्रीभगवानको पिन्नी (नैवेद्य) की अपेक्षा अफीमका भोग लग गया है, अब मैं इस

"साहित्य संगीत-कला-विहीनः,
साक्षात् पशुः पुच्छ-विषाण-हीनः।"

यह वही देश है जहाँ— "स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सवत्र पूज्यते" की शिक्षा दी जाती है। जिस देशमें विद्याका इतना आदर सम्मान था वहाँके लिए यह कहना कि पुस्तकालय नहीं थे — यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता।

धर्म-सङ्कटमें धँसा जा रहा हूँ, कि यदि इसे खालूँ तो तीन या साढ़े तीन छटाँक अफीम है, यदि नहीं खाता हूँ, तो मैं भगवान्का भोग लगा चुका, इनका अनादर होता है, अब बताओ कि मैं कैसे करू ?

स्त्री बड़ी पतिव्रता सदाचारिणी साध्वी व विदुषी थी। यह सुन कर अत्यन्त दुखी हो कर बोली कि 'नाथ ! बात तो ऐसी ही है, जिससे मुझे भी महान् दुःख हो रहा है, तब भी मेरी तुच्छ बुद्धिमें एक उपाय आया है कि इस गांवके प्रायः सभी लोग अफीमका सेवन करते हैं, इस लिए आप थोड़ी-थोड़ी सबको बाँट आवें; थोड़ी सी मुझको दें, थोड़ी आप खा लें, इससे प्रसादका अपमान भी नहीं होगा और आपका भी कुछ न बिगड़ेगा, प्रसाद वितीर्ण हो जाएगा।' यह सुनकर वैश्यने कहा कि 'प्रिये! तुमने बहुत अच्छी युक्ति बताई है इससे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। परन्तु तुम यह बतलाओ कि जब मैं पिन्नीका भोग लगाया करता था, तब भी क्या मैं गांवमें बांटता था ? यदि आज विषका भोग लग गया, तो गांवमें बाँट आऊँ, यह अनुचित है। मैं ऐसा कदापि नहीं करूँगा।' यह कह कर वैश्यने हाथ जोड़ कर श्रीशालिग्रामजीके श्रीविग्रहके आगे प्रार्थना की कि 'देव ! आज मुझसे बहुत भयङ्कर पाप हुआ, परन्तु भगवन् ! अज्ञानवश हुआ, सो प्रभो ! जब आपने ग्रहण कर लिया तो अब यह आपका उच्छिष्ट प्रसाद है, जिसको पाना मेरा धर्म है, आपने तो विषका भोग लगाया परन्तु मैं तो आपका उच्छिष्ट परम पवित्र प्रसाद ग्रहण कर रहा हूँ, जिसके प्रभावसे आधि व्याधिका नाश हो कर अन्तमें परम-पद प्राप्त होता है।' इस प्रकार बहुत विनम्र भावसे भगवान्के आगे प्रार्थना कर जो भी तीन या साढ़े तीन छटाँक भगवान्का उच्छिष्ट भोग अफीम थी, सब उस वैश्यने खा ली। सदाकी भांति ऊपरसे दूध पी लिया। इस घटनासे सारे ग्राम में हाहाकार मच गया, कि ऐसा हुआ, ऐसा हुआ, वैश्यने अफीम खाली। परन्तु भगवान्की लीला अपार है—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"

के अनुसार वैश्यको उस विष रूपी भोग खानेके पश्चात् जब डकार आई तो पिन्नीकी डकार आई, मरना व अनिष्ट तो कैसा। यह है एक सच्ची घटना और अपने इष्टदेव पर अटूट विश्वासका प्रभाव—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

जन्मकुण्डलीके अनुभूत योग

(१) जन्मकुण्डलीमें सूर्य शुक्र कहीं भी इकट्ठे पड़े हों तो स्त्री रोगिणी होगी तथा वह मनुष्य सौन्दर्योपासक, गवेषक, कल्पना-प्रिय होगा।

(२) जन्मकुण्डलीमें बुध शनि कहीं भी इकट्ठे पड़े हों तो सन्तान सुख नहीं के बराबर होगा।

(३) जन्मकुण्डलीमें छठे घरमें उच्चका पाप-ग्रह महा अशुभ होता है।

(४) जन्मकुण्डलीमें शुक्र छठे घरमें हो तो मौसी व्यभिचारिणी होगी।

(५) मं० बु० इकट्ठे पड़े हों तो दुष्ट बुद्धि होगा।

(६) बृहस्पति राहुका योग रोजगार नहीं करने देता यानी व्यापार निष्फल रहता है।

(७) सिंहका राहु लग्नमें तीक्ष्ण बुद्धि होनेका द्योतक है।

(८) पंचम घरमें उच्चका गुरु सन्तान हानि करता है।

(९) कुम्भका शनि पंचममें ७ या ५ पुत्र देता है। शुक्र ५ या ७ कन्या देता है।

(१०) लग्नमें बृहस्पति रहनेसे जातक साँवले रंगका होता है।

प्रेषक— राजाराम जैन, ज्योतिर्विद्

श्रद्धांजलिः

[कवयिता—साहित्याचार्य श्री पं० छत्रधर शर्मा जी दैवज्ञभूषण]

[स्व० श्री पं० मीठालालजी व्यासने ज्योतिश्शास्त्रकी जो महान् सेवा की है वह इतिहासमें सदा स्मरण रहेगी। इन पंक्तियोंके लेखकको ब्यावरमें दो बार आपसे विचार-विनिमय करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आप अत्यन्त सरल मानस सौम्य-प्रकृतिके विद्वान् महानुभाव थे। आपकी संक्षिप्त आदर्श जीवनी हम आगामी अङ्कमें प्रकाशित करेंगे। —सं०]

योऽसौ ज्यौतिषशास्त्रबोधनिपुणो गर्गस्य संस्मारकः
प्रायः सत्यभविष्य-भाषणविधौ ध्यानी वसिष्ठोपमः।
मंत्रादेशपरोऽथ कौशिक इव प्रख्यातिमाप्तः पराम्
हा! हा! सोऽद्य विहाय नो दिवमितः श्रीमिष्टलालः सुधीः ॥१॥

अत्यन्त शोकका विषय है कि विद्वानोंमें श्रेष्ठ श्री मीठालालजी महाराज हम लोगोंको छोड़ कर आज (ज्ये० कृ० ६) स्वर्गको सिधार गए, जिन्होंने भारतीय प्राचीन ज्यौतिष-शास्त्रके तलस्पर्शी ज्ञानके हेतु साक्षात् गर्ग ऋषिके समान, यथार्थ भविष्य-कथनमें योगिराज वसिष्ठके सदृश, मंत्रशास्त्रके आदेशमें कौशिकके तुल्य प्रसिद्धिको पाया ॥ १ ॥

यो व्यासोपपदो विदामपि सतां मान्यो गरीयान् गुरुः
सन्दर्भान् बहुधा च यो लिखितवान् वृष्टिप्रबोधादिकान्।
छात्राणां हितवृद्धिसंयतमनाः कारुण्यपूर्णाशयः
स्वर्यातः स सुधीरिमं कलयतां श्रद्धांजलिं मंजुलम् ॥२॥

जिनका व्यास उपपद था और जो विद्वन्मण्डली एवं सभ्य भावुक पुरुषोंके श्रद्धेय गुरु थे, जिन्होंने वृष्टिप्रबोध (भारतका प्राचीन वायुशास्त्र) आदि अनेक उपयोगी ग्रन्थोंका निर्माण व सम्पादन किया, और जो अपने विद्यार्थियोंकी हितवाञ्छनामें सर्वदा दत्तचित्त एवं करुणरस-परिपूर्ण थे, ऐसे स्वर्गीय श्रीगुरुचरणोंमें विनयपूर्ण श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत हो ॥ २ ॥

उपकरणचणस्य छात्रवृन्दारकस्य
गुरुवर! महिमा ते किं मया वर्णनीयः।
इह किमु कथयेऽहं राजपुत्रप्रदेशे
करुणरसमहाऽब्धिस्त्वादृशस्त्वं हि विद्वान् ॥३॥

हे गुरुप्रवर! अपने शिष्यवर्गके उपकारविधिमें अनवरत तत्पर आपकी महिमाका वर्णन मुझ जैसे अल्पज्ञसे कैसे किया जाए, क्योंकि इस राजपूताना प्रान्तमें करुणरसके महासागर विद्वानोंमें आप जैसे आप ही थे, अर्थात् आपके समान करुणरस परिपूर्ण विद्वान् राजपूताना (मरुभूमि) में कोई दूसरा प्रतीत नहीं होता ॥ ३ ॥

त्वदाश्रयास्त्वत्परमाश्च मादृशाः
छात्राः कमिष्यन्ति शरण्यमन्यम् ।
इत्याकुलं मे हृदयं पुनस्त्वां-
दिदृक्षते त्वं पुनरात्रजेह ॥४॥

आपके सहारे जीवनयात्रा चलानेवाले, नये नये विज्ञान व सद्विद्या सीखनेवाले, आपकी कृपासे लब्धप्रतिष्ठ मुझ जैसे विद्यार्थी अब आपके सिवाय दूसरे किस सहारे (रक्षक, शिक्षास्थान) को पाएँगे ? इस चिन्तासे पर्याकुल मेरा हृदय यह वाञ्छा रखता है कि आप फिरसे एक बार यहाँ पदार्पण करें और हमको दर्शन दें, आपके दर्शनोंकी इच्छा उत्कट हो रही है ॥ ४ ॥

सा ते बलिष्ठा तनुरुत्तमाऽपि
महामृगेन्द्रेण समा मुखश्रीः ।
भुजावहेर्भोगसमौ पदाब्जे
सुमंजुले नो हृदयान्न यान्ति ॥५॥

आपकी वह बलिष्ठ सुन्दर शरीरयष्टि, बलशाली सिंहके समान तेजोमय मुखश्री, सर्पके शरीरके तुल्य भुजदण्ड और मनोहर चरणकमल हमारे हृदयसे बाहर जाना नहीं चाहते ॥ ५ ॥

किं सर्वतोभद्रमिदं स्वकीयं
देवान् दिवं शिक्षयितुं गतोऽसि ।
आस्तां गुरुत्वं त्रिदशेष्वलं ते
कृपा तु रक्ष्यैव नु मादृशेऽपि ॥६॥

अहो ! क्या आप अपना सब प्रकार कल्याणमय उपदेश व "सर्वतोभद्रचक्र" नामक पुस्तकका पाठ देवताओंको देनेके लिए स्वर्गको सिधारे हैं ? यहाँकी भांति आप अमरगणमें भी गुरुपदवीको प्राप्त होवें, पर मुझ जैसे बालक (प्रधानशिष्य) पर सदा कृपा ही रक्खें ॥ ६ ॥

हरिस्तवात्मानममोघशान्ति -
संप्रापयत्वद्य शिवः शिवत्वम् ।
त्वदीयपादाम्बुजयोश्चकास्तां—
श्रद्धांजलिश्छत्रधरोपक्लृप्तः ॥७॥

भगवान् विष्णु आपकी आत्माको सफल शान्ति और भगवान् शिव शिवत्व (पूर्णमोक्ष) को प्राप्त करावें। यह छत्रधर शर्मा निर्मित "श्रद्धाञ्जलि" भावपूर्ण अन्तिम विनय आपके चरणकमलोंमें सदैव शोभित हो ।

श्री १०५ मान् बघाटमहीमहेन्द्र धर्ममार्तण्ड श्रीमद्राजाधिराज श्रीदुर्गासिंह C. I. E. महोदयानां

जन्मोत्सवेऽभिनन्दनपत्रमिदम्

श्रीमान् भूपशिरोमणिर्नययुतो विख्यातकीर्तिर्वशी—
धर्मात्मा शरदिन्दुसुन्दरवपुर्यज्वाऽम्बरीषोपमः।
भृत्यामात्यसुहृज्जनैरनुदिनं संसेव्यमानः सुधी—
दुर्गासिंह महानृपः शरणदो जीव्यात्समानां शतम् ॥१॥

गोभूहिरण्याम्बरवृत्तिदाता विज्ञोऽर्थिनां कल्पतरुर्वरेण्यः।
यज्वा वशी धर्मरतो दयालुर्भूयाच्चिरायुर्नृपतिः शरण्यः ॥२॥
जयति जगति देवः श्रीबघाटाधिपो हि
प्रथितगुणगणाढ्यो दीनबन्धुः शरण्यः।

खलबलदलनार्हो दीर्घजीवी शताब्दं
भवतु शरदि नूनं चन्द्रतुल्यो जनानाम् ॥३॥
नगाधिराजैककृताधिवासः केदारनाथो बदरीश्वरश्च।
महौजसं श्रीलबघाटपालं पायाच्छताब्दं नरवृन्दपालम् ॥४॥

प्रार्थयिता—भवानीदत्तः शर्मा व्याकरणाचार्यः

❋ कौमुदी-महोत्सव ❋

राका-शशाङ्क शरदङ्क-मृगाङ्कमेत्य
स्वाध्यायमातनुत मा कुरुत प्रमादम्।
ज्योत्स्नोत्सवोऽस्य रचयेत् कमपि प्रकाशं
श्रीराष्ट्रजीवनपथं जनजागरायै ॥

सोलहों कलाओंसे परिपूर्ण राका (पूर्णमासी) के चन्द्रमाके समान इस 'शरदङ्क' रूपी चन्द्रमाको प्राप्त कर स्वाध्याय करिए, तथा इसका विस्तार करिए, इसमें कहीं प्रमाद न करना। इस शरदङ्करूपी चन्द्रमा का यह कौमुदीमहोत्सव उस अनिर्वचनीय अत्यन्त प्रकाशमान राष्ट्रको जगानेके मार्गका लोगोंको उद्बुध करनेके लिए निर्माण करेगा।

—अ० बा० आचार्य

ज्योतिर्विदोंसे कुछ प्रश्न

[लेखक—गोस्वामी श्री पं० विश्वम्भरदयालु जी शर्मा शास्त्री ज्यौतिषी]

[लेखक ज्यौतिष कर्मकाण्ड धर्मशास्त्रादि कई विषयोंके वयोवृद्ध पारंगत विद्वान् हैं। आपने ये ५ प्रश्न प्रकाशनार्थ भेजे हैं, इन्हें हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं। ज्योतिर्विज्ञानके विशेषज्ञ विद्वान् इन प्रश्नोंके समुचित सप्रमाण शास्त्रीय युक्तियुक्त उत्तर लिख कर हमारे पास भेजें, वे उत्तर भी 'श्रीस्वाध्याय' में प्रकाशित होंगे। जिन विद्वान् महानुभावोंके उत्तर विद्वान् लेखक (प्रश्नकर्त्ता) वा हमारे उत्तरोंके साथ मिलेंगे अथवा सर्वश्रेष्ठ समझे जावेंगे, वे लेखक संस्था की ओरसे पुरस्कृत (सम्मानित) भी किये जाएँगे। —सम्पादक]

सं० १९६५ वि० के श्रावण मासमें एक मासके लिए मैं काशी गया था, वहाँ कई प्राचीन विद्वानोंके दर्शन किये, श्री म० म० पं० सुधाकरजी द्विवेदीके दर्शनोंका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय मैंने उनसे ५ प्रश्न किये थे और उत्तर देनेके लिए अपना पता भी लिखवा आया था, परन्तु थोड़े समय के अनन्तर ही उनका (श्री० सुधाकरजी महाराजका) स्वर्गवास हो जानेसे उन प्रश्नोंका उत्तर न मिल सका। आज अपने वे ही प्रश्न 'श्रीस्वाध्याय' के विद्वान् पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर उत्तर प्राप्त होनेकी आशा करता हूँ। इसी पत्रमें इन प्रश्नोंका युक्तियुक्त शास्त्रीय उत्तर प्रकाशित होनेसे सर्व साधारण ज्योतिर्विदों और पाठकोंकी ज्ञानवृद्धि और मनो-विनोदके साथ साथ जिन शङ्काकर्त्ताओंकी ज्योतिश्शास्त्र पर अश्रद्धा हो रही है उनका आक्षेप भी दूर होगा। प्रश्न निम्नाङ्कित हैं—

१—ग्रहोंके उच्च नीचादि किस सिद्धान्तके अनुसार किस आधार पर निश्चित किये गये हैं? जातक ग्रन्थोंमें "अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीराः झषवणिजौ च दिवाकरादि तुङ्गाः" के अनुसार सूर्य मेष, चन्द्रमा वृषभ, मङ्गल मकर इत्यादि क्रमसे उच्चराशियाँ मानी हैं। यहाँ तो मेषराशिके १० अंश पर सूर्य परमोच्च माना गया है और ग्रहलाघवमें "सूर्यमन्दोच्चमष्टाद्रयोऽशाः भवेत्" लिख कर सूर्य मन्दोच्च मिथुनके १८ अंश पर माना है, इसका क्या कारण?

२—ज्योतिषीगण जन्मपत्रीमें कुण्डलीके अनुसार फल कहते हैं "यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्यतस्यास्ति वृद्धिः पापैरेवं तस्य भावस्य हानिः....." पुनः "स्थान हानि करो जीवः स्थान-वृद्धिः करः शनिः" यह गुणदोष किस आधार पर गुरु शनैश्चरको प्राप्त हुआ? व्युत्पत्तिके साथ समाधान होना चाहिए।

३—विंशोत्तरी महादशामें आ० चं० भौ० रा० जी० श० बु० के० शु० यह दशा क्रम किस आधार पर रक्खा गया है? मङ्गलके आगे बुध होना चाहिए परन्तु बुधके स्थानमें राहु क्यों और किस आधारसे लिया गया? तथा गणनारम्भ नक्षत्र कृत्तिका ही क्यों माना गया?

४—सभी आस्तिक श्रद्धालु जन ज्योतिषका कार्य करने वालोंसे यात्रा मुहूर्त पूछते हैं, उनको पञ्चाङ्ग देख कर सम्मुख दक्षिण चन्द्रमाका मुहूर्त बताया जाता है। पूर्वादि दिशाओंमें सम्मुख दक्षिण चन्द्रमा देखा जाता है। मेष सिंह धनुः का चन्द्रमा पूर्वमें सम्मुख और उत्तर यात्राके लिए दक्षिण होता है। इसी प्रकार कर्क वृश्चिक मीनके चन्द्रमाको उत्तरके लिए सम्मुख बता कर किसीको मुहूर्त बताने पर यदि कोई यह पूछ बैठे कि चन्द्रमा तो पूर्वमें ही उदय होता है, उत्तरमें कोई दूसरा चन्द्रमा उदय होता है क्या? या यही चन्द्रमा चतुर्दिक्में भ्रमण करता है? इसका सप्रमाण समाधान होना चाहिए।

५—दिन प्रमाणानुसार सूर्यकी न्यूनाधिक गति वैशाख ज्येष्ठमें ५७।३४ तक और पौष माघमें ६१।२६ तक हो जाती है। अहोरात्र पूरे ६० घटीका होता है तब सूर्यगतिमें ३।४ कलाका यह अन्तर क्यों होता है? इन प्रश्नोंका सप्रमाण शास्त्रीय उत्तर लिखें।

ओ ! महलोंमें रहने वालों !

[श्री पं० हरिश्चन्द्र जी जोशी 'मञ्जुल']

ओ ! महलोंमें रहने वालों !

क्या तुमको उस दीन कृषकका कभी ध्यान भी आता है।
लहू पसीना कर जो निज जीवनसे तुम्हें जिलाता है॥
वह केवल सूखे टुकड़ों पर ही जीवन करता उत्सर्ग!
फिर भी तुम उसके अन्तरमें निर्दयताकी ज्वाला बालो॥
ओ ! महलोंमें रहने वालो ! ॥ १ ॥

शिशिर-निशामें नभके नीचे कितने ही कृषकोंके लाल।
तड़प-तड़प कर तज देते हैं जीवन जीवनके जञ्जाल॥
ओ ! धन-मदिराके मतवालों ! सोचो कुछ तो होश सम्भालो।
वे भूखे मर जांय ! मरें ! तुम दूध पिला कर कुत्ते पालो॥
ओ महलोंमें रहने वालो ! ॥ २ ॥

क्या दीनोंको देख तड़पते नयन जल नहीं जाते हैं।
करुण-रुदन चीत्कार श्रवणसे हृदय हिल नहीं पाते हैं॥
तुम सोओ सुखकी नींदें वे सिसक सिसक काटें रातें।
उन्हें मिले भरपेट न खाना तुम मदिराके प्याले ढालो॥
ओ ! महलोंमें रहने वालो ! ॥ ३ ॥

तड़प उठोगे तुम भी देखो इस धनकी ही ज्वालासे।
यम कोदण्ड टङ्कोरें लेगा तुम सबकी मधुशालासे॥
बिजली बनकर कड़क उठेगी उसी विपञ्चीकी झङ्कार।
जिसको कभी कहा करते थे साकी ! मोहन यन्त्र उठालो॥
ओ ! महलोंमें रहने वालो ! ॥ ४ ॥

नूपुरकी झङ्कार झँकोरें बनकर नभमें छा जायेगी।
विलासिताके गहरे नदमें मनकी आशा बह जायेगी॥
हँसलो ! हँसलो ! जी भर हँसलो बस अन्तिम बार हँसालो।
जो जीमें आता है करलो मनकी साध मिटा डालो॥
ओ ! महलोंमें रहने वालो ! ॥ ५ ॥

साहित्य-परिचय

[जिन पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियाँ प्राप्त होंगी उन्हींकी समालोचना 'श्रीस्वाध्याय' में प्रकाशित हो सकेगी। एक प्रतिका केवल संक्षिप्त परिचय मात्र (नाम मूल्यादि) प्राप्ति स्वीकार रूपमें प्रकाशित होगा। निम्नाङ्कित पुस्तकोंकी एक-एक प्रति हमें प्राप्त हुई, सधन्यवाद स्वीकृत हैं। —सम्पादक]

'दुर्गाभ्युदय नाटकम्'

पृष्ठ ८०, मूल्य ॥), लेखक और प्रकाशक—सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्री पं० छज्जूराम जी शास्त्री विद्यासागर प्रधानाध्यापक साङ्गवेदविद्यालय देहली।

'वेदान्तसार' (सारबोधिनी टीका)

पृष्ठ ५६, मूल्य ।=), टीकाकार—सर्वतन्त्रस्वतन्त्र वि० सा० श्री पं० छज्जूराम जी शास्त्री, प्रकाशक—भार्गव पुस्तकालय गायघाट बनारस।

'यह असन्तोष क्यों ?'

पृष्ठ ३०६, मूल्य १॥), लेखक और प्रकाशक—श्री पं० रामचन्द्रजी शर्मा बी०ए० रिटायर्ड हैडमास्टर, रामनिवास, अम्बाला शहर।

'द्वापरकी राज्य-क्रान्ति'

पृष्ठ ८८, मूल्य ॥=), लेखक—श्री पं० किशोरीदास जी वाजपेयी शास्त्री, हिमालय एजेन्सी कनखल यू०पी०।

'लेखन कला'

लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त ही हैं।

'वर्षाज्ञान'

पृष्ठ ३०, मू० ≡), सङ्कलनकर्ता—श्री पं० नरोत्तम जी व्यास, प्रकाशक—मरुधर प्रकाशन मन्दिर जोधपुर।

'भक्त सुदामा'

पृष्ठ ५०, मूल्य ॥), लेखक—श्री पं० यज्ञदत्त शर्मा एम० ए०, प्रकाशक—साहित्य-सरोवर सहारनपुर।

'भक्त नरसी'

पृष्ठ २८, मूल्य =) लेखक—श्री 'मुकुट' प्रकाशक—साधना कुटीर सहारनपुर यू० पी०।

'राहु मन्त्रभाष्य'

पृष्ठ १४, मूल्य लिखा नहीं। लेखक और प्रकाशक—राजकुमार गुरु श्री पं० तारादत्त जी राज-ज्योतिषी, जुब्बल (शिमला)

विवाह मुहूर्त संवत् २०००

[लेखक—श्री पं० गोविन्दजी मिश्र]

मार्गशीर्ष कृष्णा १० सोमवार ता० २२ नवम्बर उ० फा० भे रेखा ७, ऽश० ।॥ऽचौ०ऽ२३॥, ल० ५
मार्गशीर्ष कृ० ११ मंगलवार ता० २३ नवम्बर हस्त भे रे० ८, ।॥॥ऽऽ२४॥, ल० ५
मार्गशीर्ष शुक्ला २ सोमे ता० २९ नवम्बर मूल भे रे० ७, ।॥।ऽश०ऽनृ०पं०ऽ॥, ल० ५
मार्गशीर्ष शुक्ला १५ शनिवार ता० ११ दिसम्बर रोहिणी भे रे० ७, ।॥ऽमं०॥ऽऽ१४॥, दिवालग्न ११
मार्गशीर्ष शुक्ला १५ शनिवार ता० ११ दिसम्बर मृग. भे रे० ७, ।॥ऽमं०॥ऽऽ१४॥, ल० ६
पौष कृष्णा १ रविवार ता० १२ दिसम्बर मृग. भे रे० ७, ।ऽ।ऽश।ऽसू०॥॥, दि० ल० ६-११ सम
नोटः—इस वर्ष सिंहस्थ बृहस्पति विचारणीय नहीं है, देखिये पृष्ठ ५८।

आभार-प्रदर्शन

वर्तमान विश्वव्यापिनी विषम-परिस्थितिमें पर्वतके एकान्त कोनेमें पत्रके लिए आधुनिक सभ्यताकी समस्त सुविधाओं (मुद्रणयन्त्र-प्रेस-कागज प्रचारक्षेत्र आदि आदि) से दूर रह कर विजयादशमीके इस शुभावसर पर तृतीय-वर्षका यह प्रथमाङ्क इस रूपमें विज्ञपाठकोंको भेंट करते हुए हमें महान् आनन्द हो रहा है। जहाँ वर्तमान समयमें पत्रोंकी तो बात ही क्या है मनुष्य-मात्रका जीवन संशयास्पद होता जा रहा है, वहाँ 'श्रीस्वाध्याय' का निरन्तर प्रकाशित होते रहना और उत्तरोत्तर उन्नति करना हमें स्वयं आश्चर्यमें डालनेवाला है। ऐसी स्थितिमें यह निश्चित है कि 'श्रीस्वाध्याय' पर किसी महान् विभूति वा अदृष्ट असीम-शक्तिका वरद हाथ है। जिस महान् शक्तिकी प्रेरणासे 'श्रीस्वाध्याय' ने जन्म लिया है वही इसे विशुद्ध सुवर्णकी भांति अग्निपरीक्षासे निकाल कर यशस्वी बना रही है प्रत्यक्षमें जिन महापुरुषका कृपापात्र बननेका हमें सौभाग्य प्राप्त है वे हैं 'श्रीस्वाध्याय' के जन्मदाता और श्रीस्वाध्यायसदन संस्थाके संस्थापक सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहिम आचार्य श्री १०८ मान् पूज्यपाद अमृतवाग्भवजी महाराज। आप ही के शिव-सङ्कल्पका यह फल है कि आज 'श्रीस्वाध्याय' इस रूपमें पाठकोंके सामने प्रस्तुत है। अतः सर्वप्रथम हम महामाया श्रीजगदम्बा और उक्त आचार्यचरणोंके चरणोंमें नतमस्तक आभारी हैं। इसके अनन्तर हम अपने महामान्य संरक्षक बघाट महीमहेन्द्र धर्म-मार्तण्ड श्री १०५ मान् राजा साहब दुर्गासिंहजी बहादुर C. E I. सोलन-नरेश महोदय और भरतपुरके राव राजा श्री १०५ मान् कैप्टन गिरिधारीशरणसिंहजी तथा सहायक महानुभावोंके अत्यन्त आभारी हैं, आप महानुभावोंकी उदार आर्थिक सहायतासे ही 'श्रीस्वाध्याय' को आज यह गौरव प्राप्त हो सका है।

इस तृतीय वर्षके आरम्भसे अखण्ड सौभाग्यवती श्री १०५ मती राणीसाहिबा वृन्दावनवालीजी (भरतपुर) ने 'श्रीस्वाध्याय' का सहायकत्व स्वीकार कर महान् सुकार्य किया है, अतः उन्हें विशेष धन्यवाद हैं।

पत्रकी उन्नति विद्वान् लेखकों और ग्राहकों पर ही अवलम्बित है, अतः हम अपने उन मान्य विद्वान् लेखकों और प्रेमी ग्राहकोंके भी हृदयसे आभारी हैं — जिन्होंने अपनी मौलिक रचनाएँ भेज कर तथा ग्राहक बन कर सहयोग दिया है।

श्रीयुत पं० बलजिन्नाथजी शास्त्री, श्री० वासुदेवशरणजी अग्रवाल, श्री० पं० हनुमान् शर्माजी, श्री० वि० भू० पं० दीनानाथजी शास्त्री, श्री० तारादत्तजी, श्री० भगवान्दासजी केला, श्री० पं० मोहन शर्माजी, श्री० अवनीन्द्रकुमारजी विद्यालङ्कार, श्री० भूपेन्द्रनाथजी वन्द्योपाध्याय, श्री १०८ मुनि श्री वीरविजयजी महाराज, श्री० पं० भवानीदत्तजी व्याकरणाचार्य, श्री० पं० चन्द्रभूषणजी वेदाचार्य आदि जिन सहृदय विद्वानोंने अपने मौलिक लेख भेज कर इस अङ्कको अलंकृत किया है उनके हम हृदयसे आभारी हैं।

श्री पं० शक्तिप्रसादजी शुक्ल, श्री पं० गोविन्दजी मिश्र, श्री पं० बैजनाथजी उपाध्याय, श्री पं० देवकीनन्दनजी, श्री पं० जटाशंकरजी, श्री पं० कन्हैयालाल राधारमणजी शास्त्री, श्री पं० शिवशरणजी, श्री० बा० रामरत्नजी, श्री कुँवर सुरेन्द्रदेवजी, श्री बा० हंसराजजी, श्री ला० शिवप्रसाद बांकेलालजी, श्री ला० जगन्नाथजी अग्रवाल तथा अन्य कई मित्रोंने 'श्रीस्वाध्याय' के प्रचारमें पूर्ण सहयोग दिया अतः इन मित्रोंके भी हम आभारी हैं।

दिल्लीमें आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला (गाडो-

दिया मार्केट) के अध्यक्ष वैद्यवर कविराज श्री पं० मोहनलालजी शास्त्री भिषगाचार्य और 'वीर अर्जुन' के सम्पादक श्री पं० रामगोपालजी विद्यालङ्कार तथा श्री अवनीन्द्रकुमारजी विद्यालङ्कारने आरम्भसे ही "श्रीस्वाध्याय' के लिए जो हार्दिक सहयोग दिया है उसे हम कदापि नहीं भुला सकते। इन्हें धन्यवाद दे कर हम इन सुहृदोंके विशुद्ध प्रेमका मूल्याङ्कन करना उचित नहीं समझते।

भारतके गण्य मान्य धुरन्धर विद्वानों और प्रसिद्ध पत्रकारोंने 'श्रीस्वाध्याय' की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हमारे पास आये हुए अनेकों सम्मति-पत्र (जिसका कुछ भाग 'श्रीस्वाध्याय' में भी निरन्तर प्रकाशित हो रहा है) इसका अप्रत्यक्ष प्रमाण है। कई सहयोगी पत्रकार अपना बहुमूल्य प्रकाशन (दैनिक साप्ताहिक मासिक पत्र) परिवर्तन-में भेज कर हमें सहयोग दे रहे हैं, उन सब विद्वानों और सहयोगियोंके हम हृदयसे आभारी हैं।

जहाँ हम विद्वान् और श्रीमानोंका सहयोग चाहते हैं वहाँ हमें सर्वसाधारण जनता (सामान्य ग्राहकों) के सहयोगकी भी अत्यधिक आवश्यकता है, अतः इस अवसर पर हम अपने प्रेमी पाठकोंसे साग्रह अनुरोध करेंगे कि वे अधिकसे अधिक ग्राहक बनानेका प्रयत्न करें। जितने अधिक ग्राहक होंगे उतनी ही अधिक ठोस सेवा हम कर सकेंगे! सन्त कविकी—

बहुत निबल मिलि बल करैं, करैं जो चाहे सोय।
तिनकनकी रसरी करी, 'करी' निबन्धन होय॥

इस सूक्तिके अनुसार छोटेसे छोटे व्यक्तिका संगठित सहयोग या प्रत्येक ग्राहकका वार्षिक मूल्य 'श्रीस्वाध्याय' के लिए बलदायक सिद्ध हो कर राष्ट्र-कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

विनीत—
हरदेव शर्मा त्रिवेदी (सम्पादक)

सहयोगियोंका स्वागत

'श्रीस्वाध्याय' के परिवर्तनमें निम्नाङ्कित दैनिक साप्ताहिक अर्धसाप्ताहिक पाक्षिक मासिक और त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाएँ नियमित रूपसे आ रही हैं, अतः इन सब सहयोगियोंका हम स्वागत करके इनके सञ्चालकों एवं सम्पादकोंको हार्दिक धन्यवाद देते हैं। आशा है अन्य सहयोगी भी इसी प्रकार अपना अपना प्रकाशन परिवर्तनमें भेज कर श्रीस्वाध्यायसदन संस्थाको उन्नत करनेमें सहयोग देंगे। 'साधना' 'सुधा' 'नवज्योति' 'जीवन' 'साहित्य-सन्देश' आदि जिन कई सहयोगियोंका प्रकाशन वर्तमान विषम परिस्थितिके कारण अनिश्चित कालके लिए स्थगित हो गया है उन्हें भी हमारी ओरसे 'श्रीस्वाध्याय' नियमित रूपेण भेजा जा रहा है।

दैनिक—

१. 'हिन्दुस्तान', २. 'विश्व-बन्धु', ३. 'वीर अर्जुन'।

अर्धसाप्ताहिक—

४. 'केसरी'।

साप्ताहिक—

५. 'आज', ६. 'कर्मवीर', ७. 'स्वराज्य', ८. 'सिद्धान्त', ९. 'सन्मार्ग', १०. 'लोकवाणी', ११. 'मीराँ' १२. 'श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार', १३. 'अङ्कुश', १४. 'आर्य-मार्तण्ड'।

पाक्षिक—

१५. 'मानवाश्रम', १६. 'मधुकर', १७. 'भारतीय-समाचार'।

मासिक—

१८. 'कल्याण', १९. 'विक्रम', २०. 'वीणा', २१. 'चण्डी', २२. 'भारतीय-धर्म', २३. 'सन्मार्ग', २४. 'जीवन साहित्य', २५. 'संस्कृत-रत्नाकर', २६. 'धारा', २७. 'सतयुग', २८. 'हिन्दूगृहस्थ', २९. 'गौतम', ३०. 'गौतमसखा', ३१. 'उदय', ३२. 'ग्रामीण'।

त्रैमासिक—

३३. 'विश्वभारती पत्रिका', ३४. 'त्रैमासिक गुजराती', ३५. 'सूर्योदय', ३६. 'सम्मेलन पत्रिका'।